प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
अढ़ाई रुपये

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में डा० कैलासनाथ काटजू के संस्मरणात्मक तथा कुछ अन्य लेखों का संग्रह किया गया है। इन रचनाओं को हम दो श्रेणियों में रख सकते हैं : १. व्यक्तियों के संस्मरण २. अदालती मामलों की यथार्थ कहानियाँ। पहली श्रेणी के संस्मरण जहाँ हमारे मर्म को स्पर्श करते हैं, वहाँ दूसरी श्रेणी की कहानियों से न केवल हमारा मनोरंजन होता है, अपितु निजी स्वार्थ के लिए अदालती मामलों में होनेवाले प्रपंचों के प्रति तिरस्कार का भाव भी पैदा होता है।

विद्वान लेखक के सोचने का ढंग अपना है। इसलिए उन्होंने इस संग्रह की कुछ रचनाओं में प्रचलित मान्यताओं के विपरीत एक नया दृष्टिकोण उपस्थित किया है। लेखन-शैली का तो कहना ही क्या! वह इतनी रोचक और सजीव है कि सामान्य घटनाओं में भी उससे जान पड़ गई है। अदालती मामले तो इतने दिलचस्प हैं कि उन्हें पढ़ने में कहानी का-सा आनन्द आता है।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक को चाव से पढ़ेंगे और इसके द्वारा उन्हे पर्याप्त विचार-सामग्री प्राप्त होगी।

—मंत्री

भूमिका

इस किताब में मेरे लेखों का संग्रह है । इनमे से कईएक लेख तो अदालती मुकद्दमो के है, जिनसे अपनी वकालत के दिनों मे मुझे वास्ता पड़ा था । लेकिन कुछ लेख ऐसे व्यक्तियो के भी है, जिनमें मुझे विशेषता दिखाई दी थी । मै खासतौर पर पाठकों का ध्यान दो लेखो की ओर दिलाना चाहता हूँ । एक मेरी माताजी के बारे मे है, दूसरा पिताजी के । ऐसा मै इसलिए नही कर रहा कि वे कोई साहित्यिक दृष्टि से बडे ऊँचे दर्जे के है, बल्कि उनके विषय की दृष्टि से । बरसो पहले मेरी धारणा हुई कि हरएक बाल-बच्चेदार मनुष्य का यह फर्ज है कि वह अपने बच्चो और नाती-पोतो के लिए अपने माता-पिता तथा पूर्वजों का हाल लिख कर छोड़ दे । मिसाल के तौर पर, मेरे नाती-पोतो को मेरे माता-पिता का परिचय सिवा उनके नाम-धाम की जानकारी के और क्या हो सकता था ? मैने सोचा कि यह ठीक नही है, और मुझे ऐसा परिचय तैयार करने की कोशिश करनी चाहिए, जिससे मेरे नाती-पोतो को साफ मालूम हो जाय कि उनके बाप-दादे कैसे थे, उनकी आदते कैसी थी, किस तरीके के उनके विचार थे और वे कैसे जिंदगी बिताते थे । सबसे पहले मैने 'माताजी' लेख लिखा । सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक 'सरस्वती' के संपादक, मेरे मित्र, श्री देवीदत्त शुक्ल ने उसे देखा और छापने की इच्छा प्रकट की । मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैने उसे उन्हे बताया भी, क्योकि वह लेख मैने महज अपने घर के लोगो के लाभ के लिए लिखा था । मेरे मन मे कभी भी यह बात नही आई थी कि वह छप भी सकेगा । शुक्लजी ने कहा कि यह ठीक है कि इस लेख में कोई खास साहित्यिक छटा नही है, किन्तु वह इस तरीके से बेमिसाल है कि हमारे देश में अबतक किसी ने भी अपनी माताजी के बारे में खास तौर पर नही लिखा । मेरा ख्याल है कि मेरी माताजी लाखों मे एक थी और उनका दिल और दिमाग आला दर्जे का था । मगर उसके साथ ही मेरा मानना है कि भारत मे हमारी सारी माताएँ अपने घर-बार के प्रति अपने निस्स्वार्थ एवं निष्ठापूर्ण कर्त्तव्य-पालन में सचमुच देवियाँ ही होती है । भारतवासी अपनी माताओ के ऋणी हैं, इसे वे वास्तव में, समझ नही पाते । मै अपनी मेहनत को सफल मानूगा और गर्व अनुभव करूंगा, अगर मेरे इन लेखों से प्रेरित होकर हमारे पाठक अपने माँ-बाप के बारे में जरूरी जानकारी लिख कर तैयार कर दें । हमारे देश में कुछ ऐसा साहित्य भी निकलना चाहिए, जो पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखता हो और उसमें सिर्फ बड़े लोगों का ही नही, बल्कि उन लोगों का भी जिक्र

होना चाहिए, जिनके पास बहुत ज्यादा धन-सम्पत्ति नही है।

वकीलो के बारे में आजकल सब तरह की बातें कही जाती है। किसी की कैसी भी राय क्यो न हो, लेकिन इस बात से इंकार नही किया जा सकता कि अपनी वकालत के दरम्यान वकीलों का समाज के सभी वर्गो से वास्ता पडता है। कोई भी दल या पेशा ऐसा नही है, जिनके लोगो को अदालत में न आना पड़ता हो। मालिक और मजदूर, चिकित्सक और उनके रोगी, इजीनियर, ठेकेदार, व्यवसायी, सम्पत्ति और चाल-चलन सम्बधी झगडे, ये सब फैसले के लिए अदालतों में पहुँचते है और मुकद्दमेवाजी के दरम्यान आदमी का स्वभाव ऊपर उभर आता है। लोग देखते है कि आदमी का दिमाग कितने जुदे-जुदे तरीके पर काम करता है। सच यह है कि अदालतो मे अक्सर जिन्दगी का ऊपरी पहलू ही सामने आता है। अगर आदमी की नेकनीयती के आवश्यक गुण पर निष्ठा बनाए रखने की सावधानी न बरती जाय तो सचमुच हमारे मायूस होने का बडा खतरा है।

कुछ लेखो में इस बात की मिसालें पेश की गई है कि बहस-मुबाहसे मे सही और संक्षेप मे बोलने से कितना लाभ होता है। वकालत के लिए भी बडी चतुराई की जरूरत होती है। वास्तव में वकील ही अपने साथी वकीलो की योग्यता को आंक सकता है। वकालत का सार यह है कि किसी भी मामले का निचोड लेकर अदालत के सामने यथासभव थोडे-से-थोड़े में इस ढग से पेश किया जाय कि अदालत कायल हो जाय। इस सम्बन्ध में 'पहियो के निशान' एक अच्छा उदाहरण है और उसकी ओर मै खास तौर से पाठकों का ध्यान खीचना चाहता हूँ।

बाकी के कई लेखो मे भी अदालती मामलो की घटनाएँ है, जो रोचक होते हुए भी पाठको के लिए अपना विशेष महत्व रखती है। 'दैनिक समस्याएँ और उनका समाधान' में मैंने परिवारो के जीवन को सुखी और शांत बनाने का एक नया उपाय बताया है। इसी तरह 'अपराध और अपराधी' में अपराधियो के प्रति अपने वर्तमान रवैये को बदलने का सुझाव दिया है।

'जवाहरलाल नेहरू : वकील के रूप में' जवाहरलाल के वकालत के दिनो की तथा बाद मे विशेप अवसरो पर वकील के रूप में उनके अदालत मे जाने की दिलचस्प कहानी है।

मुझे खुशी है कि यह किताब हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन-सस्था, सस्ता साहित्य मण्डल, से निकल रही है।

आशा है, हिन्दी के पाठक इसके लेखो को चाव से पढेंगे।

१, क्वीन विक्टोरिया रोड,
नई दिल्ली, १ मार्च १९५५

—कैलास नाथ काटजू

विषय-सूची

माताजी

मैं भूल नहीं सकता

: १ :

माताजी

हरएक को अपनी माता प्यारी होती है और माता के समान इस लोक मे दूसरा कोई नही दीखता; परन्तु मेरी माता केवल मुझको ही प्यारी नही थी, जिन-जिनसे उनका सम्पर्क हुआ उनको वह सैकड़ो-हजारों में एक मालूम हुई। मुझे अब लगता है कि मेरी माता ५० वर्ष जल्दी पैदा हुईं। यदि ५० वर्ष बाद पैदा होती तो उनके जो विचार थे और ईश्वर ने जो बुद्धि उनको दी थी उसको देखते हुए वह हमारे देश में महिला-समाज के लिए बहुत उत्तम कार्य करती और समाज मे बड़ा नाम पाती।

मेरी माता अपने माता-पिता की इकलौती सतान थी। उनके पिता पण्डित नन्दलाल काश्मीरी पण्डित थे। वह पजाब में पहले जिला हिसार और बाद में बहुत वर्षों तक होशियारपुर में सरकारी अधिकारी रहे। मेरी माता का जन्म माघ सवत् १९१५ (जनवरी १८५९) मे सिरसा, जिला हिसार मे हुआ। मां-बाप ने नाम रामप्यारी रक्खा। ससुराल में सुहागरानी कहलाईं। वास्तव में दोनो नाम सुन्दर और शुभ घड़ी मे रक्खे गये। वह निस्सदेह राम की प्यारी थी और अन्त समय में अपने विवाह के ७१ वर्ष पश्चात् अपना सुहाग अपने साथ ले गई।

नन्दलालजी अपनी बेटी को बहुत चाहते थे। घर में रामप्यारी और दादी दोनो मौजूद थी। प्यार-दुलार तो बच्ची का बहुत था, लेकिन वह जमाना कुछ और ही था। महिलाओ में शिक्षा इत्यादि का चलन नही था। मेरी माताजी कहा करती थी कि उनकी दादी को यह बात जम गई थी कि रूस के रहने वाले सब घुड़मुहे होते है? घुएं की गाड़ी, यानी

2084

रेल, उन दिनों नई-नई निकली थी, मगर हमारी दादीजी को मरतेदम तक यह विश्वास नही हुआ कि इजन भाप से चल सकता है। रेल पर तो कभी बैठी ही नही थीं। घर में स्त्रियो का तो यह हाल था; परन्तु पिताजी को विद्या से बड़ा प्रेम था। बहुत उमंग से अपनी पत्नी के मना करने पर भी बेटी को खुद पढ़ाया-लिखाया। बाप से हिन्दी और फारसी सीखी, दिमाग ईश्वर ने बहुत अच्छा दिया था। संस्कृत खूब पढी और गणित भी। भूगोल, नक्षत्र-ज्ञान अच्छी तरह जानती थी और ज्योतिष मे तो इतना कमाल था कि बड़े-बड़े पण्डितों और ज्योतिषियो से वार्तालाप करती थी। फारसी में 'गुलिस्तां-बोस्ता' और 'दीवान हाफिज' बराबर याद थे। विचार-शक्ति बहुत ऊंची थी। जो एक दफा पढ़ती या सुनती थीं वह सदा के लिए याद रहता था। धर्मशास्त्र अपने आप सब पढ़े थे, और गीता तो कठस्थ-सी थी।

नौ वर्ष की अवस्था मे सवत् १९२५ (१८६८) में मेरे पिता पण्डित त्रिभुवननाथजी काटजू के साथ विवाह हुआ। हमारा घर जावरा (मालवा प्रान्त) में है, शहरो से दूर एक कोने मे। सवत् १९२५ में जावरे मे रेल भी नही थी। छोटी जगह, पुराने विचार, पुराने चलन और रीति-रिवाज। मेरी माताजी यहाँ ५० वर्ष की आयु तक पर्दे मे बन्द रही। विवाह छोटी आयु मे हुआ था और थोड़े अरसे के बाद सब घर-गृहस्थी का बोझ उनपर पड़ गया। देवर-जेठ सब अलग रहते थे। घर का कुल काम-धन्धा, रोटी-पानी, बच्चो का पालना-पोसना, कपड़ो की सिलाई, सब अपने आप करती थी और उसपर पढने-लिखने की रुचि। खुद पढ़ती थी और दूसरो को पढ़ाती थी। दोपहर को १-२ बजे जब घर के धन्धे से कुछ सुभीता मिलता तो, मोहल्ले की लड़कियां आ जाती और छोटी-सी पाठशाला लग जाती और मेरी माताजी लडकियो को पढना-लिखना सिखाती थी।

काश्मीरी पण्डितो मे परदा बाहर वालों से होता है। घर मे ससुर या जेठ से नही होता। कुटुम्ब के जितने लोग थे, उनकी गिनती काफी थी। वे सब स्त्री-पुरुप मेरी माताजी को घेरे रहते थे। घर के सब पुरुष और

लड़के उनसे वीसो वातो पर वार्तालात करते थे । कभी समाचार-पत्र सुनाना, कभी दुनिया की चर्चा, राजनैतिक वाते । रियासत के मामले वह सव सुनती और समझती थी । मुझसे कहती थी कि एक दफे विवाह के कुछ वर्षो वाद तुम्हारे ताऊ शाम को आये और कहने लगे कि सुहागरानी, आज शाम को नवाव साहव के यहाँ एक सज्जन ने एक सवाल वताया कि अखवार मे छपा है, लेकिन हम लोगो में से किसीको उसका जवाव नही वन पडा । मैंने पूछा, क्या सवाल था, तो कहने लगे, सवाल था कि एक आदमी के नौ लडके और उसके पास ८१ मोती; और मोती के दाम इस तरह कि एक मोती एक रुपये का और दूसरा दो का और तीसरा तीन का और इस प्रकार एक-एक रुपया वढता जाय और ८१वें का दाम ८१ रु० हो । पिताजी चाहते है कि हरएक लड़के को ९-९ वाट दें, परन्तु वटवारा ऐसा हो कि हरएक का कीमत मे हिस्सा वरावर हो । मैंने सुना, मैं चुप हो गई, सवाल कुछ कठिन लगा । जव सव लोग सो गए, मैं कागज-पेन्सिल लेकर वैठी और दो घटे मे मैंने सवाल हल कर दिया और उसका उत्तर तुम्हारे ताऊजी को दूसरे दिन दे दिया । उनको वड़ा आश्चर्य हुआ । नवाव साहव के दरवार में ले गये, और वहाँ वडे गौरव से वयान किया कि मेरी भावज ने सवाल सही कर दिया । सव लोग दग रह गये ।

वास्तव में २०-२२ वर्ष की आयु की एक महिला के लिए, जिसने अपने घर में खुद ही पढना-लिखना तथा गणित सीखा हो, ऐसे प्रश्न का सही हल करना एक आश्चर्यजनक वात थी ।

मेरी माताजी घर में साधारण स्त्री की तरह सभी कामधन्धा करती थी, परन्तु उनके विचार उस समय को देखते हुए और जिस वातावरण मे उनका जीवन वीत रहा था, विलकुल निराले और वहुत ऊचे थे । उनका दृढ विश्वास था कि मर्दो ने स्त्रियो को दवा रक्खा है और वह कहा करती थी कि वे औरतो को पशुओ की तरह अपनी जायदाद समझते है । कहती थीं कि हमको चूल्हे के सुपुर्द कर दिया है । औरतो को मर्द रोटी-कपडा देकर यह समझते है कि उनके घर की दासी है । मै जव वडा हुआ और

इन वातों को समझने लगा तो मैं हँसता था और कहता था, "अम्माजी, तुम रसोईघर में चूल्हे के पास बैठकर अन्नपूर्णादेवी मालूम होती हो।" इस-पर वह बहुत विगड़ती थी और कहती थी कि तुम लोगो ने यही कह-कह कर, मीठी-मीठी वातो मे लुभा कर, हमको अपाहिज बना रक्खा है। उनकी जवरदस्त इच्छा थी कि हरएक स्त्री इतना पढ़-लिख ले और हुनर-दस्तकारी सीख ले कि वह अपना पेट खुद पाल सके और मर्दों का मुँह देखती न रहे। कहती थी कि मैं शादी-विवाह के खिलाफ नही हूँ, घर-गृहस्थी करना तो स्त्रियो का धर्म है। मगर मैं नही चाहती कि स्त्रियां दवैल बनकर रहें। स्त्री और पुरुष में वह पूरी वरावरी की दावेदार थी और उनका अपना विचार यह था कि वरावरी की ही बुनियाद पर पति और पत्नी अपना घर चलाएं। इस दृष्टि से वह स्त्री-शिक्षा की बड़ी जवरदस्त समर्थक थी और जब कभी सुनती या समाचार-पत्र में पढ़ती कि देश की किसी स्त्री ने बी० ए०, एम० ए० पास किया है या नाम हासिल किया तो वाग-वाग हो जाती थी। यह चर्चा मैं आज की नही करता हूँ, वल्कि ६०-६५ वर्ष पहले की, जब कि गाव व कस्वे की तो वात दूर, वड़े-वड़े नगरो मे भी स्त्री-शिक्षा का प्रचार नही था।

सन्तानोत्पत्ति के वारे में भी उनके विचार ऐसे थे, जो अब पाये जा रहे हैं। ब्रह्मचर्य और उसके द्वारा सन्तान-निग्रह की वह वडी पक्षपाती थी। कहती थी कि वच्चो के बीच मे कम-से-कम चार-चार वर्षो का अन्तर होना चाहिए, ताकि एक वच्चा मां का दूध पी कर बड़ा हो जाय। मा उसकी पूरी-पूरी देख-भाल, पालन-पोषण करले तव दूसरा वच्चा उत्पन्न हो। किसी स्त्री को जल्दी-जल्दी हर दूसरे साल वच्चा होना सुनती थी तो उनको घृणा होती थी और इसका प्रचार वह अपने कुटुम्ब की और सम्पर्क मे आनेवाली स्त्रियो मे करती थी।

विवाह के सम्वन्ध में भी उनके विचार वड़े स्वतन्त्र थे। छोटी आयु की शादी उन्हे वड़ी नापसन्द थी और विरादरी मे ही शादी होना आवश्यक नही समझती थी। सब ब्राह्मणो को एक ही मानती थी। प्रत्येक वर्ग मे जो

सहस्त्रो लड़े पड़ गई है और एक-दूसरे में व्यावहारिक मतभेद हो गया है, इस कैद को भी वुरा मानती थी।

जीवन उनका एक सच्चा धार्मिक जीवन था। शिवजी की वड़ी भक्त थी और नियम के साथ रोज उपासना करती थी। इसी कारण उन्होंने मेरा और मेरे भाई का कैलासनाथ और अमरनाथ नाम रक्खा था। धार्मिक पुस्तके वहुत पढ़ी हुई थी। खाने-पीने मे छूतछात का विचार तो करना ही पड़ता था; लेकिन उसमें वहुत कट्टर नही थी। कहा करती थी कि शास्त्रो मे जितनी खाने-पीने की मनाइया लिखी हुई है उनका धर्म से और ईश्वर की भक्ति से कोई सम्वन्ध नही है। वह तो सव अपने शरीर के रक्षार्थ है। छूत-छात से वहुत वीमारियां हो जाती है। उसके रोक-थाम के लिए हमारे ऋषियो ने यह सव कायदे वनाये। लोग उनको मानें, इस वास्ते उनको धार्मिक रूप दे दिया, वरना यह तो सव डाक्टरी शिक्षा है।

सवत् १९६५ मे मैंने अपनी वकालत का काम कानपुर में आरम्भ किया। ६ वर्ष वहा रहकर सवत् १९७१ से प्रयाग हाईकोर्ट मे वकालत करने लगा। हम लोगो का सवसे पहले सयुक्त प्रान्त से कोई वास्ता नहीं था, परन्तु अव तो प्रयाग में अपना घर-द्वार वना लिया है। मेरी वकालत तो मेरी माताजी के लिए आजादी का कारण हो गई। वह सवत् १९६६ से मेरे पास कानपुर और प्रयाग मे आने-जाने लगी। कहा तो जावरे की मुसलमानी रियासत, परदे का जोर, कही वाहर निकलना नही होता था, मदिर मे आने-जाने का भी दस्तूर नही था, और कहा कानपुर और प्रयाग मे गगाजी का तट और आने-जाने की कोई वाधा नही। घर का काम-धन्धा कानपुर में तो सव वैसा ही था जैसा जावरे में। मेरी नई वकालत, नई जगह, सभी कठिनाइया थी, परन्तु वह मग्न रहती थी। वेटे की घर-गृहस्थी जमाना, इसमें ही क्या कम आनन्द था और उसपर परदे की कोई ज्यादा रोक-टोक नही। रोज गगाजी जाती, स्नान करती, कैलास मंदिर में दर्शन करती और घर आती थी। विरादरी के और गैर-विरादरी के वहुत-से घरों से हमारा मेल-जोल हुआ, उन सवसे मिलना-जुलना माताजी को वहुत अच्छा लगता था।

यहां भी खूब दुनिया की चर्चा रहती थी और वह अपनी ज्ञान-वृद्धि बराबर करती जाती थी। प्रयाग मे ७-८ वर्ष तो मै किराये के मकान में रहा पश्चात् १९७९ मे अपना बंगला खरीद लिया। अब तो माताजी को पूर्ण अवसर मिला कि अपनी इच्छानुसार काम करे। प्रयाग में प्राय. साल-साल, दो-दो साल आकर रहती थी। त्रिवेनी—गंगाजी, जमुनाजी के स्नान बराबर होते थे। शिवकुटी और पचमुखी महादेव के शिवालों में जाकर उनके दर्शन करने का प्रेम था। सदा वहां जाती थी, साधु-सतों की भी सेवा करना उनका खास काम था। घर मे सदा पूजा-पाठ, कथा-हवन इत्यादि होते ही रहते थे। पण्डितो-पुजारियों से वार्तालाप होता था, परन्तु किसी पण्डितजी महाराज की क्या मजाल कि जो पूजा करने में विधिपूर्वक कोई कमी करे या किसी मत्र का उच्चारण अशुद्ध करे। उनको मंत्र सब याद थे। सबके अर्थ समझती थी और देखती रहती थी कि पूरा कार्य शुद्ध रूप से समाप्त हो। दानी भी थी और गुप्त दान देने मे उन्हे बड़ी रुचि थी। किसी को मालूम नही होता था कि माताजी किस-किस की क्या सहायता कर रही है। चलने-फिरने, हवा खाने को वड़ी उत्सुक रहती थी, मैंने गगा किनारे एक बगीचा लिया था। वहा जाकर रहना तो उनको बहुत ही पसन्द था। प्रयाग मे आकर मुझे मालूम हुआ कि उनका बागवानी में कितना दखल था! मालियो को अपने सामने खडे होकर उपदेश देती, फूलो के पौधे और फल के पेड़ लगवाती, उनके हाथ के बहुत-से आम, अमरूद इत्यादि के पेड, चमेली-गुलाब के पौधे उनकी स्मृति के रूप में मेरे वगले और बाग मे मौजूद हैं।

गो-सेवा सदा तन-मन से करती थी और गऊ के वच्चा होना तो हमारे घर में ऐसा होता था कि जैसे किसी बहू-बेटी का जापा हुआ है। हफ्तो पहले से गाय घर मे आ जाती थी, उसकी देख-भाल माताजी स्वयं करती थी और वच्चा उत्पन्न होने के बाद उसकी सेवा, उसकी खिलाई-पिलाई महीनो वड़े ध्यान से की जाती थी। कही वछिया पैदा हुई तो माताजी निहाल हो गई। वह वछिया फिर घर मे ही गाय वनती थी और ऐसी कई गाएं बेटी और नवासी अभी तक है। जबतक बछड़ा वड़ा नही हो जाता था तब-

तक माताजी का आदेश था कि एक थन का दूध बचा कर छोड़ा जाय। जानवरो की चिकित्सा में भी काफी दखल था। कुत्ते-बिल्ली से नफरत थी। कहती थी कि कुत्ता गन्दा और बिल्ली विश्वासघातक होती है, लेकिन रग-बिरगी चिड़िया, तोते-मैना बहुत पसन्द आते थे और उनकी रक्षा करती थी।

डाक्टरी की तरफ माताजी का खास रुझान था। बगैर किसी परीक्षा पास किये अच्छा खासा अभ्यास और जानकारी हो गई थी। मनुष्य का ढाचा और उसकी बनावट, और दिल, दिमाग, कान, आंख सब अगो की क्रियाएँ खूब अच्छी तरह जानती थी। स्त्री-जाति की बीमारिया और प्रसूति इत्यादि के मामले मे तो उनकी योग्यता असाधारण थी। घर में बहू-बेटियो का ही नही, बल्कि मोहल्ले के रहने वाले और प्रयाग में हाते के नौकर-चाकरो में माताजी का ही इलाज औरतो-बच्चो का हुआ करता था। हिकमत और आयुर्वेदिक दवाओ से अच्छी जानकारी थी। मरीज की देखभाल, सेवा और नर्सिग भी बड़ी रुचि तथा तन-मन से करती थी।

ये गुण तो थे ही, परन्तु जो बात उनकी तरफ हरएक को खीचती थी, वह था उनका स्वभाव। क्या बडे, क्या बूढ़े और क्या बच्चे, सब उनसे खुश रहते थे। पुराने ख्याल की बडी-बूढी औरतो में माताजी की बड़ी कदर थी। बिरादरी के सब रस्म-रिवाज, शादी-ब्याह के अवसर पर लेना-देना, विधिपूर्वक पूजा-पाठ इत्यादि सब मामलो में माताजी की राय मांगी जाती थी और उसपर अमल होता था। घर मे स्कूल और कालेज के पढ़ने वाले बालक और बालिकाएं अम्माजी के पास रुचि से बैठा करते थे। भारत का इतिहास उनको याद था। गाना-बजाना सीखा नही था और न जानती थी, मगर सुनने का बडा शौक था। मेरी लड़की लीला का गला बहुत अच्छा था। मीरा के भजन बड़े प्रेम से गाती थी। माताजी घंटो सुनती और लीन हो जाती। मगर सबसे अधिक तो उनकी पूछ-ताछ थी कुटुम्ब के पुरुषो मे। हमारे घर में ईश्वर की दया से सब ही हैः जज, वकील, डाक्टर, इंजीनियर

कारबारी और हर तरह के सरकारी—ओहदेदार—बराबर आना-जाना लगा रहता था। जब मै नौकर से पूछता कि वह साहब कहा है, उत्तर मिलता, बहूजी के पास बैठे हैं। जो आता, सीधा सुहागरानी चाची के पास जाता, अपना दु.ख-दर्द बयान करता। वह बड़े प्रम से सब कथा सुनती और नेक सलाह देती। हरएक के साथ उसके कार्य के बारे मे बात-चीत करने का माताजी का खास ढंग था। इंजीनियर के साथ इंजीनियरी के मामलो पर बहस करती थी और डाक्टरों के साथ डाक्टरी की बाबत; मै तो अक्सर रात को भोजन करके उनकी गोद में अपना सर रख के लेट जाता और उनसे अपने मुकदमों का हाल बयान करता था। अपने अनुभव और बुद्धि से ऐसे-ऐसे नुकते निकालती कि उनसे बड़ी मदद मिलती थी।

दु.ख-दर्द में माताजी के समान तसल्ली देने वाला, सन्तोष कराने वाला शायद ही कोई होगा। दुखग्रस्त लोगों को उन्हे देखकर और उनके शान्तिपूर्ण उपदेशो से बड़ा सन्तोष मिलता था। स्वर्गवासी स्वरूपरानीजी नेहरू के साथ मेरी माताजी का घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। वह मेरी माताजी को अपनी बडी बहन मानने लगी थी और उसी नाते से मुझको भी अपना बेटा कहती थी। जिस हलके मे उनका मिलना-जुलना था और जीवन बीतता था, और वह प्रयाग मे एक काफी बडा हलका था, उसमें माताजी का प्रभाव काफी था।

राजनैतिक मामलो में बड़ी दिलचस्पी थी और बराबर उसकी जानकारी रखती थी।

हिन्दुस्तान की ग़रीब-जनता की भलाई हर समय उनकी निगाह के सामने रहती थी और इस विषय में गाधीजी को बराबर सराहा करती थी। इसी दृष्टि से कांग्रेस मंत्रिमडल की शराब के बारे मे जो नीति थी, वह उसका जोर के साथ समर्थन करती थी। चाय पीने के बहुत खिलाफ थी। प्रयाग मे माघ मेला था। त्रिवेनी स्नान करने गई। वहां से लौटने पर मुझसे बड़ी नाराज हुई। कहने लगी कि तुम लोग प्रबन्ध नही करते हो। गरीबों का नाश हो जायगा। मैंने पूछा, "अम्माजी, आखिर क्या

मामला है ?" मालूम हुआ कि चाय के प्रचार करने के लिए चाय-बगीचों के मालिको की तरफ से गगा के तट पर कैम्प लगा है, वहा चाय मुफ्त बाटी जा रही है। उनका तो काम चाय के प्रचार का था, लोगो को मुफ्त चाय पिलाते थे, ताकि आदत पड जाय। माताजी का विचार था कि दूध-दही खाने की देश में आवश्यकता है और चाय से हिन्दुस्तान में स्वास्थ्य खराब हो जाता है, भूख कम हो जाती है । मुझसे कहने लगी कि तुम सरकार वाले थोड़ी आमदनी के लिए भारत का सत्यानाश करते हो।

माताजी की बोलचाल मीठी और गंभीर होती थी। व्यर्थ वार्तालाप और कोरे बकवास से उनको घृणा थी। अन्त समय तक उत्सुक थी कि वह कुछ नई बाते सीखें और जानकारी को बढावें। शान्ति की मूर्त्ति थी। मैंने कभी उन्हे क्रोधित होते नही देखा। न कभी हर्ष होता था, न द्वेष करती थी। सुख-दुख में समान रहती थी। रोने-धोने की आदत नही थी। घर मे बहुत शादिया हुई, लड़कियो के विदा होने के समय घर-भर रोता है और आसू गिराता है, परन्तु माताजी वैसी-की-वैसी ही शान्त रहती थी। मैंने कभी भी एक आंसू गिराते उन्हे नही देखा और अगर बेटी, पोती माताजी से अलग होते समय रोती थी तो उसको माताजी मना करती थी। माताजी ने दुख भी उठाए, बड़ी प्यारी पाली-पोसी व्याहता बेटी-पोती उनके सामने गुजर गई, लेकिन उस सदमे को भी उन्होंने बहुत सब्र, शान्ति तथा हिम्मत के साथ झेला।

हरेक के साथ उनका बर्ताव अच्छा होता था। मैके में एक भाई गोद आया था। ननद-भौजाई मे मैंने ऐसा मेल नही देखा। लगता था, जैसे दो सगी बहने हो। मेरी मामी मुझे बेटा समझती थी और मै उनको माता के समान मानता था। उन्हींके घर जाकर मैंने लाहौर में ५ वर्ष रहकर बी० ए० पास किया। मेरे मामूजी की सन्तान और उनके जमाई दीवान बहादुर ब्रजमोहननाथ जुत्शी को मेरी माताजी से जैसा प्रेम था उसका मै वर्णन नही कर सकता। अपने घर मे माताजी अपनी बेटियो से ज्यादा बहुओ को प्यार करती थी। कहती थी कि बेटियां तो दूसरो के

घर गई। मेरे घर की आवादी तो बहुओ से है। नतीजा यह कि घर मे कभी कोई खटपट नही। हमेशा शान्ति, हरएक खुश और मगन। बहुओं की दृष्टि मे माताजी सास नही थी, परन्तु माता के समान थी।

अभ्यास करते-करते माताजी को ज्योतिष मे बहुत दखल हो गया था। जब प्रयाग मे होती तो हाते के नौकर-चाकरो के वच्चो की जन्म-कुण्डली बनाती थी। मेरे पास जव कोई ज्योतिषी आते, मैं उनकी माताजी से भेंट करा देता। नतीजा यह होता कि मुझे तो छुटकारा मिल जाता और उनकी कलई खुल जाती। मेरी जानकारी में माताजी की बताई हुई बाते बहुत सच निकली। चालीस वर्ष पहले जब मै कालेज में पढ़ता था, उन्होंने मेरे कुल जीवन का नक्शा खीच दिया था। इन चालीस वर्षों के बारे में बताई हुई सब बातें सही निकली।

खाने-पीने मे वह बहुत पावन्द थी। मेरे हाथ का छुआ हुआ कच्चा खाना नही खाती थी, मगर अछूतपना बिलकुल नही मानती थी। मैंने उनको चमार व भगी औरतो और बच्चों को अपने पास प्रेम से बिठाते, उनकी दवा करते और बच्चो को गोद मे लेते देखा है।

हम पांच भाई-बहन थे। सबको ही प्यार करती थी। मगर सब कहते थे कि मेरे प्रति स्नेह अधिक था। कहा करती थी, "मेरे २४ वर्ष तक कोई सन्तान नही हुई। मुझे इसका कुछ अधिक दुख नहीं था। मुझे सन्तान की ज्यादा अभिलाषा नही थी, झंझट ही समझती थी। उस उमर मे पहली औलाद लड़की हुई तो मुझे जरूर कामना हुई कि ईश्वर ने जब सन्तान दी तो पुत्र भी दे और मैंने शिवजी से ऐसी ही प्रार्थना की। तू चार वर्ष बाद उत्पन्न हुआ तो मेरी सास कहने लगी कि काटजू-खान्दान में दो पीढ़ियो से कोई लड़का पैदा नही हुआ। गोद मांग कर यह घर चला है। मेरे भाग्य मे कहा कि मै इस लड़के का सुख पाऊं। उनका कहना सच ही निकला और आठ महीने ही मे परलोक सिधार गईं। मैं भी बीमार पड़ गई। जापे के बाद से ही दो वर्ष ज्वर आया, मानो दिक (क्षय) हो गया, मरते-मरते बची। रातो व्याकुल हो जाती थी, आंसू निकल आते

थे और सोचती थी कि यह बच्चा इतनी कामनाओ से मांगा हुआ, मालूम नही किसके हाथो पडेगा। कौन स्त्री इसकी विमाता बनेगी, कौन इसको पालेगी और शिव भगवान् से बार-बार मागती कि तुमने मुझे बच्चा दान दिया तो मुझको आयु भी दीजिए, ताकि उसकी रक्षा कर सकू। भगवान् ने मेरी विनती सुनी और ऐसी सुनी कि तुझको ही नही पाला-पोसा, बल्कि तेरी सन्तान और उनकी औलाद का सुख भोग रही हूं। तू भी मुझसे चिपटा ही रहता था। चार वर्ष तक तूने मेरा दूध पिया है।" ऐसी माता का भार कौन उतार सकता है और कैसे उतरे ?

अन्त मे आख चले जाने से उनका चलना-फिरना बन्द हो गया था, तो भी नौकर का हाथ पकडकर प्रात.काल बाग में टहला करती थी जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे। जब ८० वर्ष की अवस्था हो गई तो गौतम बुद्ध के समान कहने लगी कि यह शरीर अब काम का नही रहा, त्यागना उचित है। स्वास्थ्य भी ढीला हो गया था। उन्होने सब तैयारी करली। अपने सामने अपने हाथ से जो गहना उनका था वह बहुओ-बेटियो और उनकी सन्तान को बाट दिया और जितना दान करना चाहती थी सब दान कर दिया। एक ट्रक मे अपने लिए एक जोडा साड़ी इत्यादि रखवा दी कि मरने के बाद पहनाई जाय और अपनी अन्तिम यात्रा के लिए पूरी तैयारी करली। बराबर गीता का पाठ खुद करती थीं और सुनती थी। आठवें अध्याय मे उनकी बड़ी रुचि थी, वैसा ही हुआ। संवत् १९९६ मास श्रावण शुक्ल पक्ष में प्रदोष के दिन १॥ बजे दोपहर जब कि दिन की ज्वाला भरपूर थी, माताजी ने प्रयागराज की महात्याग भूमि में, जैसी उनकी मनोकामना थी, अपना शरीर त्याग किया। किसी प्रकार की कोई तकलीफ नही हुई। बाते करते-करते करवट लेकर परलोक चली गई। हम सब उनके पास मौजूद थे, परन्तु मेरी स्त्री बीमारी के कारण नैनीताल में थी। उनको बुलाया था। आने में जरा विलम्ब हुआ। बस उन्ही को बार-बार याद करती थी। कई बार पूछा, "लक्ष्मीरानी नही आई ? कब आयगी ?" फिर जैसे भगवान् ने बताया है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२।२२॥

मनुष्य अपने पुराने वस्त्रो को छोड़कर नये वदलता है, वैसे ही माताजी ने अपने शरीर का त्याग किया।

लक्ष्मीरानी कुछ ही घंटो के वाद घर पहुच गईं और माताजी के अन्तिम दर्शन कर लिये। उस दिन मुझे यह भी ज्ञान हुआ कि हिन्दू स्त्रियों की क्यो अभिलाषा होती है कि वह अपना सुहाग लेकर साथ जायं। माता-जी बहुत वर्षो से रगीन किनारे की सफेद साडी पहनती थी। यदि कभी कोई उनको रंगीन रेशमी वस्त्र लाकर पहनने को कहता तो उत्तर मिलता कि वुढ़ापे में क्या यह मुझको शोभा देगा, परन्तु जो साड़ी उन्होने अन्तिम यात्रा के लिए ट्रंक में निकाल कर रखी थी वह लाल सुन्दर साडी थी और नहला-धुलाकर जब उनको पहनाई गई और सिन्दूर का टीका माथे पर लगाया गया तो ऐसी सुन्दर मालूम होती थी कि जैसे कोई दुलहन हो। कुछ ऐसी ईश्वर की करनी हुई कि उनके चेहरे से बुढापे के सारे चिन्ह मिट गये और सुहागरानी अपना सुहाग साथ लेकर हँसी-खुशी चली गई।

: २ :

पिताजी

मेरे पिता की कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो सदा प्रतिकूल परिस्थितियों मे ही सघर्ष करते रहे, जिन्होने अपनी सारी शिक्षा आपही ग्रहण की, सच्चाई और आत्म-सम्मान के साथ ही जीवन-यापन किया और जो अपने जीवन-काल मे ही अपनी मिलनसारी तथा प्रेमी स्वभाव के कारण सवके सम्मानित और सवके प्रीति-भाजन रहे।

मेरे पिताजी गोद गए थे। उनके गोद जाने की घटना वड़ी महत्व-पूर्ण है। वह हिन्दू परिवार के आपस के घनिष्ठ सम्बन्ध का एक सुन्दर उदाहरण है।

भोलानाथ दर और मनसाराम काटजू काश्मीरी पडित थे। वे अथवा उनके पिता सन् १७७५ के आसपास काश्मीर से इधर चले आए थे। उन दिनो काश्मीरी पडितो के इधर आने का मुख्य मार्ग लाहौर होते हुए दिल्ली था और फिर दिल्ली से कई रास्ते हो जाते थे। कुछ परिवार पूर्व मे उत्तर प्रदेश, विहार और वगाल की ओर गए और कुछ पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में राजस्थान अथवा मध्यभारत की ओर आये। सन् १८१८ में चतुर्थ मराठा-युद्ध हुआ, जिसमें अग्रेजो ने महाराज होल्कर को परास्त किया, जिसके फलस्वरूप इन्हे अपने राज्य का वहुत-सा हिस्सा ईस्ट इडिया कम्पनी को देना पडा। इस लड़ाई मे उनके एक पठान सेनापति गफूरखा ने अंग्रेजो का साथ दिया था। लड़ाई के वाद महेदपुर की सधि के द्वारा पुरस्कार में उसे महाराज होल्कर से मिली जागीर स्थाई रूप से दे दी गई। गफूरखा ने अपनी इस नई रियासत की राजधानी जावरा नाम के एक छोटे कस्बे में स्थापित की। इसके कुछ समय वाद मनसाराम काटजू ने गफूरखा के यहा आकर नौकरी कर ली और तवसे यह स्थान काटजू-परिवार का घर वन गया। यह नगर इदौर के उत्तर मे ८० मील दूरी पर अजमेर जाने वाले रेल-मार्ग पर स्थित है।

मनसाराम काटजू का विवाह भोलानाथ दर की एक वहन से हुआ था, पर उनके कोई सतान नही हुई। भोलानाथ दर के दो लड़के थे—वद्रीनाथ और ज्वालानाथ। इनमे से वद्रीनाथ को उन्होने अपने वहनोई मनसाराम काटजू को गोद दे दिया। वद्रीनाथ का जन्म १८१५ मे दिल्ली मे हुआ था। अपने गोद लेनेवाले पिता के निधन के वाद उन्होने जावरा रियासत की नौकरी कर ली और वही सन् १८७५ मे उनका स्वर्गवास हुआ। उनके सगे भाई ज्वालानाथ भी जावरा रियासत की नौकरी मे थे। कुछ वर्ष वाद उनका भी देहान्त हो गया।

दोनो भाइयो ने १८४० और १८४४ मे एक-दूसरे से मिले हुए दो छोटे मकान खरीद लिये थे और उन्ही मे अपने-अपने परिवार के साथ रहते थे। यद्यपि गोद आ जाने के कारण रिश्ते मे वद्रीनाथ ज्वालानाथ फुफेरे भाई

हो गए थे, तो भी जावरा एक छोटा कस्बा होने के कारण दोनो भाई परस्पर बड़ी आत्मीयता के साथ रहते थे।

बद्रीनाथ काटजू के एक लड़की थी, पर लडका कोई न था। उनकी लडकी के दो लडके थे, जिनमे से एक को उन्होने गोद ले लिया था। पर दुर्भाग्यवश कुछ ही वर्ष बाद बद्रीनाथ और उनकी स्त्री को शोक-सागर में छोडकर यह बालक चल बसा। इससे उनकी वृद्धा स्त्री का विशेष रूप से हृदय ही टूट गया। उन्हे अत्यधिक शोकातुर देखकर सगे-सम्बन्धियो ने सलाह दी कि उनके मन को सान्त्वना देने के लिए कोई दूसरा बच्चा गोद लेना चाहिए और वंश-परम्परा की रक्षा करनी चाहिए। पर उन्होने ऐसा करने से निरन्तर इन्कार किया और कहा कि भाग्य मे बेटा लिखा ही नहीं है। यहां मै पति को छोड़कर अकेले उन्ही की चर्चा इसलिए कर रहा हूँ कि काश्मीरी पंडितो के घरो मे हमेशा स्त्रियों का ही प्रभुत्व रहता है।

पर ज्वालानाथ की स्त्री की कुछ दूसरी ही योजना थी। उनका परिवार काफी बड़ा था। सितम्बर १८६१ मे उनके तीसरा लडका हुआ, और जब वह सिर्फ ११ दिन का था, तबसे उसे पासवाले मकान में बद्रीनाथ की स्त्री के पास ले गई और यह कहकर बच्चा उनकी गोद में रखकर चली आई कि यह लो, यह तो तुम्हारा ही बच्चा है। बद्रीनाथ की स्त्री यह काण्ड देखकर चकित हो गईं। उन्होंने बच्चे को लेने से इन्कार किया, पर यह सुनने को अब वहां था ही कौन ? ज्वालानाथ की स्त्री तो वहा से जा चुकी थी। बच्चे के गोद लेने का प्रश्न पूरे आठ महीने तक चलता रहा। बद्रीनाथ की स्त्री बराबर कहती रही कि उन्हे बच्चा नही चाहिए और ज्वालानाथ की स्त्री बराबर बच्चे को वापस लेने से दृढ़तापूर्वक इन्कार करती रही। अन्त मे जीत उन्ही की हुई और बद्रीनाथ की स्त्री ने बच्चे को रखना स्वीकार किया। यही बालक त्रिभुवननाथ मेरे पिता थे। पुराने समय मे हिन्दू परिवारो में प्रायः देवरानी-जिठानी का एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता था। स्मरण रहे कि यह एक देवरानी की ओर से जिठानी को भेट किया गया विशुद्ध प्रेम का उपहार था, जिसमें धन-सम्पत्ति का तनिक

भी विचार न था ; क्योंकि काटजू-परिवार के पास वह था ही नहीं।

बचपन में त्रिभुवननाथ की स्कूली शिक्षा बहुत ही कम हुई। जावरा में उन दिनो कोई अगरेजी स्कूल नही था। घर पर मौलवी रखकर उर्दू-फारसी पढ़ाने का ही रिवाज़ था, क्योंकि उस समय यही राजभाषा थी। अतः मौल्वी से त्रिभुवननाथ ने भी घर पर ही सामान्य उर्दू-फारसी पढ़ी।

उन्हे गोद लेनेवाले उनके पिता बद्रीनाथ जावरा में एक जिम्मेदार पद पर थे। उन दिनो ऐसी छोटी रियासतों की देख-रेख के लिए पोलिटिकल विभाग पोलिटिकल एजेण्टो के मातहत पोलिटिकल-एजेन्सिया रखता था। मालवा-एजेन्सी का, जिसमें जावरा भी शामिल था, पोलिटिकल ऍजेन्ट उज्जैन से ४० मील की दूरी पर स्थित आगर में रहता था। एजेन्सी के अधीन हर रियासत को यहां अपना एक प्रतिनिधि रखना पड़ता था, जो 'वकील' कहलाता था। इनका काम था पोलिटिकल एजेन्ट के हेडक्वार्टर मे रहना और उसके तथा रियासत के बीच के सारे कागजो का इधर-उधर भेजना। ये काम इसी के मार्फत होते थे। इन्ही वकीलों का एक पचायती बोर्ड भी होता था, जो एजेन्ट की देखरेख में रियासत की सीमा सम्बन्धी-आपसी झगड़ो का निपटारा करता था। बद्रीनाथ काटजू कई वर्षों तक मालवा के पोलिटिकल एजेन्ट के यहा जावरा के वकील के रूप में रहे। एजेन्ट तथा अन्य रियासतो के वकील उनका सदा सम्मान करते थे।

उपर्युक्त कारण से त्रिभुवननाथ की शिक्षा आगर में ही हुई। पर शीघ्र ही वह विपत्ति मे पड गये और उनकी शिक्षा अधिक नही हो पाई। १८७४ में, जब वे केवल १३ वर्ष के थे, बद्रीनाथ बीमार पड़े। वे कुशाग्र-बुद्धि थे और जावरा के नवाब साहब ने शायद पोलिटिकल एजेन्ट के कहने से १३ वर्ष के इस बालक को ही उनके स्थानापन्न के रूप में काम करने को नियुक्त कर दिया। इसपर उन्होंने आठ महीने तक बड़े कौशल से काम किया, जिससे सबको सन्तोष हुआ। मेरे पिता के बहुत ही प्रिय कागजों मे मालवा के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल मार्टिन का दिया हुआ एक सर्टिफिकेट था, जिसमे इस बालक द्वारा जिम्मेदारियों को योग्यता

और दृढतापूर्वक निभाए जाने की प्रशसा की गई थी। १८७५ मे बद्रीनाथ का देहान्त हो गया और पिताजी को उनकी जगह स्थाई रूप से वकील नियुक्त कर दिया गया। उस समय उनकी उम्र ठीक १३ वर्ष ९ महीने की थी। यह सच है कि उन दिनो अधिकतर नियुक्तिया उत्तराधिकार के आधार पर ही होती थी। पिता की जगह पुत्र को नियुक्त किया जाता था। फिर भी यह एक असाधारण बात थी। त्रिभुवननाथ १८७५ मे नियुक्त होकर अपनी मृत्यु के समय तक, जो १९४५ मे हुई, लगातार ७० वर्ष तक रियासत की नौकरी करते रहे। किसी भी मनुष्य के जीवन मे नौकरी का यह एक बिलकुल असाधारण रिकार्ड है। कम आयु मे हुई उनकी नियुक्ति की चर्चा बहुधा हमारे परिवार मे प्रशसात्मक दृष्टान्त के रूप मे की जाती थी। प्रायः मेरे पिताजी मुझे और मेरे भाई को याद दिलाते थे कि जिस अवस्था में हम लोग कालेज मे पढते थे और हमें लोग केवल बालक और विद्यार्थी समझते थे, वे केवल १३ वर्ष और ९ महीने की उम्र मे जीवन-क्षेत्र मे प्रवेश कर चुके थे और वकील की गुरुतर जिम्मेदारियों का वहन करना प्रारम्भ कर दिया था। निस्सदेह ऐसे महापुरुष के सामने हम अपने आपको सदा बहुत छोटा और नाचीज़ समझते थे।

पिताजी के सेवा-काल के ७० वर्षों मे से ५० वर्ष सक्रिय सेवा के थे। रियासत में वह लगभग हर तरह के ओहदे पर रहे। मजिस्ट्रेट, दीवानी जज, चुगी-अफसर, सेटिलमेन्ट-अफसर, जिला अफसर, मिनिस्टर के पर्सनल असिस्टंटी के पदो पर रहे और अन्त में उन्होने रेवेन्यू-सेक्रेटरी की हैसियत से स्टेट कौंसिल के सदस्य रहकर अपना कार्य समाप्त किया। सब के मतानुसार उन्होंने अपने प्रत्येक पद का कार्य-विशेष योग्यता के साथ किया। निस्सदेह उनकी प्रतिभा असाधारण थी। परिस्थिति के कारण उनकी किताबी शिक्षा कम थी; परन्तु अपने दीर्घ जीवन मे अपनी शिक्षा की वृद्धि निरन्तर करते रहे। फारसी की उन्होने काफी अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी और उर्दू की उनकी शैली तो बड़ी ही सरल, साहित्यिक तथा गम्भीर थी। वह बहुत ही प्रवीण लेखक थे और उनकी सरकारी खरीतों

की इवारत पाण्डित्यपूर्ण होती थी। विविध विषयो की उनकी जानकारी विस्तृत थी। उन्होंने ७० वर्ष के अपने सक्रिय जीवन में उर्दू दैनिक अखबार का नियमित रूप से पढ़ना कभी नही छोड़ा। अगरेजी वह नहीं जानते थे, परदेश और विदेश की घटनाचक्र-संवधी अपनी जानकारी की भूख वह उर्दू के दैनिक पत्र से ही पूरी कर लिया करते थे।

१९२५ के लगभग, जव मेरे छोटे भाई ने रेवेन्यू-सेक्रेटरी का कार्य-भार सम्हाला, जावरा के नवाव साहव ने पिताजी का पूरा मासिक वेतन पेंशन के रूप में वाधकर उन्हे अवकाश दे दिया। कहने को वह अव नौकरी के वन्धन से आजाद हो गए थे; पर उनका और नवाव साहव का निजी सम्वन्ध कुछ इस प्रकार का था कि अपनी मृत्यु तक वह वरावर उनकी नौकरी मे भी रहे और उससे वाहर भी। नवाव इफ्तिखार अली का जन्म १८८३ में हुआ और वह मुझसे चार साल वडे थे। नवाव साहव के घराने से काटजू-परिवार का सम्वन्ध कुछ विचित्र-सा था। नौकरी की दृष्टि से अधीनता होने पर भी दोनो के परिवार मे पारस्परिक मैत्री थी। १८७५ में जव पिताजी ने रियासत की नौकरी शुरू की, उस समय नवाव इस्माइल खा गद्दी पर थे। १८९५ में उनका देहान्त हो गया और उनके स्थान पर नवाव इफ्तिखार अली गद्दी पर वैठे। इफ्तिखार की नावालगी मे उनके मामा यारमोहम्मद खा ने, जो मिनिस्टर थे, रीजन्ट का भी काम किया। १९०५ में नवाव इफ्तिखार अली खा को पूरे अधिकार मिल गए और दो वर्ष वाद यारमोहम्मद खा का देहान्त हो जाने पर राज-काज की पूरी जिम्मेदारी उन्ही पर आ पड़ी।

पिताजी ने इफ्तिखार को वचपन से वड़े होते देखा था और उन्हे वहुत प्यार करते थे। वह भी उन्हें इज्जत और प्रेम की निगाह से देखते और अपने आपको मेरा वड़ा भाई कहते थे। मेरा पूरा विश्वास है कि अगर कभी पिताजी के सामने नवाव साहव और मुझमें से किसी एक को चुनने का प्रश्न आता तो वह नवाव साहव के लिए मुझे त्यागने मे कभी नही झिझकते; क्योंकि नवाव साहव को वे मुझसे भी अधिक चाहते थे। नवाव इफ्तिखार-

अली ने भी उन्हे ज्यादा-से-ज्यादा इज्जत दी । जहां तक रियासती मामलो का सम्बन्ध था, यारमोहम्मद खां की मृत्यु के बाद पिताजी का महत्व और प्रभाव बहुत अधिक बढ गया। उनकी तनख्वाह भी १५०) से ३००) मासिक हो गई। पर तनख्वाह के अतिरिक्त नवाब साहब उनका जितना सम्मान और लिहाज करते थे, वह कहा नही जा सकता। पिताजी नौकरी से अलग हो चुके थे और जावरा छोडने में पूरे स्वतन्त्र थे। सर्दियों मे प्राय: वह इलाहाबाद आकर मेरे साथ रहा करते थे ; पर उनकी अनुपस्थिति नवाब साहब को सह्य न थी। उनके बिना नवाब साहब को बडी उदासी और अकेलापन अनुभव होता था और कहते भी थे—"पडितजी, जबतक आप जावरा मे रहते है, मै खुश और अपने को बहुत महफूज समझता हूँ। पर आपकी गैरहाजिरी मे बडा परेशान-सा हो जाता हूँ ।" १९३६ की सर्दियों मे जब पिताजी अपने कार्यक्रम के अनुसार मेरे पास आने के लिए नवाब साहब की अनुमति लेने गए तो नवाब साहब ने कहा—"पडितजी, आप शौक से जा सकते है, मगर जरा लौटने मे जल्दी कीजिएगा, क्योकि आपकी ग़ैरहाजिरी मे मैं बड़ा दुखी हो जाता हूँ।" इस बात का पिताजी के मन पर कुछ ऐसा गहरा असर हुआ कि उन्होने भविष्य मे जावरा कभी न छोड़ने का निश्चय कर लिया और जीवन के शेष ९ वर्षो तक वह फिर कभी बाहर नही गए।

इसका यह मतलब नहीं कि वह नवाब साहब से प्रतिदिन मिला करते थे। सप्ताह मे केवल एक बार नवाब साहब के महल पर जाते थे । कभी-कभी यह भी नही हो पाता था । पर नवाब साहब का भेजा हुआ एक चपरासी रोज आकर पिताजी की कुशल-क्षेम पूछ जाता था और नवाब साहब को जाकर बता देता था । अगर कभी पिताजी का स्वास्थ्य ठीक न हुआ तो नवाब साहब को बड़ी चिन्ता हो जाती थी। ऐसे मौके पर दिन में कई बार आदमी भेज कर वह पिताजी की तबीयत का हाल पुछवाते, अपना डाक्टर भेजते और खुद भी देखने चले आते थे। जब फरवरी, १९४५ में पिताजी का स्वर्गवास हुआ, तो नवाब साहब ने ज़ाहिर किया कि चूंकि पडितजी

के वडे लडके वह स्वयं है, अतः लोकाचार के लिए मिलने वाले लोग मेरे पास न आकर उन्ही के पास जाय !

उनमे और पिताजी मे पत्र-व्यवहार भी खूब होता था । पिताजी को लिखे गये नवाव साहव के पत्र पितृ-भक्ति और स्नेह से ओत-प्रोत है । जीवन के अन्तिम समय तक जव कभी नवाव साहव के सामने कोई अहम मसला पेश होता या कोई महत्वपूर्ण सरकारी दस्तावेज तैयार कराना होता तो पिताजी को सलाह और मदद के लिए जरूर बुलाया जाता ।

व्यक्ति और शासक की हैसियत से जहाँ नवाव इफ्तिखार अली में छोटी-वडी कई कमजोरिया थी, वहा एक वहुत वडा गुण यह था कि वह सरकारी भ्रष्टाचार को वहुत नापसन्द करते थे। मेरे ख्याल से पिताजी की ओर उनके आकृष्ट होने का सवसे वडा आवार यही था कि पिताजी किसी भी हालत मे और किसी भी कीमत पर खरीदे नही जा सकते थे। उन दिनो जव कि सरकारी घूसखोरी के विरुद्ध जनमत इतना प्रवल नही था, पिताजी की सचाई, ईमानदारी और सच्चरित्रता ध्रुवतारे की तरह मानो अपना अलग ही महत्व रखती थी। उनकी सीमित दुनिया में भी प्रलोभनों की कमी न थी और उनके अवसर भी आते रहते थे। पर वह कभी भी पिताजी को विचलित नही कर सके और उनकी तूफानी हिलोरो के बीच भी पिताजी पवित्रता की चट्टान की भाति अडिग वने रहे। अपने वेतन के सिवा, जो कई वर्षो-तक काफी कम था, उन्होंने कभी भी एक पाई नही छुई। एक वार उन्होंने मुझे वड़े वेदनापूर्ण स्वर में वताया कि जव वह लगभग २०-२२ वर्ष के थे, तो उन्होंने किसी से दो छोटी-छोटी रकमें, जो मेरे ख्याल में शायद कुल २००) से ज्यादा नही थीं, घूस में ली थीं। पर इसके लिए उन्हे जीवन भर वडा क्षोभ रहा और इसका जव भी उन्हे ध्यान आता था, वह दुखी हो जाते थे। इस मामले में वह इतने कड़े थे कि हमारे घर में कभी भी सरकारी स्टेशनरी, कागज-पेन्सिल वगैरह खानगी काम मे नहीं लाये गए।

ऐसे खरेपन और ईमानदारी के लिए सभी पिताजी की बडी इज्जत करते थे और वह भी अपने मन मे इस बात को खूब समझते थे। उनके अनेक गुणो मे शायद नम्रता शामिल नही थी। इसलिए अपनी ईमानदारी पर उन्हे अभिमान था, और इसे वह अक्सर अपने दोस्तो, मातहतो और सहयोगियों के सामने मिसाल के तौर पर रखते भी थे। इस दृढता ने उनके व्यक्तित्व और स्वाभिमान की भावना को काफी ऊंचा उठाया। वह भावुक भी काफी थे। एक बार मिनिस्टर यारमोहम्मद खां ने जरा झल्ला कर उन्हे लिख दिया कि उनसे उन्हे उतनी मदद नही मिल रही जितनी कि उन्होंने आशा की थी, तो पिताजी ने बिना कुछ भी आगा-पीछा सोचे बडे गर्व के साथ वही यह कह कर इस्तीफा दे दिया कि मै तो पूरी मेहनत करता हूँ; पर अगर मिनिस्टर साहब का यह ख्याल है कि मै उन्हे पूरी मदद नही दे रहा हूँ, तो मेरा रियासत की नौकरी में रहना बेकार है। ऐसा करना पिताजी के लिए कम साहस की बात नही थी; क्योकि हमारा परिवार काफी बडा था और बराबर बढ रहा था। यदि पिताजी का इस्तीफा मंजूर हो गया होता, तो वह बड़े संकट मे पडते। मिनिस्टर साहब शायद भूल गए थे कि वे किससे पेश आ रहे हैं। पर शीघ्र ही उनको अपनी भूल मालूम हुई और उन्होंने पिताजी को मैत्रीपूर्ण, बल्कि कहना चाहिए भ्रातृभावपूर्ण, पत्र लिखकर इतने अधिक भावुक होने के लिए उलाहना दिया! मामला यहीं खत्म हो गया। मुझे इस बात में तनिक भी सन्देह नही कि पिताजी ने अपनी मिसाल और ताडना से न सिर्फ अपने बच्चों को, बल्कि अपने समय के प्रभाव में आने वाले अन्य सभी व्यक्तियों को नेकी के सीधे रास्ते पर चलाया।

उन्हे विकास के विशेष अवसर नहीं मिले थे और उनका कार्य एक छोटी-सी रियासत तक ही सीमित था। अधिक अनुकूल परिस्थितियों में उन-जैसी व्यापक प्रतिभा और चरित्र वाला व्यक्ति काफी ऊंचा उठता, ऐसा वह भी समझते और कहा भी करते थे। घर में और बाहर तथा नवाब साहब के महल मे लगभग हर विषय में वह कुछ-न-कुछ मत रखते थे और

दृढ़ता के साथ उसे व्यक्त भी करते थे। डा० जॉन्सन की तरह वह भी प्रतिवाद करने को अधीर रहते थे। मूर्खो को सहन करना उनके लिए सम्भव नही था, और उनके मुह पर भी कह देते थे कि उनको वह क्या समझते है। पत्र-पत्रिकाओ के अपने शौक के कारण देश-देश की गति-विधि से उनकी इतनी जानकारी हो गई थी कि वह सभी मसलों पर—चाहे वे राजनीति के महत्वपूर्ण प्रश्न हो, चाहे और कुछ ज़रूरी या गैर-ज़रूरी—अपना मत वड़े विश्वासपूर्वक व्यक्त करते थे। १८७५ मे हुई वद्रीनाथजी की असामयिक मृत्यु ने १४ वर्ष पूरे करने से पहले ही उन्हे अकेले जीवन-सघर्ष मे ढकेल दिया था और परिवार मे किसी वड़े भाई की छत्र-छाया में नियत्रण न रहने से वह आत्मनिर्भर और अपनी वात पर अड़ने वाले स्वभाव के हो गए थे। कोई भी काम करने को सदा प्रस्तुत रहते थे। ग्राम-सुधार-योजनाओं में उनकी विशेष रुचि थी। उन्होने मकानो के निर्माण की देख-रेख की, वाग-वगीचे लगवाए, डेरी फार्म खुलवाए और मानो दुनिया की हर वात के वारे मे उनकी कुछ-न-कुछ जानकारी थी। उनके इस स्वभाव की हमारे घर में वडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई, खासतौर पर माताजी और वच्चो पर।

सन् १८६८ में, जव पिताजी ७ साल के थे, तव उनका विवाह उनसे कोई २ वर्ष से भी अधिक वड़ी लडकी के साथ हुआ था। थोड़े ही वर्षो मे वह एक ऐसी स्त्री सिद्ध हो गईं, जो वुद्धि और चरित्र-वल मे पिताजी से वढ-चढकर थी। उन्होने जो कुछ पढ़ा-सीखा, अपने-आप ही, और पिताजी के मुकावले में उनकी वौद्धिक भूख और ज्ञान-पिपासा कही अधिक थी। जव मैं सिर्फ आठ महीने का था, मेरी दादी का स्वर्ग-वास हो गया। फिर तो हमारे परिवार में मां, पिताजी और हम वच्चे ही रह गये। पिताजी की तरह मा को भी पारिवारिक मामलो में सलाह-मशविरा देने कोई वड़ी-वूढ़ी नही थी। मुझे ऐसा लगता है कि पिताजी मा की वौद्धिक उच्चता को जान गए थे और यह भी महसूस करने लगे थे कि ज्ञान और तर्क-शक्ति में वह उनकी वरावरी नही कर सकते। अतः

कभी-कभी वह पति के जन्मसिद्ध अधिकार से उन्हे दवाने की चेष्टा करते थे। मै जव थोड़ा बड़ा हुआ, तो मैंने देखा कि कभी-कभी पिताजी के कटु वचनों से मां बडी दुखित हो जाती थी। ऐसा लगता कि दोनों मे ही हास्यरस का अभाव है। दोनों ही बेहद संजीदा रहा करते थे। पिताजी वाहर भले ही खुलकर बात कर लेते हों, पर जवसे मैंने होश सम्हाला, घर मे मैंने उन्हे कभी भी कोमल और मृदु रूप मे नही देखा। इस स्वभाव के कारण अक्सर दोनो में कहा-सुनी और झगड़े हो जाते थे। अन्य बातों के साथ मा का यह दृढ़ विश्वास था कि नारी को हर प्रकार से पुरुष के पूर्णतया समान होने का दैवी अधिकार है। वे यह भी कभी स्वीकार करने को तैयार नही थी कि पति का काम हुक्म देना और पत्नी का उसे वजा लाना भर है। उनका मत था कि जीवन-सग्राम मे पति-पत्नी दोनों साथी और सहयोगी है।

पिताजी का मत ठीक इसके विपरीत था और यह आभास होते हुए भी कि उनके पास कोई उपयुक्त तर्क नही है, उनकी चेष्टा रहती थी कि घर मे उन्ही का हुक्म चले। १८९५ में मेरे नानाजी का स्वर्गवास हो गया और अव माताजी के लिए अपने घर के सिवा और कोई स्थान नही रहा।

स्वभावो की ऐसी भिन्नता होने पर भी मां ने जैसे-तैसे निभाया और एक बार तो उन्होंने मुझे यह रहस्य भी बताया कि क्यों वह पिताजी की कठोरता और अविचार को भी सहन कर लेती है। उन्होंने कहा कि कोई भी स्त्री पति का पर-स्त्रीगमन कभी भी क्षमा नही कर सकती। किन्तु यदि पति उसके प्रति वफादार है, तो पत्नी की दृष्टि मे इस एक गुण से सारे अवगुण ढक जाते है। इस दृष्टि से पिताजी एक आदर्श पति थे। न उनके चरित्र मे कोई खोट थी और न उनमे कोई दुर्व्यसन ही था। घर की पूरी मालकिन मां थी। पिताजी की पूरी तनख्वाह उन्ही के हाथ में पहुँचती थी। फिर वह उसे जैसे उचित समझे, खर्च करे। जब भी मां को पिताजी से कोई शिकायत होती या उनके मन को ठेस लगती,

तव वह उनके गुणो का ही ख्याल करती और मन-ही-मन ऐसा पति पाने के लिए अपना भाग्य सराहने लगती । इस प्रकार पिताजी की कठोरता को वह सहज ही मे क्षमा कर देती थी। यह केवल दोनो के स्वभावो की भिन्नता थी, जिसके कारण समय-समय पर कहा-सुनी हो जाया करती थी, वरना पिताजी वड़े प्रेमल और वफादार पति थे । जव १९०८ में मैंने संयुक्त प्रात मे अपनी वकालत शुरू की तो मा और पिताजी पर उसकी वडी विचित्र प्रतिक्रिया हुई । मा उस समय ५० वर्ष की थी और जव उन्हे ज्ञात हुआ कि अव उनके अपने लडके का एक और ऐसा घर हो गया है, जहा वह अधिकारपूर्वक जा सकती है, तो उनकी स्वतत्रता की भावना और भी प्रवल हो गई । ज्यो-ज्यो समय वीतता गया, पिताजी भी अधिक नरम होते गए । मेरे विचार से परिवार मे एक नया घर स्थापित हो जाने से जो परिवर्तन हुआ, उसके महत्व को उन्होने भी समझा और उसके वाद मां के साथ होने वाली वातचीत मे वह इस वात का ध्यान रखने लगे कि अव वह हमेशा अपनी ही वात नही मनवा सकेगे ।

माता-पिता की कठोर सजीदगी का उनकी सतान के मस्तिष्क पर वड़ा वुरा प्रभाव पडा । दोनो मे से कोई भी मृदु और हँसमुख स्वभाव का न था । मा को घर के काम-काज से ही फुरसत न थी । खाना वनाने के अलावा सिलाई और घर का सारा काम उन्ही को करना पड़ता था । पिताजी का अपना अलग कार्यक्रम था । वह दिन को ११ वजे दफ्तर गए सायकाल ६ वजे लौटते थे । फिर कोई आध घटे वाद ही खाना वगैरह खाकर मिनिस्टर साहव के वंगले पर मिलने-जुलने और गप-शप के लिए चले जाते थे और रात को ११ वजे वाद लौटते थे, जव कि सव वच्चे सो जाते थे । हमसे उनकी वहुत कम वात होती थी और खुल कर तो कभी वात हुई ही नही । इस तरह मा-वाप के स्नेह से एक तरह से मै वचित-सा ही रहा । उन दिनो हिन्दू-संयुक्त-परिवारो मे मा-वाप सवके सामने अपने वच्चो से प्रेम-प्रदर्शन नही करते थे । इस कमी की पूर्ति दादा-दादी कर देते थे, जिनके अत्यधिक लाड-प्यार से कभी-कभी वच्चे विगड़

भी जाते हैं। पर दुर्भाग्य से मेरे दादा-दादी भी न थे। अत. बचपन में मैंने पैतृक प्रेम का कभी अनुभव ही नही किया। अकेला मैं ही इस दुर्भाग्य का शिकार हुआ होऊँ, सो नही, मेरे छोटे भाई और बहनो को भी यद्यपि कुछ कम अशो मे, यही दुखद अनुभव हुआ। मुझे और मेरी बहन को पिताजी की उपेक्षा का पूरा भार वहन करना पड़ा और हम सर्वदा उनसे भयभीत रहे। वह जैसे हमारी पहुँच के बाहर थे; परन्तु अधेड होते-होते वह कुछ नरम पड़े। १८९९ मे पैदा हुई मेरी सबसे छोटी बहन हममे से सबसे भाग्यशाली रही। १९०५ में विवाह कर जब मैं अपनी पत्नी को घर लाया, तब मानो पिताजी के पितृ-प्रेम का बांध ही टूट गया। मेरी पत्नी की अवस्था तब सिर्फ १४ वर्ष की थी और हमारे घर मे पाव रखने के बाद ही से पिताजी ने उसपर अपना सारा प्रेम उडेल दिया। वह उसे नित नए-नए उपहार लाकर देने लगे, उसे उर्दू पढाना शुरू किया घटों उसके साथ गप-शप करते तथा ताश खेला करते थे। इस प्रकार शायद पहली बार पिताजी ने परिवार मे हँसना और जी बहलाना सीखा।

काश्मीरी पडितो की परम्परा के अनुसार शादी के बाद जब पत्नी हमारे घर मे आई तो उसे नया नाम दिया गया 'लक्ष्मीरानी'। पिताजी के बहुत से पोते-नाती थे। वे उन सबको प्यार करते थे। सबसे अधिक प्यार लक्ष्मीरानी के बच्चो को ही करते थे। १९१० में लक्ष्मीरानी के सन्तान उत्पन्न हुई। पिताजी का उसके साथ खेलना और हँसना देखने-योग्य होता था। उन्हे ऐसा करते देखकर मुझे ईर्ष्या होती थी। हिन्दू-परिवार मे बहुओ को जितना प्यार और सम्मान मिलता है, उतना लक्ष्मीरानी को हमारे घर मे भी मिला। पर शीघ्र ही उसके गुणो के कारण पिताजी अपनी लड़कियो से भी अधिक उसे चाहने लगे। १९४४ मे जब उसका देहान्त हुआ तो पिताजी के हृदय को भीषण वेदना हुई और इसके तीन महीने बाद उन्होने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली। लक्ष्मीरानी की बुद्धिमत्ता, सरल और मीठे स्वभाव, शान्त और स्थिर

मत, चुपचाप योग्यतापूर्वक घर-गृहस्थी की सम्हाल और धैर्य तथा सहिष्णुतापूर्वक दुख-कष्ट सहने की वृत्ति के कारण पिताजी उसका बड़ा आदर करते थे। हमारे परिवार के लिए तो वह साक्षात् लक्ष्मी ही थी, क्योकि वह अपने साथ सुख और सौभाग्य लेकर आई थी।

मेरा जावरा के अपने घर से चला आना पिताजो को अच्छा नही लगा। हम लोगो की खान्दानी जड़ अब वहा के सिवा और कही न थी। अत. पिताजी चाहते थे कि मै भी अपने पुरखो की परम्परा के अनुसार वही रियासती नौकरी मे रहूँ। १९०७ मे जब मैने एल-एल० बी० पास किया तो उन्होने मेरी जानकारी के बिना ही मिनिस्टर साहब को मेरे रियासत में नौकरी करने की बात लिख दी। पर मिनिस्टर साहब ने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया और पिताजी से कहा, "कैलास-नाथ अभी बहुत छोटा है (तब मै २० वर्ष का भी न था)। रियासत में किसी पद पर नियुक्त किये जाने से पहले उसे कही अनुभव प्राप्त कर लेने दो।" इससे पिताजो को न केवल असंतोष ही हुआ, बल्कि झुझलाहट भी। उन्होने जवाब मे मिनिस्टर साहब को लिख भेजा कि इस बारे मे फैसला करना तो उन्ही के हाथ की बात है; पर पिंजरे से पहली बार बाहर निकलने वाला पक्षी पता नही, फिर कब लौटे या न लौटे, उसी तरह कैलास-नाथ यदि एक बार जावरा से बाहर चला गया, तो फिर वह लौटे या न लौटे। इस सूक्ष्म सकेत का भी मिनिस्टर साहब पर कोई प्रभाव नही हुआ और मुझे अपने भाग्य की परीक्षा के लिए विस्तृत दुनिया मे चला आना पडा। जावरा से बाहर सभी स्थान मेरे लिए बराबर फासले और आकर्षण के थे। अकस्मात् मैने अपनी वकालत के लिए कानपुर को चुना। जैसी कि पिताजी को आशका थी, फिर कभी मै जावरा नही लौटा।

मेरे कानपुर और फिर इलाहाबाद के घरो ने पिताजी के क्षेत्र को भी काफी व्यापक बना दिया। इसका मतलब यह नही कि उनकी जावरा से ममता कुछ कम हो गई हो; पर सर्दियो के कुछ महीने हम सबके साथ संयुक्त प्रान्त मे बिताना उनको अच्छा लगने लगा। अब वह मेरे साथ काफी

खुलकर और आराम से रहने लगे। पर उनकी आत्मनिर्भरता और दूसरों पर वोझ न डालने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि वह जबतक हमारे साथ रहते, हमारे कामों मे अधिकाधिक हाथ वँटाते । मकान बनाने, मरम्मत की देखभाल करने, वगीचे की रूपरेखा आदि वनाने के सिवा वह हम सवकी देखभाल, नेक सलाह और पथप्रदर्शन आदि से भी वडी मदद किया करते । इतना सँब करने पर भी वह अपने आपको इस नए वातावरण के अनुकूल नही वना सके। वह पुराने विचारों के थे और विचारो की आजादी और जनतत्र की बढती हुई भावना के साथ उनको कोई सहानुभूति नहीं थी । जन-साधारण की वुद्धि, राजनीतिमत्ता और अनुभव को वह विशेष महत्व नही देते थे । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि दूसरों को अपनी भलाई खुद करने के लिए छोड़ देने की अपेक्षा उनका भला हमें ही करना चाहिए। उनका ख्याल था कि जनता की भलाई किसमे है, इसका वह स्वय ही अच्छा निर्णय कर सकते है । इसी सिद्धान्त के अनुसार उन्होने जावरा मे ५० वर्ष तक रियासत की सरकार द्वारा जनताकी भलाई के कई तरह के काम किए थे। पर जब वह पं० मोतीलाल नेहरू और पं० मदनमोहन मालवीय के नगर प्रयागराज मे आए तो अपने-आपको अकेला महसूस करने लगे। एक तो उनका अंगरेजी न जानना बहुत वड़ी वाधा साबित हुई । दूसरे उनमें अहंभाव की प्रवलता थी।

माताजी कहा करती थी कि उनमे रजोगुण का प्रावल्य है, जिससे वह मनन और शांति का जीवन नहीं बिता सकते थे । वह निरन्तर कुछ-न-कुछ करते रहना चाहते थे। यद्यपि वह जब इलाहाबाद आते थे तो उनके इर्द-गिर्द ऐसे कई लोग जमा हो जाते थे, जो उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, फिर भी उन्हें सदा यह ध्यान बना रहता था कि यहां चाहे वह कुछ भी करें, पर लोग तो उन्हे डा० काटजू के पिता के रूप में ही जानेगे । यह स्थिति उन्हे स्वीकार न थी। जावरा में इससे विलकुल उल्टी वात थी। वहां लोग उनकी, उनके गुणो और व्यक्तित्व के कारण इज्जत करते थे । जावरा में शायद ही कोई ऐसा घराना हो, छोटा या वड़ा, जिससे उनकी पीढ़ियों

की मैत्री और घनिष्ठ परिचय न हो और उनमे से हरएक के वह प्रिय 'पडितजी' थे।

अपने अन्तिम समय में पिताजी जावरा मे एक संस्था-सी बन गए थे। सभी श्रेणियो और वर्गों के लोगो को उनपर गर्व था और सभी उन्हे अपना सलाहकार और हितैषी समझते थे। वह जहा भी जाते, लोग उन्हे सिर-आखो पर उठा लेते थे। उन्होने अनेक हिन्दू और मुसलमान लडकियो को गोद ले रखा था और इस तरह गोद लिए हुए बच्चो से हुए उनके पोते-पोतियो और पड़पोतों की संख्या बेशुमार थी। गांवों और शहरो के लोग निरन्तर उनके दर्शन करने को आते रहते थे। मेरा छोटा भाई हमेशा पिताजी के साथ रहा, पर वह सदा एकान्तवासी ही रहे। उनकी सेवा के लिए एक पुराना नौकर था, जो हमारे परिवार का ही एक सदस्य बन चुका था। उसकी सेवा के कारण न सिर्फ पिताजी उसी का खयाल रखते थे, बल्कि स्त्री-बच्चो का भी। बच्चे तो खेलने के लिए उनको बराबर घेरे रहते थे। अपने सगे भाइयो के बच्चे और पोते-पोतियो को वह अपने ही बच्चो की तरह प्यार करते थे। वह भी उन्हे परिवार का सबसे बडा सदस्य और अपना सबसे बडा शुभचिन्तक समझते थे। उनके और अन्य रिश्तेदारो के लिए जावरा इसी कारण एक तीर्थस्थान-सा बन गया और पिताजी की विशाल-हृदयता भी ऐसी थी कि वह अपने पास आनेवाले सभी को दीर्घ अनुभव और बुद्धिमत्ता का कुछ-न-कुछ अमूल्य प्रसाद देते थे।

अन्तिम वर्षो मे तीन बातो का उन्हे विशेष ध्यान था। पहली तो यह कि वह एकदम स्वतत्र ही रहे और किसी का—यहां तक कि अपनी सन्तान का भी—तनिक-सा एहसान न ले। हरएक को वह कुछ-न-कुछ देते, पर लेते कभी किसी से कुछ नही थे। दूसरी, उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि मृत्यु-पर्यन्त उनके हाथ-पांव अपना कार्य करते रहे और उन्हे किसी की सेवा-शुश्रूषा का आभारी न होना पडे। तीसरी यह कि उनका शरीरान्त अपनी पैतृक भूमि जावरा में ही हो। एक बार मुझे एक कच्ची कोठरी दिखाकर बडे गम्भीर होकर उन्होने कहा, "मेरी जडे तो यहां है। बुढापे में मै इस

स्थान को कैसे छोड़ दू ?" उनकी ये तीनो आकांक्षाएँ पूरी हुईं।

हम लोग अपनी घर-गृहस्थी बसा चुके थे। पिताजी पर अब परिवार का कोई बोझ नही रह गया था, अत. पेन्शन के रूप मे उन्हे जो ३००) वेतन मिलता था, उससे वह बड़ी प्रसन्नता के साथ अनेक गरीब परिवारो की सहायता किया करते थे। रही स्वास्थ्य की बात, सो उन-जैसी अपनी देख-भाल शायद ही कोई रखता हो। वह कठोर नियमों का पालन करते थे। नपा-तुला खाना खाते, नपा और नियमित व्यायाम करते, निश्चित समय सोते और महीने की पहली तारीख को अपना वजन लेते। अगर उसमें थोड़ा-सा भी फर्क प्रतीत होता, तो वह उसे ठीक करने का पूरा प्रयत्न करते। कान, आख, मुह, दात और जोड़ों के लिए घरेलू नुस्खों की बनाई हुई कोई-न कोई दवा उनके पास जरूर रहती, जिसका नियमित रूप से वह प्रयोग करते थे। कभी-कभी मै उनकी इस जरूरत से ज्यादा शरीर-रक्षा पर टीका-टिप्पणी करता। वह कहते, "तुम्हे नही मालूम कि तन्दुरुस्ती कितनी बडी देन है।" कदाचित् इसीका परिणाम था कि ८५ वर्ष की आयु मे भी उनके सब-के-सब दात कायम थे, आंखो की रोशनी अच्छी थी और एक पोस्टकार्ड पर वे ३२ सतरे लिख सकते थे। उनका रहन-सहन बिलकुल पुराने ढंग का था। माताजी के स्वर्गवास के बाद वह अपना भोजन स्वयं बनाते और दूसरे किसी के हाथ का बना खाना कभी नही खाते थे। मृत्यु-पर्यन्त पूर्णतया स्वस्थ रहने की आकांक्षा अक्षरश. पूरी हुई। फरवरी १९४५ में जब वह पूर्णतया स्वस्थ नजर आते थे, एक दिन भोजन के बाद अचानक उनको मूर्च्छा आ गई और वह बेहोश हो गए। उसके बाद वह फिर होश में नही आए। पांच दिन बाद सदा के लिए चल बसे। इस प्रकार दुरुस्त होश-हवास मे वह शरीर से कभी किसी के मोहताज नही हुए।

२८ फरवरी, १९४५ को आधी रात के करीब उनका अन्तकाल आया। पर इसके आने से पहले न-जाने कैसे अचानक उन्होने पूरी आखे खोली और चारो ओर खड़े हम सबो को देखा—मानो हमसे विदा ले रहे हों—और फिर स्वर्ग सिधार गए। जावरा के लोगों ने ऐसा शोक मनाया, मानो

अकेले मेरे ही पिता का नही, उनमें से हरएक के पिता का वियोग हुआ हो। उनकी अरथी के साथ रियासत की सारी फौज, पुलिस, नवाब साहब के कुनबे के लोग और सभी श्रेणियो की जनता बहुत बड़ी संख्या में श्मशान तक गई। पडितजी चल बसे थे और सब समझने लगे थे कि उनके साथ ही एक युग भी हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

ससार में हर सतान अपने माता-पिता की ऋणी होती है। पर मुझपर यह अतिरिक्त ऋण है कि मेरी शिक्षा पर खर्च की गई एक-एक पाई खरी और कड़ी मेहनत की कमाई थी। अब महसूस करता हूँ, पहले शायद नहीं करता था कि लाहौर और इलाहाबाद मे मुझे पढाने के लिए मे रे मा-बाप को अपनी बहुत-सी सुविधाओं को त्यागना पडा था। उनके लिए यह एक गर्व और गौरव की बात थी। मेरी शिक्षा के प्रश्न पर उनके सामने परिवार मे और कोई मिसाल न थी। मुझे उच्चतम शिक्षा मिले, इसके लिए बडी-से-बड़ी तकलीफे और असुविधा सहन करने में उन्हे कभी तनिक-सी हिचक नही हुई। मेरा यह दृढ विश्वास है कि मुझे जीवन मे जो कुछ सफलता मिली ह उसका एकमात्र कारण पिताजी की खरी कमाई ही है। जब मै १९१२ में एल-एल० एम० के इम्तहान मे बैठा और असफल हो गया, तो मुझे ख्याल आया कि मेरी असफलता का कारण शायद यह हो कि इम्तहान की पूरी फीस मैंने अपने पास से ही दी थी। अतः दूसरे साल जब मैं फिर उसी परीक्षा मे बैठा, तो इम्तहान की फीस के लिए खास तौर से पिताजी से १००) रुपये मगवाए, ताकि मैं सचाई के साथ कह सकू कि मेरी पूरी पढ़ाई का खर्च मेरे पिताजी ने ही दिया। उन्होने वैसा ही किया और मैं पास हो गया। वह हमारे लिए एक ऐसे वटवृक्ष के समान थे, जिसकी छाया मृत्यु-पर्यन्त हम सबपर रही।

: ३ :

वाह री बेटी !

कहावत है, जो सकट मे साथ दे वही सच्चा साथी और मित्र है। इस दृष्टि से जब मै देखता हूं तो मुझे स्त्री-जाति का स्थान सर्वोच्च जान पडता है। अपने वकालत-काल मे मैंने जेल मे पड़े आत्मीयों और स्नेहियो के लिए माताओ, वहनो और पत्नियो के अपूर्व त्याग और प्रेम का साक्षात प्रतिरूप देखा है। जिन देवियो ने अपने जीवन मे कभी दहलीज से बाहर पॉव तक न रक्खा था, वह अपने स्नेही आत्मीयो की रक्षा के संवंध मे कई-कई वार मेरे पास आईं। युवा माताए गोदी के वच्चों के साथ दूर-दूर के सफर करती थी और अपने पतियो को बचाने के लिए एक वकील की मानव-भावना को उत्प्रेरित करती थी। जव मै न्यायालय मे बहस करता था तो अक्सर मुझे उन विनती-भरी ऑखो का ख्याल आ जाता, जिन्हे मै अपने दफ्तर मे छोड़ आता था।

भारतीय स्त्रियो के बारे मे यह ख्याल करना अत्यधिक भूल है कि अपने घरो मे उनकी दासियो की-सी स्थिति है और वे अपने पतियो की इच्छा-पूर्ति की साधन-मात्र है। मेरा यह अनुभव नही है। इसके विपरीत मैंने देखा है कि घरेलू क्षेत्र मे उन्हे वहुत ही प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त होता है। वे अपने घरो मे शासन करती है और अपने परिवार तथा पारिवारिक सपत्तियो-सबधी प्रबध एव देखभाल में उनका वड़ा हाथ होता है। वस्तुतः रिश्तेदारो में जो मुकदमेबाजी होती है, उसमे अधिकाश की प्रेरणा परिवार की स्त्रियो की ओर से होती है और यह विद्रोही भावना माता की इस भावना से उत्पन्न होती है कि परिवार की जायदाद मे से उसके बच्चो को जायज हिस्सा मिल सके।

पत्नी का खयाल होता है कि उसका पति पुरातन परपराओ के आगे झुक रहा है और अपने भाइयों तथा बहनो का पक्षपात कर रहा है। इस पक्षपात और समर्पण की सीमा यहाँ तक बढ जाती है कि वह अपने बच्चों के

स्वार्थ तक की वलि करने को तैयार हो जाता है ; लेकिन उसकी पत्नी तो ऐसे किन्ही पुराने वधनो एवं परंपराओ मे नही वधी होती। वह अपने वच्चो के हित के लिए लड़ती है और स्वभावत. उसका पति उसके प्रभाव को आखिरकार स्वीकार कर लेता है और जैसा वह चाहती है, करता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे अनेक ऐसे अनुभव हुए है और उनमें एक तो वहुत ही मनोरजक है।

एक दिन सवेरे मै अपने दफ्तर में वैठा था। मेरे चपरासी ने सूचना दी कि एक देवी आपसे कानूनी सलाह लेने के लिए मिलना चाहती है। भद्र-परिवार की होने के कारण मैंने उसे पास के कमरे मे वैठाने को कहा और चंद मिनटो वाद मै वहा गया। मैंने देखा कि साफ-सुथरे वस्त्र पहने एक हिन्दू युवती वैठी है। वह वडी नम्र और सहज स्वभाव की थी। उसने खडे होकर मुझे नमस्कार किया और सामान्य आचार के उपरांत मैंने पूछा कि मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। इसपर उसने वताया कि उसके पति मिर्जापुर के एक स्कूल मे अध्यापक है। उनका वेतन ९० रु० मासिक है और उनके दो वच्चे है। आगे उसने कहा, "मेरे पति का घर पास ही के ज़िले में है। वे तीन भाई है और उनकी वहुत वडी जमीदारी और एक पुश्तैनी मकान है। इस जायदाद से अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है; लेकिन दो भाई उस सारी आय का इस्तेमाल कर लेते है। वे उसमे से मेरे पति को हिस्सा नही देते।

"डाक्टर साहव, आप मेरी इस वात से सहमत होगे कि हम इस वात की उपेक्षा नही कर सकते। मैने अपने पति को समझाया था कि हमें भी अपने परिवार का पालन करना है और हमे इस ढग से अपनी आय के हिस्से को दूसरो को नही उड़ाने देना चाहिए। सो मैने उन्हे राय दी कि जायदाद का वटवारा कर लेना होगा। यह सोचकर हम दोनो अपने पुश्तैनी गाव मे गये और मेरे पति ने दोनो भाइयो से जायदाद और उसकी आमदनी का हिस्सा मागा। आप जानते है कि हुआ क्या ? भाइयो ने उनकी वात ही नही सुनी और वे लडने लगे। उन्होने हमारी वेइज्जती की और हमें घर

से निकल जाने को कहा। डाक्टर साहब, मै आपसे कहती हूँ, (उसका स्वर उत्तेजित हो उठा और आँखे लाल हो गई) मै राजपूत की बेटी हूँ। अगर यह घटना मेरे मायके मे हुई होती तो लड़ाई हो जाती और तलवारे निकल आती। मै अपने बच्चो की सपत्ति को इस तरह किसी को भी नही हडपने दे सकती। मै तो इसके लिए लड मरती।

"लेकिन मेरे पति बहुत ही नम्र और कोमल स्वभाव के है। जब मैने उन्हे दृढ रहने तथा अपने भाइयो के साथ व्यवहार मे सख्ती करने को कहा तो वह बोले कि यह मेरे बस का नही। वह अपने भाइयो के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे नही लड सकते। डाक्टर साहब, क्या आप समझते हैं कि उनका ऐसा करना ठीक था और क्या मेरा बच्चो के हक पर जोर देना मुनासिब नही था ?"

आवेश एव क्रोध के मारे उसकी आँखे लाल हो आई थी और उसके क्रोधी स्वभाव को देखकर आश्चर्य के साथ-साथ मेरा मन भी भर आया। इसके बाद मैने पूछा, "उसके बाद फिर क्या हुआ ?"

उसने जवाब दिया, "मेरे पति ने कहा था कि वह कुछ नही कर सकते और अगर तुम पारिवारिक सपत्ति के बटवारे पर ही ज़ोर देती हो तो अदालत के सिवा दूसरा चारा नही है। इसपर मैने कहा कि इसके लिए कानूनी सलाह लो। उन्होने जवाब दिया कि वकील लोग तो फीस मागेगे और मेरे पास पैसा है नही। भला इतनी थोड़ी-सी आमदनी मे से मै उनकी फीसे कैसे दे सकता हूँ! इसपर मैने उन्हे आपसे राय लेने को कहा, जिसका जवाब उन्होने यह दिया, 'डा० काटजू तो बड़े भारी वकील है। सभव है कि वह बहुत बड़ी फीस मागे और हमारे लिए उतना देना एकदम असंभव होगा।'

"इसपर मैने उनसे कहा कि मै खुद ही आपके यहाँ जाऊँगी, आपको अपने परिवार की सारी हालत बताऊँगी और मुझे पक्का यकीन था कि आप हमारी सहायता करेगे।" इतना कह कर वह चुप होगई। उसकी शांत आंखो मे उसका दृढ निश्चय झलक रहा था। मै तनिक मुस्कराया और

बोला, "तुमने मेरे पास आकर बहुत समझदारी का काम किया है । अब तो मैंने तुम्हारी सारी बात सुन ली है, इसलिए तुम बेफिक्री के साथ अपने घर जाओ । अदालतें और मुकदमेबाजी स्त्रियों के काम नही । और न तुमको यह शोभा देता है । बेहतर होगा कि तुम अपने पति को मेरे पास भेज दो । मैं उन्हे उचित सलाह दे दूगा । और हाँ, यह यकीन रखना कि किसी प्रकार की फीस की कोई बात नही होगी ।"

इसपर जब उसने कहा कि उसके पति वहाँ मौजूद है तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा । मैंने हैरानी के साथ पूछा, "कहाँ है ?"

"बाहर, फाटक पर ।" उसने जवाब दिया ।

"कौन-सा फाटक ?"

"आपकी कोठी के बाहर वह तागे मे बैठे है ।"

मै हँसा और मैंने चपरासी से कहा कि फाटक के बाहर तागे में बैठे महाशय को भीतर बुला लाओ । तत्काल ही पति महाशय आगए । वह बहुत ही सरल, नम्र तथा विक्षिप्त-सा था । जाहिर था कि स्थिति उसके बस की नही थी । मुकाबले मे उसकी पत्नी का व्यक्तित्व रोबीला था ।

मैंने उससे कहा कि आपकी पत्नी ने मुझे सारी बात बता दी है । आप अपने पारिवारिक मामलो के विषय मे कोई चिंता न करें, सब ठीक हो जायगा । मैंने मिर्जापुर के कुछ वकील-मित्रो के नाम लिये और कहा कि आप इनमे से एक के पास जाकर मेरा नाम लेना और उनसे कह देना कि वह मुकदमा दायर करने का मसविदा बना कर मेरे देखने को भेज दें । इसके बाद वे दोनो चले गए, पत्नी बहुत खुश थी और पति एकदम गंभीर थे ।

थोड़े दिनो बाद पत्नी की ओर से मुझे एक पत्र मिला, जिसके साथ मुकदमे का मसविदा था । पत्र मे उसने अपने आपको मेरी पुत्री जाहिर किया था । मैंने मसविदा देखकर उसे लौटा दिया; लेकिन कानूनी कार्रवाही की ज़रूरत ही नही पडी । बाद में मुझे सूचित किया गया कि वह स्त्री अपने पति के साथ अपने पुश्तैनी गाव मे गई थी और वहाँ उसने सब लोगो मे फैला दिया कि डा० काटजू ने उसे मुहबोली बेटी बना लिया है और वह

बिना फीस लिए ही जिला अदालत मे उसका मुकदमा लडेगे। मै समझता हूँ कि दोनो भाइयो का दिमाग इससे शात होगया। जायदाद के वटवारे की माग का वह जवाव भी कोई नही दे सकते थे और इस प्रकार वे आपसी समझौता करने को सहमत होगए।

कई वर्ष वाद, मेरा खयाल है १९४० में, मुझे एक अपरिचित स्त्री का खत मिला, जिसने मुझे पिता कहकर सबोधित किया था। एकाएक मै उसे पहचान नही सका था। खत मे लिखा था कि उसके पति का उत्तर-प्रदेश के किसी दूसरे स्थान पर तबादला हो गया है और अब उसे १२० रु० मासिक मिलते है। वच्चे दो से वढ़ कर चार होगए है। आगे उसने लिखा था, "यह देखते हुए कि परिवार की आय इस बढ़ते हुए परिवार के लिए सर्वथा अपर्याप्त है, मैंने अपने यत्नो द्वारा आय मे वृद्धि करने का निश्चय किया। तदनुसार मैंने अपने घर पर पढना शुरू किया और इलाहावाद विश्वविद्यालय से मैट्रिक, इटर और वी० ए० परीक्षाए पास कर ली। अव मैं वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० टी० की परीक्षा पास करना चाहती हूँ। दाखिला मिल गया है और यूनिवर्सिटी के महिला होस्टल मे जगह भी मिल गई है। होस्टल का खर्च लगभग चालीस रुपये माहवार है और मेरे पति इस सारे खर्च को पूरा नही कर सकते। उन्होने एक वर्ष मेरे घर से बाहर रहने की तो मजूरी दे दी है और वह इस वीच वच्चो की भी देखभाल करेंगे, लेकिन खर्चे के वारे मे उनका कहना है कि वह अधिक-से-अधिक दस रुपये मासिक दे सकते है।" पत्र के अंत मे उसने लिखा था कि बी० टी० परीक्षा पास करने और यूनिवर्सिटी होस्टल मे रह सकने के लिए आप मेरी सहायता कीजिए।

मैं उस खत को वार-वार पढ़ता रहा और मेरे मन मे उसके प्रति अधिकाधिक श्रद्धा और सम्मान उत्पन्न हुआ। मेरे मस्तिष्क में वह पुराना दृश्य चित्रित हो उठा और अनायास ही मैंने मन-ही-मन कहा, "उस जैसी वेटी या वहन का होना कितने सौभाग्य की वात है! परमात्मा उसे चिरंजीवी करे!"

: ४ :

दैनिक समस्याएं और उनका समाधान

एक बहन से एक बार हिंदू घरों की सुख-शांति को अक्सर विक्षिप्त कर देने वाले असुखद संबंधों के बारे में चर्चा हो रही थी। मेरा सुझाव था कि इस संकट का मूल कारण अक्सर स्वत्व-अधिकार की भावना होती है और यदि संबंधित लोग गीता के 'मा फलेषु कदाचन' के सिद्धांत पर आचरण करें तो सहज ही लाभ हो सकता है। यह दर्शन-सिद्धांत हिंदू घरों की रोजमर्रा की समस्याओं का क्योंकर समाधान कर सकता है, यह स्पष्ट करना इस लेख का उद्देश्य है।

प्रत्येक मानव-प्राणी में प्रबल स्वत्वाधिकार की भावना होती है और यह जरूरी भी नहीं कि हम उसे अनिवार्यत: बुरा ही समझें। लेकिन होता कभी-कभी यह है कि कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिष्ठित बन जाता है और उसके कारण ऐसी भक्ति और समर्पण के कार्य होने लगते हैं, जिनमें अपनापन का सर्वथा लोप हो जाता है। वस्तुत: ऐसा आत्मत्याग दिखाई तो बहुत कम देता है, लेकिन इसका मूल तो अधिकार-भावना में ही निहित है।

यहाँ मुझे अपने पुत्र के विषय में एक मां की स्वत्वाधिकार भावना का ख्याल हो आता है। एक हिंदू माँ के नाते वह अनुभव करती है कि बच्चे को जन्म देकर और अगाध मातृ-स्नेह से उसका लालन-पालन करने के कारण वह उसका अनंत-प्रेम पाने की अधिकारिणी है। वह यह भी ख्याल करती है कि उसे अपने पुत्र की धन-दौलत, उसकी सुख-समृद्धि, उसके घर और बाहरी जगत में भागीदार बनने का अधिकार है। वह पुत्र पर 'अधिकार' शब्द का अत्यधिक वास्तविक अर्थों में दावा करती है और हमारे धार्मिक उपदेश भी उसी लक्ष्य की प्रेरणा करते हैं। इसके बाद आती है बहू—पुत्र की पत्नी। अपने अस्तित्व के नाते वह भी अपने अधिकार का दावा करती है। उसका यह दावा अपने पति के प्रेम पर

स्वामित्वपूर्ण अधिकार का दावा होता है। वह दावा करती है कि वह कानून द्वारा, धर्म द्वारा और पुरातन परंपरा द्वारा अपने पति का अग बन गई है। पति और पत्नी के मेल से ही निश्चित पूर्णता बनती है। वह घर उसका घर है, पति की संपत्ति उसकी संपत्ति है। उसकी सास अपने पुत्र द्वारा पौत्रो तक पर भी स्वत्वाधिकार का दावा करती है, और मा तथा पत्नी की स्वत्वाधिकार की भावनाओ में संघर्ष होने के कारण हिंदू घर मे लड़ाई-झगड़ा, ईर्ष्या और कभी-कभी तो बेहद अशाति हो जाती है।

यह बात केवल माँ तक ही सीमित नही है। पिता, बहन और भाई पर भी समान रूप मे लागू होती है। विवाह से पूर्व इनमे हर कोई अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार, पुत्र या भाई के नाते सीमित स्वत्व-भावना का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त भाई के प्रति भाई के, बहन के प्रति भाई के तथा अन्य निकट नातेदारो के प्रति कर्त्तव्यों के विषय में भी हमारे यहाँ धार्मिक आदेश हैं। स्वत्वाधिकार की इन सारी भावनाओं का परिवार में अनधिकृत रूप से प्रवेश पा जाने वाली पत्नी की स्वत्व-भावना के साथ सघर्ष होने लगता है। स्वभावत. वह एकाधिकार का दावा करती है और पति के प्रेम अथवा सम्मान में किसी भी दूसरे व्यक्ति को शामिल नही होने देना चाहती। सभव है कि वह स्वतः ही स्नेही बहू या भाभी का एक आदर्श नमूना हो; लेकिन यह सब भी उसकी आतरिक स्वेच्छा से ही चालित होगा। उसके पति के प्रेम मे किसी का अधिकार पूर्णतः विद्यमान था, यह जतलाना उसे उत्तेजित करता है और घर की शांति-भंग कर देता है। वह अपने पति-प्रेम पर अपने निजी अधिकार से भिन्न किसी के दावे को सहन करने को तैयार नही होती, चाहे वह किसी भी ढंग का क्यों न हो। सास-बहुओ या एक व्यक्ति की पत्नी और उसकी बहन तथा अन्य नातेदारों के बीच विद्यमान जिस अशांति की कहानिया समूचे भारत मे सुनने को मिलती हैं, वे मूलतः पति के अभिभावकों या अन्य रिश्ते-दारो की ओर से इस स्वत्व-भावना का प्रयोग करने से उत्पन्न होती है।

इन सारे संघर्षों का सही-सही इलाज, जो मुझे जान पड़ता है, यह है कि इस स्वत्व-भावना का पूर्णतया परित्याग किया जाय। जैसे ही एक व्यक्ति गृहस्थ-जीवन मे प्रवेश करे, उसके अभिभावको या रिश्तेदारों को चाहिए कि उस व्यक्ति पर के अपने सब प्रकार के दावो का परित्याग कर दे। एक नारी के लिए विवाह का अर्थ क्या है, इसे हर स्त्री जानती है। उसके जीवन की यह महानतम घटना होती है। वह नितात नये पथ की राही वनती है। वह अपने मां-वाप के आश्रय और अपने उस घर को छोड देती है, जहाँ उसने कम या ज्यादा अपने जीवन के अनेक वर्ष विताए थे। वह अपने जीवन को एक ऐसे साथी के साथ जोडने निकलती है, जिसके साथ उसका किसी भी प्रकार का रक्त-संवध नही था। इसमे शक नही कि जो वधन उसे पति से वाधने वाले है, वे रक्त-वधनो की अपेक्षा कही अधिक प्रवल होते हैं, लेकिन शुरू-शुरू में तो कोई भी यह नही जानता कि ये वधन क्या रूप धारण करेगे। दो जीवनो के सयोग से अन्य प्राणियो का आविर्भाव होता है और उसके वाद साझे दुख-सुख का क्रम शुरू हो जाता है। एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न दो मानव-प्राणी किसी अज्ञात आध्यात्मिक शक्ति के सहारे भौतिक रूप मे प्राय. एक वन जाते है। सुखमय वैवाहिक जीवन का अर्थ भी यही है।

पुत्र का विवाह हो जाने के वावजूद माँ की स्वत्वाधिकार की भावना स्थिर वनी रह जाती है। पुत्र के विवाहित हो जाने पर माँ, पिता, भाई और वहन को चाहिए कि वे उसके प्रति अपने स्नेह के सव दावो को सामूहिक रूप में नई वहू के हवाले कर दे, जिससे वह अपने पति के मान और स्नेह का अखड रूप मे उपभोग कर सके। उसे किसी तरह के प्रेम या दावे के कारण विचलित नही करना चाहिए। सभव है, यह कुछ अटपटा-सा लगे, लेकिन वस्तुतः ऐसा यह है नही। मै समझता हू कि सास को यह नही मोचना चाहिए कि वह अपने घर में वहू ला रही है, उसे वहू के वजाय पुत्री के रूप मे उसका स्वागत करना चाहिए। पति की वहन को भाभी के रूप मे उसका स्वागत नही करना चाहिए, प्रत्युत अपनी

असली बहन की तरह। यदि यह अनुभूति वास्तविक होगी तो पुत्र या भाई के बंधन पूर्ववत् रहेगे और सभवत वह अधिक सुदृढ होगे, लेकिन एक अन्य ही रूप मे। उस अवस्था में वह पुत्र नही, वल्कि दामाद वन जायगा, दूसरी ओर भाई न रहकर बहन का पति होगा और इसीके अनुसार नतीजे भी हासिल होंगे। एक दामाद स्नेह, मान और विशेष चिंता का अधिकारी होता है। आप महसूस करते है कि उसके प्रति आपकी सब तरह की जिम्मेदारियाँ है, लेकिन किसी प्रकार का अधिकार नही। इस दृष्टि से मै सुझाव दूंगा कि यदि आप अपने बेटे के साथ दामाद यानी अपनी नई मुहबोली बेटी के पति के तौर पर व्यवहार करेगें तो इसका परिणाम यह होगा कि जहाँ आप एक ओर अपना सारा स्नेह तथा मान उसे लगातार देते रहेगे, वहाँ आप उससे अधिकार के नाते स्वयमेव कुछ भी दावा करना छोड़ देगे। आप अपने पुत्र के घर मे यह समझ कर नही जायंगे कि वैसा करने का आपको अधिकार है, प्रत्युत अपनी बेटी के घर में एक सम्मानित अतिथि के नाते जायंगे। इसी तरह बहन अपने भाई के घर में इस दावे के साथ नही जायगी कि वह उसके भाई का घर है, बल्कि अपनी बहन के घर जायगी। मेरा अनुभव है कि मानसिक दृष्टिकोण मे इस परिवर्त्तन के आधार पर कल्पनातीत सुख-शांति की रचना हो जायगी। यदि वहू के साथ बेटी का-सा व्यवहार किया जाय तो वह अवर्णनीय प्रेम का प्रतिपादन करेगी, और वह खुद भी और अपने पति को भी ऐसे कार्यो की प्रेरणा करेगी, जिनसे अधिकाधिक स्नेह और सुख की उत्पत्ति हो। एक हिंदू पत्नी के हृदय में से जिस क्षण आप प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या के तत्वो को दूर कर देगे, और जैसे ही उसे यह सतोष हो जायगा कि वह अपने पति के घर और उसके स्वत्वो की एकछत्र एवं एकमात्र स्वामिनी है, वह स्वतः ही अपने पति के अभिभावकों और रिश्तेदारों के साथ ऐसे ढंग का व्यवहार करेगी, जो इस विषय में सिवा हिन्दू नारी के अन्य कोई नही कर सकता। यह मै अपने निजी अनुभव और ज्ञान के आधार पर कहता हूँ। मेरा ख्याल है कि इस जीवन में अपनी

माताजी से अधिक समझदार महिला मेरे देखने मे नही आई । उन्होंने इन्ही सिद्धातो के आधार पर कार्य किया था । उनके एक मुह-बोले भाई थे, लेकिन उनके भाई की पत्नी उनकी बहन थी । भाई से वह इस-लिए प्रेम करती थी कि वह उनकी इस नई बहन के पति थे, और दूसरी ओर यह बहन यानी लोकव्यवहार की भाषा मे मेरी मौसी मेरे और अपने निजी पुत्र के बीच रचमात्र भेद नही करती थी । हम एक गाँव मे रहते थे और वह रहती थी लाहौर नगर मे । यद्यपि उनकी स्थिति इतनी सुखकर नही थी तथापि उन्होंने बहुत जोर देकर मुझे अपने यहाँ बुला लिया । अपने आपको अत्यधिक असुविधा मे डाल कर भी उन्होंने मुझे अपने यहाँ पाच वर्ष तक रखा और मेरी कालेज की शिक्षा को पूर्ण किया । जब मेरा विवाह हुआ तो मेरी माताजी ने मेरी पत्नी के साथ बहू-जैसा नही, बल्कि अपनी निजी बेटी-जैसा व्यवहार किया । उसकी सुख-सुविधा को वह मेरी सुख-सुविधा से भी कही अधिक आकती थी । वह बरसो मेरे और मेरी पत्नी के साथ रही । हमारे ही घर मे उनका स्वर्गवास हुआ और यद्यपि हम कहा करते थे कि वह घर की मालकिन है और हम सब उनके बच्चे है, तथापि वह हमेशा इसी बात पर जोर देती थी कि यह घर तो उनकी नई बेटी का है और वह इस घर में मेहमान के तौर पर रहती है । इसी का यह परिणाम था कि हमारे यहाँ चिरतन सुख-शाति थी ।

बहुधा इस बात को महसूस नही किया जाता कि एक स्त्री पिता या माँ के प्रेम के लिए कितनी तरसती है । अनेक अवसरो पर मुझे इसका बडा विचित्र अनुभव हुआ है । अनेक युवा लोगो ने मुझे अपना स्नेह-दान किया है । मेरी अधेड जिंदगी के इन बरसो मे मेरा यह सबसे बड़ा सुख है । इस सुख के पीछे भेद यह है कि मेरी बहुत-सी मुह-बोली बेटियाँ है, जो अपने घरो की मालकिने तथा कई-कई बच्चो की माताएँ है । बड़े विचित्र ढग से मुझे यह स्थिति प्राप्त हुई है । पति और पत्नी की मौजूदगी में मैंने बहुधा युवा लड़की से यह सवाल किया है कि क्या वह मेरी बेटी बनना चाहती है या बहू, और इसका उत्तर असदिग्ध रूप मे 'बेटी' मिला ।

कुछ समय पूर्व इसी भावना का मुझे एक बहुमूल्य अनुभव हुआ। कलकत्ते के सरकारी भवन में एक स्नेही बहन मेरे यहाँ आईं। कुछ दिन रही और जाते समय बोली, "आप लोगो के साथ कुछ दिन रह कर मुझे बडी खुशी हुई, लेकिन मै नही जानती कि इस सुख को पाने के लिए मेरा बारंबार आपके यहा आकर रहना उचित होगा या नही।"

मैं मुस्कराया, और मैंने कहा, "यह कठिनाई तो सहज ही हल हो सकती है। मुझे तुम्हे बहन बना लेना चाहिए या बेटी। इनमे जो बनना चाहो, वह तुम बनाओ।"

उसका नि.संकोच उत्तर था, "मै बेटी बनना चाहती हूँ।"

प्रत्येक नारी के हृदय में माँ और पिता के प्यार के लिए जो भूख है, उसका यह संकेत-मात्र है। यदि सास-ससुर उसे अपने बेटे की पत्नी न मान कर उसे अपनी बेटी बना ले तो आश्चर्यजनक सुख की समृद्धि होकर रहेगी।

: ५ :

मैंने वकालत कैसे शुरू की

मार्च १९०० तक जावड़ा (मध्यभारत) के स्कूल मे पढ़ने के बाद मै कई महीने तक बीमार रहा। अक्तूबर १९०० मे मेरे पिताजी ने मुझे अपने ननिहाल लाहौर में जाने की स्वीकृति दे दी ताकि मै मार्च १९०१ में पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा में बैठ सकू। आया तो मै यहाँ केवल ६ महीने के लिए था; लेकिन साढे चार वर्ष तक रह गया और मार्च १९०५ मे मै फारमन क्रिश्चियन कालेज, लाहौर से ग्रेजुएट हो गया। १९०३ तक मुझे तनिक भी ख्याल नही था कि मै कानूनी पेशा अख्तियार करूंगा। यदि वास्तविक रूप में मुझपर छोडा जाता तो मै डाक्टर (चिकित्सक) बनता। मैंने जुलाई १९०३ में मैडिकल कालेज मे भर्ती होने की सोची भी थी, लेकिन पिताजी नही माने। उन्होंने जावड़ा मे एक मित्र से सलाह ली और उनकी सलाह

के अनुसार मैंने १९०५ मे बी० ए० की परीक्षा पास कर ली । इस बीच डाक्टरी पेशे का आकर्षण तो फीका पड चुका था और उसकी जगह कानूनी डिग्री हासिल करने की कुछ-कुछ इच्छा हो गई थी । यह इच्छा उत्पन्न होने की एक बड़ी विचित्र घटना है ।

शायद १९०३–४ की बात है। एक दिन सुबह-सुबह यूनिवर्सिटी रॉयल कमीशन के सदस्य हमारे कालेज मे आये । इस कमीशन के एक सदस्य सर गुरुदास बनर्जी थे, जो बडे वकील और उन दिनो कलकत्ता हाईकोर्ट के जज थे । समाचार-पत्रो में कमीशन की नियुक्ति-सबधी घोषणा छपी थी और उसमे गुरुदास बनर्जी के विषय मे लिखा गया था : "हमारे ट्रस्टी और स्नेही गुरुदास बनर्जी, एम० ए०, डाक्टर ऑव लॉ ।" मैं इन शास्त्रीय उपाधियो से बडा प्रभावित हुआ । मैंने अपने मन में निश्चय किया कि मै भी एक दिन "एम० ए० और डॉक्टर ऑव लॉ" बनूगा । उस समय मेरी आयु केवल पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी और मेरी यह अभिलाषा मुझे तबतक मन-ही-मन उद्वेलित करती रही जबतक कि मैंने इसे पूरा नही कर लिया । तदनुसार पिताजी ने जब मुझे कानूनी शिक्षा के लिए इलाहाबाद जाने को कहा तो मै तत्काल वहा जाने को राजी हो गया ।

उन दिनो सयुक्तप्रात (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) मे कानूनी शिक्षा का तरीका बड़ा ही असतोषजनक था । प्रांत में उस समय केवल एक ही विश्वविद्यालय था—इलाहाबाद विश्वविद्यालय । वह शिक्षा-संस्था नही थी, बल्कि ऐसी परीक्षा-सस्था थी जो मात्र परीक्षाओ और उपाधियो के लिए पाठ्यक्रमो का निश्चय करती थी । कानूनी शिक्षा प्रात के कुछ मुख्य कालेजो मे नियत की गई कानूनी-कक्षाओं में दी जाती थी । इनमें मुख्य कालेज थे—म्यूर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद, कैनिंग कालेज, लखनऊ और आगरा कालेज, आगरा । कालेज अधिकारी इन कानूनी कक्षाओ-को कालेज के सामान्य प्रबध के लिए अतिरिक्त आय का साधन समझते थे । अदालतो के वकील कक्षाओ मे पढाने आते थे, जिन्हे बहुत थोडी

तनख्वाहे दी जाती थी। इलाहावाद में चार सौ रुपये माहवार के एक प्रोफेसर और डेढ सौ रुपए के दो लेक्चरार थे। ये लोग सप्ताह मे तीन वार लेक्चर देते थे। प्रोफेसर समूचे वर्ष प्रात.काल कक्षा लेता था और दोनो लेक्चरार शाम को। इसका कोई चारा भी नही था, क्योकि उन्हे दिन के समय अदालतों मे भी काम करना होता था। इलाहावाद मे छुट्टियां भी वहुत लम्वी होती थी, गर्मियों मे अढ़ाई महीने की —अगस्त से लेकर अक्तूबर तक। जिन दिनो हाईकोर्ट वन्द होता था, उन दिनो भी दस सप्ताह के लिए कोई लेक्चर नही होते थे। इस तरह कानून के विद्यार्थियों का वहुत-सा समय व्यर्थ जाता था। कोई तिमाही या छमाही इम्तहान भी नही होते थे। किसी भी स्वीकृत सस्था की कक्षा मे नियत सख्या मे लेक्चरों की हाजिरी के वाद सीधे एल-एल० वी० में बैठ सकता था। लेक्चरार एक समय मे पैंतालीस-पचास मिनट तक अपना लेक्चर देते थे और विद्यार्थी उनके नोट लिख लेते थे।

किसी भी युवक के लिए यह बडा ही कष्टकर प्रश्न होता है कि वह कौन-सा पेशा अख्तियार करे। मेरे सामने भी यही समस्या थी। माता-पिता ने मुझे लाहौर और इलाहावाद भेज कर काफी कष्ट उठाया था और अव यह सर्वथा असभव था कि मै उनपर और अधिक बोझा बन कर रहूँ। मै घर लौट आया और मैंने किसी भारतीय रियासत में नौकरी की खोज शुरू की। मुझे कही नौकरी न मिली और मेरे आवेदन-पत्रो का भी कोई जवाब नही आया।

ब्रिटिश भारत मे तो नौकरी का प्रश्न ही पैदा नही होता था। न तो मैं असाधारण योग्यता-सम्पन्न था और न ही मेरा कोई प्रभाव था। कानूनी पेशा अख्तियार कर लेना भी मेरे लिए कोई सहज नही था। पहले मुझे कोई उपयुक्त स्थान चुनना था। संयुक्त-प्रांत के प्रायः सभी जिले मेरे लिए समान रूप मे उपयुक्त थे, क्योकि सारे ही मेरे लिए अपरिचित थे और कही भी मेरा कोई सबंधी न था। इस प्रकार जव मैं वेकारी और अनिश्चय के दिन काट रहा था तो भगवान् ने पडित पृथ्वीनाथ के रूप

में मुझे सहायता भेजी ।

पडित पृथ्वीनाथ कानपुर की जिला अदालत में वडे वकील थे । सभी जातियो के लोग उनका सम्मान करते थे और उनसे प्रेम करते थे । उनका व्यक्तित्व वडा ही प्रभावशाली था । प्रांत भर मे अपने समय मे वह वहुत वड़े जिरह करने वाले माने जाते थे । एक अंग्रेज जज ने खुले-आम कहा था कि यदि कभी किसी हत्या के अपराव मे मैं फंस जाऊ तो अपने जीवन को पंडित पृथ्वीनाथ के हाथो सौंप दूगा । झूठे गवाहों और वदमाशो के लिए वह आतक थे । वह कानपुर वार एसोसिएशन के प्रधान थे । कानपुर की प्राय. प्रत्येक सार्वजनिक सस्था मे वह सक्रिय दिलचस्पी लेते थे । उनकी आमदनी वहुत थी और उसी प्रकार वह उदारतापूर्वक परोपकार के कार्यों मे खर्च भी करते थे ।

जुलाई १९०७ में जव मैंने वकालत की परीक्षा पास की थी तो मैं पहली वार पंडित पृथ्वीनाथ से मिला था । मेरी ही तरह वह भी काश्मीरी ब्राह्मण थे । लेकिन उनके साथ मेरी कोई रिश्तेदारी न थी । मैं कानपुर मे अपने चचेरे भाई से मिलने गया था और उसी समय मैं एक स्थानीय दीवानी के जज से भी मिला, जिनके नाम मेरे पास एक परिचय-पत्र था । जज महोदय सहृदयतापूर्वक मिले और उन्होने पूछा कि भविष्य में अव तुम्हारी क्या करने की इच्छा है । मैंने कहा कि अभी तक तो कुछ नहीं सोचा । इसके वाद वह वोले कि उत्तर-प्रदेश की जिला अदालतो का मुझे पर्याप्त अनुभव है और मेरी राय मे पडित पृथ्वीनाथ ही ऐसे योग्य व्यक्ति है जो इस पेशे में आने वालो को सीधी राह पर डाल सकते है । उन्होंने वहुत ज़ोर के साथ पडितजी से मुझे मिलने की सलाह दी । तदनुसार मैं उनसे मिला । पंडित पृथ्वीनाथ ने इससे पहले भी मेरा नाम सुन रखा था । जज महोदय ने उनके विषय मे जो विचार प्रकट किये थे, मैंने उन्हे दुहराया । वह मुस्कराए और वोले कि अगर तुम कानपुर आने का निश्चय करो तो मैं तुम्हारी अवश्य सहायता करूँगा । उस समय यह विलकुल ही साधारण-सी चर्चा हुई थी । कानपुर एक वडा नगर और उसमें

रहना वड़ा खर्चीला था। इसपर सर्वथा अपरिचित होने के कारण मेरे लिए वहा जीवन आरंभ करना बड़ी गम्भीर समस्या बन गई थी।

इसी सोच-विचार मे महीनो बीत गए। मै सन्देह और चिन्ता के समुद्र मे डूबता उतराता रहा; लेकिन किनारा नजर नही आता था और अन्ततः मैंने उसे पार करने का निश्चय किया। जनवरी १९०८ मे, जब मै साढे बीस वर्ष का था, मैंने पंडित पृथ्वीनाथजी को एक पत्र लिखा। छः महीने पहले उनके साथ हुई मुलाकात का जिक्र किया और पूछा कि क्या मै कानपुर आ जाऊँ। वापसी डाक से दो पंक्तियों का एक खत मिला। वह हमेशा बहुत संक्षेप मे लिखते थे। खत में लिखा था, "अवश्य आओ, मुझे तुम्हारी सहायता करने में खुशी होगी।" इस खत से मेरी सारी कठिनाइया हल हो गई। और ५२ रु ८ आना अपनी जेब में रख कर फरवरी १९०८ को मै घर से कानपुर के लिए रवाना हो गया।

१९०८ मे जब मै कानपुर की बार में शामिल हुआ तो यह प्रान्त भर में सबसे जबरदस्त जिला अदालत मानी जाती थी। यह नगर चिरकाल से इस प्रान्त का औद्योगिक केन्द्र रहा है और साथ ही प्रान्त भर मे सबसे बड़ा नगर है। यहाँ का धनी और सम्पन्न व्यापारिक समुदाय अदालत मे काम करने वालो के लिए पर्याप्त आय का साधन है। यहाँ की अदालत मे वकीलो की बहुत बड़ी सख्या थी और हर कोई बार एसोसिएशन का सदस्य भी नही था। जो हो, कुछेक अभागे लोगो को छोड़ कर एसोसिएशन के हरएक सदस्य को कुछ-न-कुछ काम मिल ही जाता था। बार एसोसिएशन के सदस्यों के पारस्परिक संबंध भी बहुत अच्छे थे और पंडित पृथ्वीनाथ के नेतृत्व में बैंच और बार में पारस्परिक सम्मान और आदर की भावना विद्यमान थी।

इन सह-व्यवसायियों से शीघ्र ही मै पडित पृथ्वीनाथ के छोटे और सहायक वकील के रूप में परिचित हो गया। इससे एसोसिएशन के सदस्यो की नजरो मे मेरा भी कुछ-कुछ दर्जा समझा जाने लगा। हर कोई मेरे प्रति सहानुभूति प्रकट करता था।

मैंने कुछ अज्ञानतावश स्व-विज्ञापन के आधार पर अपनी वकालत शुरू की। एक मित्र के सुझाव पर मैंने 'अमानत की ज़ब्ती'-संबंधी कानूनी विषय पर एक लेख लिखा, जो जून १९०९ मे 'इलाहाबाद लॉ जर्नल' मे छपा। कानपुर बार के सदस्यो ने इसपर खूब टिप्पणियाँ की।

उन दिनो पडित पृथ्वीनाथ हरदोई (अवध) मे एक वड़े दीवानी मामले में लगे हुए थे। मै सहायक के रूप में उनके साथ वहाँ गया और पन्द्रह दिन तक वहाँ रहा। इस मुकद्दमे में मुझे पैसा तो नही मिलना था, लेकिन वडी मूल्यवान शिक्षा की गुंजायश थी। मेरे लिए यह पहला ही मुकदमा था कि जिसमें गवाहियाँ थी और मै वडे वकीलों द्वारा कलापूर्ण जिरह और फिर जिरह-पर-जिरह को सुनता रहा। मेरे लिए यही सबसे वड़ी शिक्षा थी। इस मुकदमे में रीति-संवधी एक प्रश्न उत्पन्न हो गया, जिसके द्वारा दोनो पक्षो पर लागू होने वाले उत्तराधिकार के सामान्य हिंदू कानून में सशोधन हो जाता था। पडित पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने लिए एक टिप्पणी तैयार करने को कहा, जो मैंने तैयार कर दी। मै नही कह सकता कि वह टिप्पणी उनके लिए किसी प्रकार लाभदायक सिद्ध हुई या नही, लेकिन जहाँ तक मेरा सबंध था, उसके कारण मै अपने शेष जीवन के लिए कानून की उस दिशा का पूर्ण जानकार वन गया।

एक घटना यहाँ विशेष उल्लेखयोग्य है। भारतीय मुकदमेवाजी की मूल वातो के विषय मे इसके द्वारा मुझे पहले-पहल परिचित होने का मौका मिला। दोनो पक्षो मे वडी दिलचस्पी और वड़े व्यय के साथ यह मुकदमा लड़ा जा रहा था, यद्यपि जिस संपत्ति के सबध में यह झगड़ा था उसका कोई विशेष मूल्य नहीं था। दोनो पक्ष निकट सबंधी यानी चचा-भतीजे थे। चाचाओ का दावा था कि वह निकटतम संबधी होने के नाते मृतक की सारी जायदाद के उत्तराधिकारी है और भतीजों का तर्क यह था कि पारिवारिक रीति-अनुसार वह चाचाओं के साथ उस सपत्ति के समान उत्तराधिकारी है। हम भतीजो की ओर से पेश हुए थे

और दोनों ओर से रिवाज का सबूत देने के लिए जबानी और लिखित बहुत-सी गवाहियाँ उपस्थित करनी पड़ी थी। अगर यह मुकदमा आखिरी हद तक ही लड़ा जाता तो संभव था कि दोनो ही पक्ष बुरी तरह तंग आ जाते। फलतः मैंने अपनी नई-नई सूझ-बूझ के अनुसार मुवक्किलो को समझौता कर लेने की राय दी । यह सुनने पर उन्हे जो वेदना और दुःख हुआ था वह मैं आज भी नही भूला हूँ । मेरे मुवक्किल ने मुझसे कहा, "समझौता ! आप समझौते की चर्चा करते हैं ! यह जमीन नही है, ये हमारे पूर्वजों की हड्डियाँ है। मैं भला समझौते और अपने दावे को तिलांजलि देने की कैसे सोच सकता हूँ !" तब मुझे पहली बार इस बात का अनुभव हुआ कि भारत में एक मनुष्य अपने पूर्वजो की भूमि के साथ कितनी दृढतापूर्वक बंधा हुआ होता है। अपने व्यावसायिक जीवन मे मुझे इस भावना की शक्ति और सत्यता का कई वार अनुभव हुआ है ।

सबसे पहली पेशी का मुझे अनोखा अनुभव हुआ था और मेरे लिए तो वह मनोरंजक भी थी। पंडित पृथ्वीनाथ के कहने पर उनके एक मुवक्किल ने मुझे पन्द्रह रुपये फीस देकर फैसले से पहले कुर्की की दरख़ास्त देने को कहा। यह मुकदमा एकदम मामूली था और निश्चय ही इसकी आज्ञा जारी हो जाने वाली थी। मैंने बड़ी सावधानी के साथ दरखास्त लिखी और अदालत में पेश की। जज ने इस आशा के साथ मेरी ओर देखा कि मै उन्हें उस दरखास्त के बारे में ब्यौरा दूं। लेकिन मेरी तो जबान को काठ मार गया था । मै एक भी शब्द न बोल सका। जज महोदय ने शर्मीले युवक पर नजर डाली। उन्होने अर्जी पढी और जो प्रार्थना की गई थी उसके लिए आज्ञा जारी कर दी।

इसके बाद दूसरा अनुभव कुछ उससे बेहतर था। यह मेरा निजी मुकदमा था यानी पंडित पृथ्वीनाथ का इसमें कही दखल नही था। यह एक गरीब आदमी की फौजदारी अपील थी, जिस पर एक साधारण अपराध के लिए जुर्माना किया गया था। इसकी फीस पाँच रुपए थी, लेकिन

फीस की रकम का प्रश्न तो मेरे लिए सर्वथा अविचारणीय था। मेरे लिए तो मुकदमे का होना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। किस प्रकार मैंने इसकी तैयारी की, किस प्रकार मैंने इसके सब पहलुओ पर विचार किया, किस प्रकार मैंने मन-ही-मन बारबार अपने ख्याल के अनुसार इस मुकदमे में उठने वाले अनेकानेक प्रश्नो पर बहस को दोहराया। लेकिन जिस जिला मजिस्ट्रेट के सामने यह अपील पेश हुई, वह मुझे सर्वथा हृदयहीन और कठोर-सा जान पड़ा। मेरे मुवक्किल के साथ जो भारी अन्याय हुआ था उसका उसपर कुछ भी असर नही हुआ। उसने फैसला पढा, मेरी ओर देखा, मैं बोला, और अचानक जो कुछ मुझे कहना था, उसका नव्वे प्रतिशत भूल गया और एकाएक चुप हो गया। नतीजा यह हुआ कि तत्काल अपील खारिज हो गई। दिन भर मैं बहुत ही परेशान रहा; लेकिन मुवक्किल ने इस बात को इतना महसूस नही किया। वह अपील खारिज हो जाने पर भी खुश था। जब वह २५ बरस बाद मुझे मिला तो उसने मुझे मेरे इस सबसे पहले असली मुकदमे की याद दिलाई।

: ६ :

मेरा पहला मुवक्किल

४४ साल पहले की यह कहानी है। उस समय मैं निरा युवक था। भरी-पूरी जवानी थी और सगी-साथियो में काफी लजीला था। कानपुर की अदालतो में मैंने वकालत शुरू की ही थी और बड़ी मुश्किल से बारह महीने बीते थे। एक तंग और भद्दी-सी गली में किराये के मकान में मेरा दफ्तर था। दफ्तर के कमरे को मेजों, कुर्सियो तथा अन्य सामान से सजाने की मुझमे क्षमता नही थी और इसलिए मैंने पुराना भारतीय ढंग अपनाया। मेरे दफ्तर के सामान में कुल-जमा एक दरी, एक सूती कालीन, जो मुझे पिताजी ने दिया था, और एक मसनद—तकिया था।

एक दिन सबेरे मैं अपने कालीन पर पालथी लगाए बैठा था कि किसी प्रकार के शिष्टाचार के बिना चुपचाप एक बूढ़ा आदमी भीतर आया। जंगली-सी उसकी आँखें थी और वह पागल-सा लगता था। फटे-पुराने चीथड़ों मे वह अर्ध-नग्न और बहुत ही ऊँची धोती बांधे हुए था। गुमसुम वह बैठ गया। उसने मुझे और मेरे सामान को देखा और तब एकाएक बोला, "आप हर किसी के मुकदमे करते है, क्या आप मेरा मुकदमा नही करेगे?" मै भौचक रह गया और इससे पहले कि मैं अपने आश्चर्य के बारे में उससे कुछ कह सकूं, उसने अपनी बगल की एक पोटली में से टीन के दो गोल डिब्बे निकाले। ग्रामीण लोग अक्सर ऐसे डिब्बों मे अपने कीमती कागज़ रखते है, जिससे आग, पानी या दीमक से वे सुरक्षित रहे। दोनों डिब्बों के ढक्कन खोल कर उसने उनमें से लिपटे हुए कागज़ों के दो गोल पुलिंदे निकाले और उन्हे मेरी ओर फेकते हुए वह बोला,—"यह है मेरा मुकदमा, मेरा मुकदमा करो।"

जैसे मुझपर किसी ने जादू कर दिया हो। उस बूढ़े आदमी के साथ उसकी पागल-सी अवस्था में बात करना भी दरअसल असंभव था। मैंने उससे यह पूछने के बजाय कि तुम्हारा मुकदमा है क्या, कागज़ के उन दोनों पुलिंदों को उठा लिया और उन्हें खोलना शुरू कर दिया। वस्तुतः वे बहुत लबे थे, कई गज़ों में उनकी लंबाई थी, और मै उन दिनों संयुक्त प्रांत की कानूनी अदालतों की अत्यधिक फारसी-नुमा उर्दू को पढ़ने का भी अभ्यस्त नही था। मैंने कुछ कठिनाई के साथ उन दोनों पुलिंदों का इतना मतलब निकाला कि ये १८४७ और १८४९ मे कानपुर के ज़िला जज की अदालत की कार्रवाइयों की नकलें है। परमात्मा ने मुझे प्राचीनता के लिए रुचि प्रदान की है, और जैसा कि यह १०० बरस पुराना मामला था, मेरा ध्यान उसी पर जम गया। इस प्रकार कुछ देर के लिए उस बूढ़े को भूलकर मैंने उन पुराने दस्तावेज़ों को पढ़ जाने की कोशिश की। उस शिकस्ता लिखाई को पढ़कर मालूम हुआ कि ये दोनों दस्तावेज़ कानपुर के ज़िला जज की अदालत की उस मुकदमे की डिगरियाँ है, जो नदिहा

खुर्द (ज़िला कानपुर) के किसी महाराजसिंह ने १८४५ में इस मुद्दे को दायर किया था कि सन् १८२४ में उसने जो ज़मीन किसी के पास ७१० रु० में रहन रखी थी, उसे वहाल कराया जाय। उसके मुकदमे का आधार यह था कि वधक रखनेवाले और उसके वारिसों के पास यह वधक-भूमि पिछले २० वरस से भी ज्यादा अर्से से है और वह उसके किराए और लाभ से मूल और व्याज सहित रहन की कुल रकम वसूल कर चुके हैं। इसलिए असली मालिक को वह भूमि विना किसी मुआवजे के वापस मिलनी चाहिए। ऋणदाता ने इस मुकदमे का यह जवाव दिया था कि भूमि का किराया और लाभ इतना कम था कि उससे ऋण की रकम का व्याज भी पूरा नही हुआ, इसलिए मूल और व्याज की वड़ी भारी रकम अभी तक वकाया है, और इस अवस्था मे मुकदमा खारिज किया जाय। खफीफा जज ने मुकदमे की डिगरी जारी कर दी थी। लेकिन ज़िला जज ने अपनी आज्ञा (पुलिंदा नं० १) मे अधिक जांच और हिसाव की पड़ताल का आदेश दिया था, और यद्यपि खफीफा अदालत की निगरानी के वाद यह मालूम हुआ कि व्याज और मूल सहित कुल ऋण पूरा हो चुका था, तो भी ज़िला जज दूसरी और अंतिम आज्ञा (पुलिंदा न० २) में खफीफा जज से असहमत रहा और उसने निर्णय दिया कि व्याज तक भी (लगभग १०५ रु० अभी वकाया थे) पूरा नही हुआ, और इस आधार पर उन्होने मुकदमा खारिज कर दिया।

इन दोनो पुलिंदो को पढकर मैंने उस पागल बूढ़े आदमी की ओर ध्यान दिया। मैंने उससे पूछा कि इस जमीन के साथ उसका क्या सवंध है और इन दस्तावेजो का उसे क्या करना है। उसने जवाव दिया, "जमीन रहन रखन वाले महाराजसिंह का मै वेटा हूँ, जिसने १८४५ में मुकदमा दायर किया था, और आज भी हमारा परिवार उस पैतृक-भूमि के अधिकार से वचित है। जिसके पास यह जमीन जवसे पहले रहन रखी गई थी, उसके अधिकार से निकल यह चार या पाच हाथो मे जा चुकी है, और मौजूदा—समय (सन् १९०९) में यह कानपुर के एक लखपति उद्योगपति के अधिकार मे है।" इस सज्जन का कहना है कि उन्मुक्त भूमि-अधिकार के

रूप में उसने आखिरी मालिक से यह जायदाद खरीदी है और फलतः इस अधिकार के नाते वह इसका पूरा-पूरा मालिक है। रहन-जैसी किसी भी बात से उसने इन्कार कर दिया था। और सभी सरकारी इन्दराजों मे उसे और यहाँ तक कि उसके पूर्व के मालिकों को भी उस जायदाद का पूरा-पूरा मालिक दर्ज किया गया था, जो १८२४ से लेकर मूल्य की दृष्टि से बीस गुने से भी ज्यादा की हो चुकी थी।

इन दस्तावेजो के आधार पर मुझे मालूम हुआ कि उसका नाम बच्चीसिंह था। मैंने उससे पूछा कि इस मुकदमे से संबंधित अन्य कागजात, जैसे, बधक-पत्र की नकल और दूसरे पुराने दस्तावेज तथा अधिकार-पत्र कहाँ हैं? उसने कहा कि इन दो पुलिंदो के सिवा उसके पास कोई दस्तावेज नही है, यहाँ तक कि उसके पास बंधक-पत्र की भी नकल नही है, जिससे यह मालूम हो सके कि उसके पूर्वजो का किसी भी रूप मे इस जमीन से कोई नाता था या उन्होने कभी किसी के पास इस जमीन को बधक रखा था। इसके अलावा दीवानी अदालत की कार्रवाई के पुराने कागज मिलने भी असभव थे, क्योकि ज़िला कानपुर मे १८५७ के गदर के दिनों मे सब सरकारी रिकार्डों को जला डाला गया था और ऐसी अवस्था में दीवानी अदालतो या तहसील से इसके सबध में कुछ भी पता नही लग सकता था।

इसपर मैंने धीरे-से कहा कि तुम्हारा मामला तो बहुत ही विकट नजर आता है। कागजो के बिना हो ही क्या सकता है? तुम्हारे पास बंधक-पत्र तक की तो नकल है नही! लेकिन वह था कि मेरी किसी भी बात पर ध्यान ही नही देता था। उसकी तो एक ही रट थी, कभी-कभी फुसफुसाते हुए, कभी रोते हुए और कभी ऊँची आवाज़ में, "आप सबके मुकदमे लड़ते हो; लोग सभी तरह के मुकदमे लड़ते हैं; मेरा मुकदमा कोई नही लड़ता। आप मेरा मुकदमा क्यो नही लड़ते?" मैं बड़े असमजस में था। उससे पिंड छुडाने का रास्ता भी दिखाई नही देता था। तब एकाएक खयाल आया और मैंने उससे कहा कि तुम इन दो पुलिंदो को यही छोड़

जाओ। मैं इन्हे एक वार और देखूगा। जव तुम फिर से आओगे तो इस-पर अधिक चर्चा करेंगे। मौजूदा हालत में किसी तरह की फीस का प्रश्न ही नही उठता था।

जव वह चला गया, तो पता नही क्या हुआ कि इस मुकदमे में मेरी रुचि वढ गई और वह मेरे दिमाग पर हावी-सा हो गया। मैं इन कागजो को कचहरी जाते हुए साथ ले गया। वहाँ वार-लायब्रेरी में मैंने उन्हें ध्यान के साथ वारवार पढा। अपने एक निकट के साथी से मैंने इसकी चर्चा की और वह ठहाका मार कर हँसते हुए वोले, "अरे, उसी वूढे वच्चीसिंह की कहते हो! क्या वह पागल तुम्हारे पास भी गया था? वह तो झक्की है और पिछले दस वरस से कानपुर की अदालत में वह अपने इस मुकदमे को लिये फिरता है। और हाँ, कोई भी नया-नया वकील उससे अछूता नही वचा, हर किसी के पास वह हो आया है। तुम उसकी चिंता न करो! वस टाल दो उसे!"

लेकिन करने की अपेक्षा यह कहना आसान था। लाख चाहने पर भी मैं इस मुकदमे को छोड़ नही सका था। इसके वाद ठीक से याद नही कि मैंने कितनी कितावें पढ डाली। मुझसे वडे वकील (प० पृथीनाथ) की लायब्रेरी में इस कानून के विषय का वहुत-सा साहित्य था। कचहरी की लायब्रेरी में ढेरों पुराने विवरण मौजूद थे। इन सव संदर्भ-पुस्तको को, जो भी मुझे मिल सकी, वहुत दिनो और सप्ताहो तक उलटता-पलटता रहा। इन पुस्तको की अनुक्रमणिका की सहायता से मैं ज्यो-त्यो अपने मुकदमे से सवधित उन सव मुकदमो को देख गया, जिनका १९वी सदी में फैसला हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि १८०० और १८६० के वीच मे प्रचलित कानून और विधि से मैं पूरी तरह वाकिफ हो गया। इस वीच वच्चीसिंह भी लगातार मेरे पास आता रहा। जव उसने देखा कि मैं उसके मुकदमे मे इतनी दृढ़ता और लगन के साथ लगा हूँ तो उसका मस्तिष्क कुछ शात हो गया और आचरण में भी वह उतना विक्षिप्त नही रहा। मैं समझता हू कि इससे पहले उसने जीवन में ऐसी

सहानुभूति का कभी अनुभव नही किया था।

लेकिन कोरी सहानुभूति से कुछ नही हो सकता था। प्रश्न यह था कि किया क्या जाय। लगता था कि बिना नीव के इमारत खड़ी करने-जैसा यह काम है। मैंने कानूनी किताबों और कानूनी विवरणों को केवल इसलिए पढ़ा था कि पुरानी विधि से जानकारी हो जाय और इसके बाद मैंने तहसील में कई घंटे और दिन बंदोबस्त के उन विवरणों को पढ़ने में लगाये, जो १८५७ के बाद विशेषतः इस गाँव से ताल्लुक रखते थे। संयुक्त-प्रांत के ज़िला कानपुर में स्थायी बंदोबस्त की मालगुज़ारी प्रचलित नही थी। हर ३० साल के बाद मालगुज़ारी बंदोबस्त होता था और ज़िला कानपुर में १९०१ से १९०५ के मालगुज़ारी बंदोबस्त के सारे विवरण मे बच्चीसिंह या उसके पिता का कही भी उल्लेख नही था। जिस व्यक्ति के अधिकार मे उस समय वह जमीन थी, उसका नाम उस जायदाद के मालिक के रूप में दर्ज किया गया था। इससे पूर्व १८७०--१८७५ के बंदोबस्त के विवरणों से बहुत-कुछ ज़ाहिर हो जाता था। मैंने अनेक अनुक्रमणिकाओं, रजिस्टरों, सारांशों तथा अस्त-व्यस्त कागज़ों को देखा और मुझे पता लगा कि १८५७ से पहले पुराने मालिक महाराजसिह का नाम मालगुज़ारी के विवरणो में से इस जायदाद के बंधककर्त्ता के रूप में हटाकर बंधक रखनेवाले का नाम इस जायदाद के पूरे मालिक के रूप में दर्ज कर दिया गया था। बीस बरस वाद १८७५ मे नये बदोबस्त के समय महाराजसिह ने मालगुज़ारी के विवरणो में उस इंदराज में संशोधन और बंधककर्त्ता के रूप में अपना नाम दर्ज करने की दर्खास्त दी थी। यह जायदाद उस समय जिसके अधिकार में थी, उसने जवाब दिया था कि इस समय बंधक है ही नही और १८४९ मे ज़िला जज की अदालत में सुनवाई के वाद महाराजसिह के खिलाफ जो खर्चे की डिगरी हुई थी उसकी कुर्की कर ली गई है, और उस कुर्की में बंधक-कर्त्ता के रूप मे उसके अधिकार-पत्र और अन्य अधिकारों की नीलामी की गई। तदनुसार बंधक रखनेवाले ने उन्हे खरीद लिया और इस प्रकार बंधक का मामला पूर्णतया खत्म हो

गया। लेकिन यह कार्यवाही माल-अफ़सर की अदालत में बहुत ही संक्षिप्त रूप में हुई थी और जान पड़ता था कि आखिरी फैसले के लिए जो तारीख नियत की गई थी, उस दिन मालिक की ओर से कोई भी हाज़िर नही हुआ, और नायब तहसीलदार ने आज्ञा दी कि महाराजसिंह का नाम बंधककर्त्ता के रूप मे दर्ज किया जाय। यह इंदराज १८७५ मे हुआ था; लेकिन कुछ बरस बाद किसी भी ढंग से, जिसका मैं पता नही लगा सका, इस आज्ञा को पुनः बदल दिया गया और महाराजसिंह और उसका परिवार सब इस रंगमंच से पूर्णतया गायब हो गए।

जो हो, मालगुज़ारी बंदोबस्त के रिकार्डों में कई प्रकार की अन्य सूचनाएं दर्ज थी, जैसे, १९ वी सदी में समय-समय बंधक-भूमि पर लगा मालिया और उसपर किसानो से लगान की वसूली। यह जाहिर था कि अगर ज़िला जज के इस फैसले को सही मान भी लिया जाता कि १८४९ मे मूल और ब्याज का एक हिस्सा अभी बकाया था, तो भी पिछले ५७ बरसों में सारी स्थिति बदल गई थी। इसका मतलब यह था कि न केवल बंधक की सारी रकम एक अर्से मे पूरी हो चुकी थी, बल्कि मालिक को देने के लिए एक बहुत बड़ी रकम बंधक रखने वाले के पास जमा हो गई थी।

दोनो पुलिंदो की जब अधिक जाच की गई तो उससे मुकदमे के संबंध मे एक और भेद मिला। यह साफ जाहिर था कि वह पुराने दस्तावेज़ है, लेकिन मैंने देखा कि एक तो उनमे सरकारी नकल है, जो अदालतो से सरकारी मोहर के साथ मुकदमा दायर करने वाले को मिलती है और दूसरी ग़ैर-सरकारी नकल थी, जो किसी के द्वारा किसी समय घर पर तैयार की हुई थी। फैसलो और डिगरियो की सरकारी नकलें कीमती दस्तावेज़ होते है। एक गैर-सरकारी नकल का कानूनी तौर पर कुछ भी महत्व नही होता और कोई भी अदालत उसे प्रमाण-रूप मे स्वीकार नही करती। लेकिन यहा मामला यह था कि सादी नकल इस मुकदमे का पहला फैसला था और सरकारी नकल आखिरी फैसले की थी। पहले ग़ैर-

सरकारी दस्तावेज मे इस मुकदमे का सारा ब्यौरा दर्ज था, यानी, अदालत खफीफा और अपील के फैसले । इन दोनो फैसलो में बंधक-पत्र के आवश्यक विवरण भी थे—बंधक-कर्त्ता और बंधक रखने वालों के नाम, तारीख और वह रकम जो कर्ज के रूप मे दी गई थी। दूसरी नकल मे किसी भी अदालत ने इन विवरणो को फिर से देना आवश्यक नही समझा। अगर आप मिसल से इस सादी नकल को निकाल दें तो इस बंधक-सबधी दोनो पक्षों और तारीख आदि का कुछ भी पता न चले। इस दृष्टि से सिवा इस सादी नकल के दूसरा कोई सबूत उपलब्ध नहीं था।

दोनो दस्तावेज़ों मे मूल पर ब्याज की दर को भी स्पष्ट नही किया गया था। इस कठिनाई को मैंने ज्यों-त्यों पार कर लिया था, क्योकि सन् १८०६ मे यह नियम जारी किया गया था। कि कर्ज लेनेवाले और देने वाले का निपटारा करने के लिए कोई भी अदालत १२ प्रतिशत सालाना से ज्यादा की मंजूरी नही देगी। इसका मतलब यह हुआ कि १८३४ के बंधक-पत्र में चाहे जो भी ब्याज की दर दर्ज हो, पर अदालती मुद्दों के लिए १२ प्रतिशत की दर ही मान्य होगी।

इससे आगे एक दूसरी भयकर बाधा थी मियाद के सवाल की। कानून बंधक-कर्त्ता को जमीन छुडाने और ऋण-दाता से वापस लेने के लिए ६० बरस की इजाज़त देता है। ये ६० बरस १८८४ मे पूरे हो चुके थे। मै यहाँ बता देना चाहता हूँ कि अगर बंधक रखने वाला या उसका उत्तराधिकारी अथवा प्रतिनिधि लिखित रूप मे ऋणी को बधक-कर्त्ता के तौर पर और ज़मीन का असली मालिक स्वीकार करता है तो कानून मियाद की अवधि मे वृद्धि करने की इजाजत देता है। इस लिखित स्वीकृति के लिए मैंने १८७५ के माल रजिस्टर मे सशोधित इदराज को आधार बनाया, जिसमे नायब तहसीलदार ने हुक्म दिया था कि महाराजसिंह को बधक-कर्त्ता और उस एक मुसम्मात को बंधक रखने वाली लिखा जाय, जिसके अधिकार में उस समय वह जमीन थी। जब वह दस्तावेज तैयार किया गया था, इसपर महाराजसिंह और पर्दानशीन मुसम्मात दोनो के

हस्ताक्षर हुए थे। मुसम्मात की ओर से गांव के पटवारी ने इस प्रकार दस्तखत किये थे—"मुक्तकौर वकलम शिवदयाल पटवारी।"

इस प्रकार अब मैं मुकदमे की पूरी-पूरी तैयारी कर चुका था और कानून के अथाह सागर मे कूद जाने को उतारु हो गया था। दूसरी ओर बेचारा बच्चीसिंह कौडी-कौड़ी के लिए मोहताज था और इसलिए निहायत किफायत-शारी के साथ काम भी करना था। इसके साथ ही मै मुकदमे की रकम इतनी वडी भी रखने का निश्चय कर चुका था कि जिससे पहली ही अपील पर यह सीधे हाईकोर्ट मे जा सके।

दोनो पुलिंदो और १८७५ के इदराज की सरकारी नक़ल के आधार पर मैंने वधक-पत्र को फिर से लिखा और पक्ष-समर्थन की तैयारी कर ली। मेरा पक्ष यह था कि व्याज की निश्चित दर केवल १२ प्रतिशत सालाना थी। मेरा कहना था कि ज़िला जज के फैसले को ही आधार-रूप में ग्रहण किया जाय, जबकि १८४९ मे मूल और व्याज का थोड़ा-सा अंश बकाया थे, लेकिन ज्यादा-से-ज्यादा दस वरस के अदर मूल और व्याज-सहित वधक की सारी रकम वसूल हो जाती है। उसके वाद मेरा कहना था कि पिछले ५० वरसो से जिन लोगों के कब्ज़े में यह ज़मीन थी, उनके पास एक वहुत वड़ी रकम फालतू रह जाती है। इस तरह अंत में मैंने दावा किया कि यह ज़मीन वच्चीसिंह (असली वधक-कर्त्ता के वेटा) को वापस दिलाई जाय, और साथ ही किराये और मुनाफे का सारा हिसाव लगा कर वह हज़ारो रुपए का अतिरिक्त लाभ भी उसे दिलाया जाय। अवधि के वधन से वचने के लिए मैंने १८७५ के इदराज का आश्रय लिया, जो वधक रखने वाले के द्वारा वधककर्त्ता के अधिकार-पत्र की स्वीकृति थी। ७१० रुपए के असली वधक-ऋण पर मैंने ५३ रु० की अदालती फीस लगाई और न्याय-प्राप्ति के मुद्दे से मैंने दावे की कीमत ५२०० रु० आकी। तदनुसार मैंने कानपुर के मातहत जज की अदालत में मुकदमा दायर कर दिया। मैंने उन सव व्यक्तियो या उनके उत्तराधिकारी अथवा कानूनी प्रतिनिधियों को प्रतिवादी वनाया था, जिनके अधिकार मे यह ज़मीन सन् १८२४ से लेकर

कभी भी रही थी। आखिरी नाम था उस लखपती उद्योगपति का, जिसके कब्ज़े मे वह जमीन इस समय थी।

कचहरी मे जब इस मुकदमे का समाचार फैला तो बार लायब्रेरी में खूब फबतियाँ कसी गईं। हर किसी ने इसे कोरा पागलपन समझा। बच्चीसिंह तो पागल था ही और उसके नौजवान वकील के बारे में भी यही खयाल किया गया। किसी ने भी इसे गंभीरतापूर्वक ग्रहण नही किया, क्योंकि जाहिरा तौर पर वह बेबुनियाद था, यहाँ तक कि बहुत से प्रतिवादियो ने पेशी पर हाज़िर होने की भी परवा न की। लखपती महाशय ने कानपुर-कचहरी के बडे-बड़े कई वकीलों को तैनात किया था; लेकिन मेरा खयाल था कि बच्चीसिंह की किस्मत का पांसा पलट चुका था और ये बड़े-बड़े वकील इस मुकदमे के बारे में बिलकुल बेफिक्र थे। न तो उन्होने और न उनके प्रतिवादी ने इसपर कोई ध्यान दिया। बंधक-पत्र मौजूद नही था, और साफ ही इसके कारण कानूनी स्वीकृति भी नहीं थी और उनके मन में स्पष्टतया इस दावे की मियाद निकल चुकी थी। इस बात का किसीको खयाल भी नही हो सकता था कि अधिकार-पत्र की मान्यता पर बंधक रखने वाले के ही दस्तखत होगे। मेरा यह भी खयाल है कि प्रतिवादियो मे किसी ने तहसील मे जाकर इस मुकदमे के बारे मे किसी तरह के दस्तावेज देखने की भी तकलीफ गवारा न की थी। इसके अलावा उन्होंने सबसे बड़ी एक और भी गलती की। दोनों पुलिंदों की सावधानी के साथ जांच करने के बिना ही उन्होने कल्पना कर ली कि ये दोनों सरकारी नकलें है और प्रतिवादियों के लिखित बयानो मे यह साफ तौर पर मान लिया गया कि जिन दो पक्षो का मैंने अपने दावे मे ज़िक्र किया था, उनमे कथित तारीख को एक बंधक-पत्र लिखा गया था। बंधक-पत्र की यह मान्यता आखिरकार बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

बंधक और उसकी तारीख के तथ्य को मानने के अलावा प्रतिवादियों ने इस दावे से कतई इन्कार किया था और अनुरोध किया था कि अगर कोई बंधक है तो भी, वह सर्वथा समाप्त हो चुकी है और यह दावा पूर्णतया

निराधार और वेहूदा है ।

इस मुकदमे की पहली पेशी कई दृष्टियो से वस्तुत उल्लेखनीय है । माननीय जज खुशमिज़ाज वयोवृद्ध सज्जन थे । वह वड़े दयालु और विवेकी थे । जैसे ही मुकदमा शुरू हुआ, उन्होने अपनी जानकारी के लिए इस्तगासा पढा । वह मुस्कराये और निश्चय ही उन्होने समझ लिया था कि यह एक असाधारण मुकदमा है । उन्होने मेरे उन दोनो पुलिंदो को उठाया और वडे गौर से उन्हे पढा । फिर एकाएक मुझसे वोले, "वकील साहव, यह वाला पुलिंदा तो सरकारी नकल नही है । फिर आप इसे सवूत मे कैसे पेश कर सकते हैं ?" मै जानता तो था ही, लेकिन मैने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "जनाव, क्या आपको इसका पूरा यकीन है ? क्या मै देख सकता हूँ इसे ?" उन्होने वह मुझे दिया और मैने वात को वनाए रखने के लिए वहुत उत्सुकता के साथ उसे देखा और उसके वाद वहुत ही लापरवाही दिखाते हुए मैने कहा, "तो इससे क्या ? जाहिर है कि यह दस्तावेज काल्पनिक नही है और यद्यपि यह अनधिकृत और गैरसरकारी नकल है तथापि यह विलकुल सही जान पड़ता है । इस मुकदमे की विशिष्ट अवस्थाओ को ध्यान में रखते हुए कृपया इसे सवूत के तौर पर रख लीजिए । मुझे विश्वास है कि दूसरे पक्ष को भी इसपर एतराज नहीं होगा ।"

मेरे इतना कहते ही प्रतिवादी-पक्ष वेहद उत्तेजित हो उठा और वड़े ज़ोर का एतराज उठाया । इसपर जज ने कहा, "साफ है कि इसे मै सवूत के तौर पर नही ले सकता । मै इसे नामंजूर करता हूँ ।" जैसे ही उस दस्तावेज को नामजूर किया गया, वैसे ही प्रतिवादियो के वकीलों ने तत्संवंधी जटिलता को महसूस किया । उन्होने अदालत से अपने पहले वयान में सुधार करने की और वंधक-पत्र के तथ्य और तारीख की मान्यता को वापस लेने की मजूरी चाही, जो उनके कथनानुसार प्रस्तुत रद्द किये दस्तावेज पर ही आधारित थी । अव थी मेरी वारी । मैने इनका वलपूर्वक विरोध किया । मैने कहा, "वयानो में जिन वातो को स्वीकार किया जाता है, उनका दोनों

पक्षो की ओर से सबूत के तौर पर पेश किये दस्तावेज़ों के साथ कोई संबंध नही होता और इस मामले मे जो खासतौर पर स्वीकृति की गई है, वह पूर्णतया विना शर्त की है। अगर मौजूदा मुकदमे में प्रतिवादियो को अपनी स्पष्ट और असदिग्ध स्वीकृतियो को वापस लेने की इजाजत दी गई तो यह वडा भारी अन्याय होगा।" मैं जानता तो नहीं, लेकिन वहुत संभव है कि जज को मेरे पागल मुवक्किल और साथ ही उसके पागल नौजवान वकील पर दया आई और वह दृढ रहे। उन्होने प्रतिवादी-पक्ष को अपने बयान मे संशोधन करने की मजूरी नही दी। जितना कुछ वह मान चुके थे, वह वहाल रहा और अव मुझे रत्ती भर भी इस वात की चिंता नही थी कि मेरा वह मूल्यवान कागज मिसल पर रहता है या नही। मेरा मतलव हल हो चुका था।

वहुत थोड़ी जवानी गवाहियां थी, इसलिए थोड़े ही दिन वाद बहस की बारी आ गई। बहस का सिलसिला काफी लंवा था। मै नहीं जानता कि क्योकर मै उस सारे बोझ को सहन कर गया। निश्चय ही इसका कारण मेरा आत्म-विश्वास था। मुकदमे के विषय मे मेरी वेहद तैयारी थी और जज साहव चूकि बहुत ही धैर्यवान और साथ ही दयालु थे, इसलिए उन्होने नौजवान नये वकील की लंबी बहस को वड़ी शाति के साथ सुना। मैं समझता हूँ कि मैंने उनका वहुत-सा समय नष्ट भी किया होगा, लेकिन मुकदमे की एक के बाद एक खाई को मैं पाटता गया। आखिरकार मियाद के जटिल प्रश्न पर वहस करने के लिए मैंने इलाहावाद हाईकोर्ट के एक फैसले का आश्रय लिया। मेरा तर्क था कि अदालत को यह मानना चाहिए कि मुसम्मात की ओर से इस दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिए चूकि पटवारी कानूनी तौर पर एक अधिकृत प्रतिनिधि था, और इसमें एक वड़ी भारी कानूनी मान्यता समाविष्ट है, इसलिए विधवा द्वारा यह मान्यता उसके उत्तराधिकारियो पर भी वधन-रूप में लागू होती है। सारी वहस के दौरान में जज साहव मुस्कराते रहे और एक वार तो आँख दवाते हुए उन्होंने कहा भी, "पंडित साहव, आप तो कनकौआ कच्चे

धागे पर उड़ा रहे है।" लेकिन मै रुका नही, वढता गया और अपने पक्ष मे जो भी तर्क दे सकता था, देता गया। मुझे लगता था जैसे वच्चीसिंह और उसके वच्चे मेरे चोगे के एक छोर को खीच-खीच कर कह रहे है, "कहते जाओ, कहते जाओ, रुको नही।"

दूसरी ओर वे वड़े-वड़े वकील थे, जो हँस-हँस कर इस मुकदमे को वेकार करने की कोशिश मे थे; लेकिन उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना के विना, क्योकि वर्तमान मे उन सवका स्वर्गवास हो चुका है, इतना तो अवश्य कहूँगा कि उन्होने इस मुकदमे को केवल खिलवाड़ समझा था और वास्तव मे यह नही समझा था कि इस मुकदमे के लिए अच्छी-खासी तैयारी और गभीर तर्क की आवश्यकता होगी। वहस की समाप्ति पर जज ने फैसला सुरक्षित रखा।

इन माननीय जज की आदत थी कि वहुत सावधानी के साथ टिप्पणियाँ लिख लिया करते थे और उसके वाद फैसला देने से पूर्व हफ्तो घर पर स्वत सारी मिसल का अध्ययन किया करते थे। एक महीना वीत गया और फैसले के वारे मे रत्तीभर भी समाचार न मिला। मै वडे असमजस मे था और आशा भी वहुत नही थी, क्योकि जज महोदय यद्यपि दयालु व्यक्ति थे, तथापि मुकदमे के दौरान मे उनकी एक भी टिप्पणी उत्साहवर्द्धक नही रही थी। जो कुछ उन्होने उस वीच कहा था, वह मेरा पक्ष-समर्थन नही करता था।

अचानक एक महीने के वाद मुझे उनकी अदालत मे एक दूसरे मुकदमे मे पेश होना पडा। देखते ही वह अनायास सहजभाव से वोले, "ऐसा लगता है कि आपकी पतग उड कर ही रहेगी।" मै उनके सकेत को समझ गया और मेरा दिल उछलने लगा। थोडी ही देर वाद फैसला सुनाया गया, और मै आश्चर्य-चकित था। यही नही कि उस जायदाद पर अधिकार करने की डिगरी जारी की गई थी, वल्कि उसके साथ ही सव प्रतिवादियो को सयुक्त रूप में वच्चीसिंह को अतिरिक्त लाभो के रूप मे २० हज़ार रुपये की नकद रकम भी अदा करनी थी। सक्षेप में, यह सारी रकम लखपती उद्योगपति

को चुकानी थी । यह मुकदमे की डिगरी नहीं, विशुद्ध सोना था । यह कहना कि मैं खुश था, असलियत को हल्का करना है । सच तो यह है कि मैं खुशी से नाच उठा । मेरी खुशी की सीमा न रही और जो-जो खयाल उस समय आये उन्हे वर्णन करना असभव है । बार-लायब्रेरी मे बस मेरी-ही-मेरी चर्चा थी, जैसे कुछ अपूर्व घटना हो गई हो ।

इसके बाद इलाहाबाद हाईकोर्ट मे प्रतिवादी पक्ष ने अपील की और वहां भी बच्चीसिंह की किस्मत ने उसका साथ दिया । माननीय जजो के सामने जब मुकदमा पेश हुआ तो उन्होने दावे के पुरानेपन पर बेहद आश्चर्य प्रकट किया, लेकिन आखिरकार मातहत अदालत के फैसले को स्थिर रखते हुए अपील खारिज कर दी । इस महान विजय से बच्चीसिंह को कैसा लगा, उसे शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता । यहाँ मुझे एक दूसरे मुवक्किल की कही बात याद आ गई है । मैंने उसे उसके पुरखो की जमीन के बारे मे समझौता करने का मशविरा दिया था । मेरी सलाह पर उसने कहा था, "आप नही जानते कि आप कह क्या रहे है । ये जमीनें नही है, मेरे पूर्वजो की हड्डियाँ है ।" और बच्चीसिंह इस मामले में ९० बरस के बाद अपने पूर्वजो की जमीन वापस ले रहा था । मैं खुशी के उन आँसुओ को चित्रित कर सकता हूँ, जो उसने और उसके बच्चो ने जीवन की इस महानतम घटना पर बहाए होंगे ।

उसे उसकी जमीन ही वापस नही मिली, उसकी बुद्धि भी लौट आई । इस फैसले से वह एक समझदार आदमी बन गया और इसके बाद जब भी कभी वह आया, वह उन जगली आँखोवाला और फटे-पुराने चिथडो वाला बूढा आदमी नही था । वह तो बिलकुल ही एक दूसरा बच्चीसिंह था—साफ-सुथरे वस्त्र पहने, जिसके साथ चार नौकर थे, जिनमें एक हुक्का थामे रहता । अब वह ठाठ-बाट का आदमी बन गया था !

लेकिन आप पूछेगे कि इस मुकदमे में आपको क्या मिला ? उसने मुझे क्या दिया ? मुझे वह मिला, जिसकी कीमत को आका नही जा सकता । उसने मुझे दी आत्म-निर्भरता, उसने दिया मुझे आत्म-विश्वास और उसी के कारण मैं अपने अदर के वकील की खोज कर सका । मुझे इस बात का

दृढ विश्वास है कि वकालत के पेशे में मैंने भविष्य मे जो भी सफलता पाई, उसकी नीव उस पागल बूढे की शुभ-कामनाओ और आशीषो पर दृढता तथा सचाई के साथ रखी गई थी। इस प्रकार बच्चीसिंह का मै बेहद ऋणी हूँ। आप कहेगे यह सब तो महज भावुकता है। नकद क्या मिला ? मुकदमे का फैसला ही सबसे बडा इनाम था। फिर भी बच्चीसिंह जो दे सका, उसने मुझे दिया। मुकदमे की शुरू से आखीर तक की तैयारी के लिए बच्चीसिंह ने मुझे ३५ रु० दिये थे और जब मातहत अदालत मे वह जीत गया तो एक दिन बहुत ही शर्माता हुआ वह मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे शब्दो के साथ उसने ३५ रु० मुझे और दिये। अब आप ७० रु० की इन दोनो रक़मो के साथ मेरी इस कहानी को लिखने की खुशी को भी जोड लीजिए।

७ :

साहसी लड़की

मैं समझता हूँ कि किसी बच्चे के लिए इससे बढकर कोई दुर्घटना नही हो सकती कि वह अनाथ हो जाय। हममे से कइयो को दो विश्व-युद्धो के साथ-साथ गत २० बरसो के भीषण अनुभव भी हुए है और ससार के विभिन्न देशो में असख्य यातनाओ और विस्तृत नर-सहार ने इस अनंत दु ख में अभिवृद्धि ही की है। वर्तमान में सभी जातियो के लाखो ऐसे बच्चे है, जो मानवी निर्दयता या गुनाहो के कारण पितृहीन या मातृहीन बन गए है। कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक कल्याण के संगठन इन असहाय बच्चो की देख-भाल के लिए अथक यत्नो में लगे हुए है और इसमें शक नही कि यह प्रशसनीय भी है, लेकिन किसी बच्चे के जीवन में माँ-बाप की जगह को कोई भी दूसरी वस्तु पूरा नही कर सकती।

इस बात का जवाब देना बहुधा कठिन हो जाता है कि उस अनाथ का जीवन अधिक कष्टकर होगा, जिसके पास कुछ भी नही या उसका,

जो आम बोलचाल में या तो उत्तराधिकारी हैं या उत्तराधिकार-रहित हैं; जिस बच्चे की नाम् को भी जायदाद नही होती, लेकिन जिसे दूसरों, यानी नातेदारों या गोदलिये माँ-बापों या शिशु-गृहों से विशुद्ध प्यार मिल जाता है, वह अक्सर भाग्यवान होता है। लेकिन दुर्भाग्य से जो बच्चा किसी धनी का उत्तराधिकारी बननेवाला होता है, वह ऐसे रिश्तेदारो का शिकार बनता है, जो अपने निजी मुद्दों से उसकी संपत्ति को हड़पने की कोशिश करते हैं। वे ऊपरी तौर पर बच्चे के कल्याण की बड़ी चिंता दिखाते है । वे उसके प्रति माँ-बाप से भी ज्यादा प्यार दिखाते हैं; लेकिन इस सारे दिखावे की पृष्ठभूमि में एकमात्र नीच भावना यही होती है कि जैसे भी हो बच्चे की संपत्ति को हड़प लिया जाय। अदालतो मे इस प्रकार के सरक्षकों का मुझे निजी अनुभव है । इस तरह के बच्चों की देखभाल और सरक्षण के लिए राज्य ने गार्जियन एण्ड वार्ड्स एक्ट (अभिरक्षित वालकों के संरक्षण का कानून) बनाकर पर्याप्त प्रबंध कर रक्खा है, लेकिन, जैसा कि एक सुप्रसिद्ध लेखक ने कहा है, हिन्दू-धारणा के अनुसार मृत्यु के बाद हिन्दू के यहाँ उसे नरक-यातनाओ से बचाने के लिए पुत्र का होना आवश्यक है, जो दाह-क्रिया के समय अग्निदान तथा वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म कर सके। इसके लिए वास्तविक पुत्र न होने पर किसी को गोद ले लिया जाता है, जिससे मरने के बाद मृतक की आत्मा को भटकना न पड़े। फिर भी देखने में आता है कि गरीबों को इस तरह से आत्मा की रक्षा की ज़रूरत नही होती, बल्कि संपत्ति वाले आदमियो को ही मरने के बाद रक्षा की चिंता रहती है, तभी वे बच्चे गोद लेते हैं। इसी प्रकार अदालतो मे भी यही देखने मे आता है कि जिस बच्चे की जायदाद होती है, उसके रिश्तेदार उसके सुख की बडी चिंता करते हैं तथा वे विद्वान न्यायाधीश भी, जो इस पैतृक अधिकार के बारे मे अपना मत प्रकट करते है, अधिक चिंता करते हैं । सपत्तिहीन-बच्चे के विषय मे कोई भी किसी न्यायाधीश को कष्ट नही देता । जो बच्चे जायदाद के उत्तराधिकारी बनने वाले होते हैं, उनके रिश्तेदार शहद की मक्खी के छत्ते की तरह उन्हें घेरे रहते हैं।

वच्चे के सुख की चिता करने वाले प्रतिस्पर्द्धी रिश्तेदारो में जो झगड़े और सघर्ष होते है, वे अक्सर वड़े ही दिलचस्प होते है। इसके अतिरिक्त जज लोग भी ऐसे पैगंवरो की सचाई के वारे में वडे सगयात्मक होते है। मुझे ऐसे एक मुकदमे की अभी तक याद है। ३५ या ४० वरस की वात है। जिला-न्यायाधीश की अदालत मे वच्चो के पिता के दूर के भाइयों के वीच यह मुकदमा चला था। एक तो उनमें वच्चे का फुफेरा भाई था और दूसरा मौसेरा भाई। जिला-न्यायाधीश ने फुफेरे भाई को वच्चे का सरक्षक नियत किया था और अपील मे मौसेरे भाई की ओर से मै पेश हुआ था। न्यायाधीश महोदय (मि० जस्टिस टडवाल) का रुख सर्वथा सहानुभूति-रहित था और उन्होने अत्यधिक रुखाई के साथ उल्लेख किया था कि आप तो व्यर्थ ही वीच में आ कूदे है, और वच्चे के साथ आपका कोई रिश्ता नही है। इस टिप्पणी पर मुझे वडा आश्चर्य हुआ और मैंने सुझाव देते हुए निवेदन किया कि माननीय न्यायाधीश सभवत. हिन्दू-परिवार-प्रणाली की उपेक्षा कर रहे है। मैंने वताया कि रक्त-संवध के भाई को छोड कर, चार प्रकार के दूसरे भाई होते है—पिता के भाई के पुत्र, या पिता की वहन के पुत्र, माँ के भाई के पुत्र या माँ की वहन के पुत्र, और हिंदू-परिवार मे इन चारो भाइयो को निकटतम रिश्तेदार माना जाता है। इन्हें छोड किसी अन्य को वच्चे का हितैषी कैसे नियत किया जा सकता है? मेरा मुवक्किल ऐसे निकटतम सवधियो में से एक है। लेकिन न्यायाधीश टडवाल पर इस दलील का कोई असर न हुआ। सच वात तो यह थी कि वह कुछ भी सुनने को तैयार न थे। उन्होने कहा, "आप दोनो में वच्चे का कोई भी रिश्तेदार नही, आप लोग तो केवल गिद्ध है और महज़ अपने मतलव के लिए यहाँ आ जुटे है।" इस धारणा के वाद स्वाभाविक ही मेरे लिए और कुछ कह सकना मुश्किल था और अपील खारिज हो गई। इसपर भी यह कहे विना नही रहूँगा कि न्यायाधीश टडवाल ने आवश्यकता से कुछ अधिक कठोरता जाहिर की थी, लेकिन अधिकाश मामलो में वह स्थिति को काफी सही-रूप मे समझ लिया करते थे। हर नावालिग अदालत के सरक्षण का

अधिकारी माना जाता है। लेकिन बेचारा न्यायाधीश भी क्या कर सकता है? वह भी तो मानवी साधनों द्वारा ही कार्य करता है और ये साधन प्रायः अनावश्यक रूप मे अपूर्ण होते हैं। ऐसे बीसियो मामलो का मुझे पता है, जिनमे नाबालिगो के अदालतो द्वारा नियत या कुदरती सरक्षको ने अपने नावालिग के हितो को अपने मतलव के आगे वुरी तरह कुचला है। लेकिन कुछ मामले ऐसे भी हुए हैं, जिनमें नावालिग लड़के और लड़कियो दोनो ने मैदान मे आकर मौके को बस मे कर लिया और अपने ही हाथो से उन्होने सुरक्षा के स्वर्ग की रचना कर ली। ऐसे एक नाटकीय मामले मे ऐसा नतीजा हासिल हुआ, जिसकी आशा तक नही हो सकती थी। वह घटना यह है!

दुर्भाग्य से ऐसी दो लडकियो यानी बहनो के माता-पिता की मृत्यु हो गई, जो वे एक बहुत वडी जायदाद की उत्तराधिकारिणी थी। एक पुरातन-पंथी विरादरी में उनका जन्म हुआ था और रहन-सहन का तरीका भी उनका वही पुराना था। उनके चाचा—पिता के भाई—उनके सरक्षक वने, और मुझे मान लेना चाहिए कि उन्होने उनके लिए भरसक सव-कुछ किया भी। जब वडी बहन १६ बरस की हुई तो उसके व्याह के प्रश्न ने वहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया। ऐसे रिश्ते के लिए उम्मीदवारो की वहुत वडी सख्या का होना स्वाभाविक ही था। उनमे अधिकाश वडी उम्र के थे और वड़ी उम्र के कारण कुदरती तौर पर विधुर थे। उनके पास जायदाद भी काफी थी। एक तो माने हुए वकील थे, दूसरे लखपती साहूकार थे। दोनों ही विरादरी के अगुआ व्यक्ति थे और दुनियादारी के लिहाज से बिलकुल उपयुक्त उम्मीदवार थे। चाचा ने उनमे से तीसी की उम्र के एक सज्जन को चुना और जिला-न्यायाधीश की मजूरी के लिए दर्खास्त पेश की। जिला-न्यायाधीश ने पितृभाव से इस मामले मे वहुत दिल-चस्पी दिखाई, उम्मीदवारो की सारी सूची देखी, सव तरह की जाच-पड़ताल की और आखिर चाचा द्वारा चुने व्यक्ति की मजूरी दे दी। जिन उम्मीदवारो के नाम रद्द कर दिये गए थे, वे, मै समझता हूँ, वेहद नाराज हो गए। यद्यपि

कानून की दृष्टि से इस मामले में उनकी कोई आवाज़ नही थी, फिर भी उनमें से एक ने, अपने आप अथवा नाबालिग के किसी रिश्तेदार की मार्फत इलाहाबाद हाईकोर्ट में इस आधार पर अपील दायर कर दी कि ज़िला-न्यायाधीश की आज्ञा नाबालिग के हितो के विपरीत है और साथ ही प्रार्थना की कि लड़की के ब्याह के बारे में इसकी अपेक्षा उचित आज्ञा जारी की जाय।

जो हो, दूसरी ओर युवा कन्या के मन में कुछ और ही था। जहाँ तक मुझे याद है, वह सभवत प्राइमरी कक्षा तक पढ चुकी थी। उसने घर पर ही रामायण, महाभारत और भागवत आदि अनेक पुस्तके पढी थी। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन तथा अन्य अनेक प्राचीन महापुरुषो की विवाह-सबधी कहानियाँ जानती थी। दूर के भाईचारे में एक २२ वर्ष का नवयुवक था, जो ग्रेजुएट था और स्थानीय कालेज मे पढता था। वह सब प्रकार से उपयुक्त था। लडकी ने उसके बारे में या तो कुछ सुन रखा था, या उसे कभी देखा होगा और उसके मन में उसके प्रति आकर्षण था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि उसकी शक्ल-सूरत, व्यक्तित्व तथा ग्रेजुएट की उपाधि को छोड और कुछ भी उसके पक्ष में नही था। उसके पिता गाँव के मुनीम थे और जो थोडी-बहुत जायदाद थी भी, वह उन बडे-बड़े पूजीपतियो के मुकाबले मे न होने के बराबर थी।

हाईकोर्ट मे अपील पेश हो जाने और पेशी की तारीख लग जाने के बाद लडकी ने अपनी इच्छा से अथवा अन्य किसी के सुझाव पर सारा मामला अपने हाथो मे ले लिया। उसने इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के नाम अपने हाथ से हिन्दी में एक पत्र लिखा और उसमे अपनी सारी दुख-गाथा लिख दी। पत्र मे उसने लिखा था कि "मैं बडी अभागिन हूँ। अपने माता-पिता के प्यार तथा सरक्षण से मैं वचित हूँ और वर्तमान में इस विशाल दुनिया मे सिवा आपके मेरा हित देखने वाला और कोई नही है।" इतना लिखने के बाद उसने अपने विवाह-सबधी सारी चर्चा का उल्लेख किया था। उसने लिखा था कि "ज़िला न्यायाधीश ने जिस व्यक्ति को चुना है, वह उसे कतई पसंद नही। जैसी कि मुझे सूचना मिली है, उसकी एक आंख में फोला

है। इसके अलावा अन्य सब उम्मीदवार भी उम्र तथा अन्य दृष्टियो से मेरे अयोग्य है। उसने अपने चुनाव का भी उल्लेख किया और अखीर मे उसने प्रार्थना की कि यदि चीफ जस्टिस महोदय स्वय व्यक्तिगत रूप में अपील सुनेगे तो मेरा उपकार होगा, क्योकि केवल उन्ही पर मुझे भरोसा है, और अब तो मै उन्हे अपने पिता के समान समझती हूँ।"

उन दिनो इलाहाबाद हाई कोर्ट के स्थानापन्न चीफ जस्टिस सर सेसिल वाल्श थे। इस प्रार्थना-पत्र से उनका मन पसीज गया, लेकिन उस पत्र की सचाई के बारे में उन्हे शक था। फलत॰ उन्होने इस पत्र की सचाई की सूचना के लिए उसे जिला मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया। जिला मजिस्ट्रेट ने स्थानीय जाच के लिए उसे मातहत अफसर के पास भेजा। जब लडकी से पूछा गया तो उसने तत्परतापूर्वक स्वीकार किया कि वह उसीके हाथ का लिखा पत्र है, और साथ ही यह भी माना कि उसीने उसे चीफ जस्टिस के पास भेजा था। इस सूचना के बाद चीफ जस्टिस ने आज्ञा जारी की कि संबधित अपील उनके तथा एक अन्य यूरोपियन जज मि० जस्टिस राइव्स के सामने पेश की जाय।

इस नौजवान साहसी लड़की के पास जब यह खबर पहुँची तो उसने इस सिलसिले को आगे बढाया। उसने चीफ जस्टिस को एक और पत्र लिखा, जिसमे अपनी प्रार्थना की स्वीकृति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था कि मै इस पेशी के समय व्यक्तिगत रूप में हाजिर होना चाहती हूं। साथ ही उसने यह प्रार्थना भी की कि अदालत विभिन्न उम्मीदवारो की योग्यता का निर्णय कर सके, इसलिए मेरे चुनाव-सहित उन सबको भी पेशी के दिन अदालत मे हाजिर होने का आदेश दिया जाय। इस आधार पर, और चूकि यह एकदम युक्तिसगत प्रार्थना थी, इसलिए सर सेसिल वाल्श ने इसे मजूर करके तदनुसार आज्ञा जारी कर दी। मै कह सकता हू कि जिस ढग से यह मामला उनके सामने पेश किया गया, उससे वह बहुत ही प्रभावित हुए थे। प्रस्तुत प्रश्न एक युवा कन्या का था, जो अपने विषय में निजी राय व्यक्त करने की योग्यता रखती थी, और

उसके साथ ही उसके विवाह का प्रश्न था, जो उसके लिए जीवन में सर्वोच्च महत्व रखता था। इससे अधिक स्वाभाविक हो भी क्या सकता था कि वह अपने निर्णय के विषय में अपनी राय जाहिर करना चाहती थी। जब पेशी का दिन आया तो अदालत का कमरा खचाखच भरा हुआ था। हाईकोर्ट के इतिहास में इससे पूर्व ऐसी घटना नही घटी थी। अदालत का कमरा ऐसा लग रहा था, जैसे थिएटर हाल हो, जहाँ मानवता का एक महान नाटक खेला जाने वाला था। डाक्टर तेजबहादुर सप्रू चुने गए वर की ओर से पेश हुए थे। वे तो हाजिर थे, लेकिन उनका मुवक्किल और उसके अन्य साथी हाज़िर नही थे। उनकी गैर-हाजरी से साफ जाहिर हो गया था कि दाल में कुछ काला है। सब-के-सब सयानी उम्र के तो थे ही, इसलिए संभव है उन्होंने इस आधुनिक 'स्वयंवर' के अवसर पर वर-वधू पक्ष की रजामंदी को ही इस साहस के कार्य का उचित अंग मान लिया हो। जो हाज़िर हुआ, वह था वही नवयुवक, जो चुस्त और भड़कीली टाई लगाकर दूल्हा बना हुआ था और सचमुच वह आकर्षक भी दीख रहा था।

जैसे ही मुकदमे की पेशी हुई, सर सेसिल वाल्श ने मालूम किया कि क्या वह लड़की अदालत में हाज़िर है ? वह मौजूद थी। वह वहाँ समय पर पहुँच गई थी और एक पास के कमरे में बैठी हुई थी। सर सेसिल ने आज्ञा दी कि उसे अदालत में लाया जाय। वह अदालत के कमरे में आई। सादी किन्तु बहुत साफ-सुथरी उसकी पोशाक थी। बड़े शांत और मजबूत कदमों तथा संयतभाव के साथ वह हाज़िर हुई। जजों ने बेटी के समान उसका स्वागत किया। सर सेसिल ने उसे मंच पर बुला लिया और अपने पास एक कुर्सी पर बैठा लिया। उन्होंने जस्टिस राइन्स की सहायता से, जो हिंदुस्तानी भलीप्रकार जानते थे, कई मिनट तक उससे धीरे-धीरे बात-चीत की। उसके बाद वह डा० सप्रू की ओर मुड़े और कहा, "सर तेज, हमने इस लड़की की इच्छाओं की जानकारी हासिल कर ली है। अब आप कहिए, आपको क्या कहना है और आपका मुवक्किल कहाँ है ?" दर्शक के तौर पर मैं भी अदालत में मौजूद था और मैंने देखा कि सर सप्रू

वडे ही परेशान-से नजर आ रहे थे। उनकी दशा वस्तुतः वडी ही दयनीय थी। उनका मुवक्किल गैर-हाज़िर था और सचमुच उन्हे कुछ भी नही कहना था, उन्होने कहा भी यही। कोई दूसरा सूरमा भी मैदान मे हाजिर नही था। जल्दी ही मुकदमा खत्म हो गया। सर सेसिल वाल्श ने जिला मैजिस्ट्रेट के फैसले को रद्द कर दिया और आज्ञा जारी की कि इस नावालिग लड़की का विवाह इस भाग्यवान युवक के साथ किया जाय। साथ ही उन्होंने संरक्षक को आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो सके, विवाह कर दिया जाय। जव सारा फैसला लिखा दिया गया तो युवक कुछ कहने को खडा हुआ। जजो की अनुमति पाकर वह वोला, "इस मामले के कारण मेरी विरादरी में वड़ा भारी विवाद उत्पन्न हो गया है और मुझे डर है कि आपके फैसले और हमारे विवाह के वाद हमे कही वडे भारी कष्टो का सामना न करना पड़े। इससे भी अधिक यह कि विरादरी के कुछ लोग हमे वुरी तरह सतायंगे।" जैसे ही सर सेसिल ने यह सुना, वह फैसला लिखने वाले की ओर मुडे और आगे यह और लिखाया, "हम जिला मैजिस्ट्रेट को आदेश करते है कि विवाह के वाद इस नव-दंपति की रक्षा के लिए छ. मास तक इनके निवास-स्थान पर सशस्त्र पहरा रखा जाय। साथ ही जिला मैजिस्ट्रेट को यह आदेश भी किया जाता है कि वह सार्वजनिक रूप मे सवको जता दे कि यदि इस नव-दपति को किसी भी रूप मे सताया जायगा तो हाईकोर्ट ऐसे आचरण पर कड़ी कार्यवाही करेगी।" नवयुवक खुशी के मारे फूला नही समाया। वह अवोध वालिका शात-भाव से स्थिर वैठी थी, जैसे विश्व की सपूर्ण सौम्यता को कलाकार ने चित्रित कर दिया हो। जल्दी ही यह शादी हो गई और कहना न होगा कि यह शादी सव दृष्टियो से सुखद एव सपन्न थी।

लेकिन इस कथा का उत्तरार्द्ध भी सुन लीजिए। १५ साल से ज्यादा वीत चुके थे और १९४१ के वर्ष मे व्यक्तिगत सत्याग्रह के आदोलन के सिलसिले में मुझे जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे अधिक मेरा दूसरा सौभाग्य यह था कि मुझे नैनी सैंट्रल जेल मे उसी वैरक मे रखा गया,

जिसमें मौलाना अवुलकलाम आजाद थे। उन दिनो सैकडो काग्रेसी सत्याग्रही उस जेल में थे। सारा वातावरण भाई-चारे का था और वस्तुतः हम सब एक सुखद परिवार के-से लगते थे। मौलाना साहब उन दिनो भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रधान थे। कुदरती तौर पर सब काग्रेसी कैदियो के लिए उनकी वैरक मनोरजन तथा सूचनाओ आदि की दृष्टि से वडे आकर्षण का केंद्र वनी हुई थी। वरसात के दिन थे और दोपहर वाद का समय वड़ा सुहावना लग रहा था। ठडी और धीमी-धीमी हवा चल रही थी और मौलाना साहब दूसरी वैरको के वहुत-से दोस्तो मे घिरे वैठे थे। उसी वैरक का वासी होने के नाते मैं भी वही था। पता नही कैसे कहानियो का सिलसिला शुरू होगया। मेरी भी वारी आई तो मैंने उक्त कहानी सुना दी।

इतना मैं जरूर कहूँगा कि मैंने सुनाते-सुनाते उसमे थोडा नमक-मिर्च भी मिला दिया था, लेकिन नामो का उल्लेख नही किया था। सच तो यह है कि मै जानता भी किसीको नही था। कहानी सुनकर सब लोग वहुत खुश हुए और खूब हँसी और मज़ाक हुआ। सुनने वालो मे मेरे एक निजी मित्र थे, जो अपने जिले के वहुत सम्मानित नेता थे। वह भी चुपचाप इस कहानी को सुनते रहे, लेकिन मैंने महसूस किया कि वह इस हँसी और मज़ाक मे तत्परता के साथ हिस्सा नही ले रहे हैं। जब सारी कथा पूरी हो चुकी तो उसके थोडी देर वाद मेरे वह मित्र वडे गभीर स्वर मे मौलाना साहब से वोले—"मौलाना साहब, आप यकीन कीजिए, मै परमात्मा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने इस शादी के लिए कभी कोशिश नही की थी। जिला जज ने ही मुझे इस लड़की के साथ विवाह करने के लिए लाचार किया था और जिला जज और लडकी के चाचा के जोर देने पर ही मैंने उनके साथ शादी करने की रज़ामदी दी थी।" उनके इस कथन से जो गहरी चुप्पी पैदा हुई, उसका अनुमान पाठक स्वय कर सकते है और इस अप्रत्याशित घटना पर मुझे तो जैसे काठ ही मार गया। मेरी जिह्वा पर जैसे ताला पड गया! अपनी इस अक्षम्य मूर्खता पर मैं वेहद पछताया। मुझे इस

वात का तनिक भी खयाल न था कि मै ऐसे श्रोताओं से वह कहानी कह रहा हूँ, जिनमे इस पुराने नाटक का एक मुख्य अभिनेता मौजूद है।

: ८ :

कुछ पुरानी स्मृतियाँ

अपने प्रारम्भिक दिनो मे मुवक्किलो की दृष्टि से मैं बड़ा भाग्यवान् था। कानपुर मे मैंने कानूनी पेशे का कार्य शुरू किया था। वहा के वारे मे मैं सर्वथा अपरिचित था, मेरा कोई मित्र न था। जिन प० पृथ्वीनाथ ने मुझे अपने आश्रय मे लिया था, वह मेरे वकालत शुरू करने के १२ मास के अंदर ही शारीरिक रूप में अयोग्य हो गए और चद महीनो मे स्वर्ग सिधार गए। मै कानपुर-जैसे वड़े औद्योगिक नगर मे सघर्ष के लिए अकेला रह गया। सौभाग्य से मैं एक विशेष व्यक्ति का स्नेहभाजन वन गया और उन्हे मैं जीवनभर विस्मरण नही कर सकता। वह एक हँसमुख वयोवृद्ध थे। उनमे वेहद उत्साह था और जिंदगी, मनुष्यो तथा शारीरिक मामलो के विषय मे उनका असीम आशावादी दृष्टिकोण था। वह एक ऐसे आदमी थे, जो कभी हतोत्साह या निराश नही हुए। उनका नाम था रामचंद्र। उनका अपना काफी वड़ा कारोबार था और व्यापारी-क्षेत्र मे उनका कुछ प्रभाव भी था। मैं नही कह सकता कि क्यो या कैसे वह आत्मीयता के साथ मुझमें रुचि रखने लगे।

मैं समझता हूँ कि उन्होने यह जानकर कि मेरे थोडे ही मित्र हैं, आप-से-आप मेरी सहायता करने का वीड़ा उठा लिया। वह अपने ही ढग के श्रद्धावान हिन्दू थे और प्रतिदिन प्रातःकाल गगास्नान करने जाया करते थे। लौटते समय वह कुछ मिनटो के लिए अवश्य ही मेरे यहा आते और थोड़ी देर वैठ कर जाते। मेरा खयाल है कि उन्होने अपनी मित्र-मडली मे मेरी प्रशंसा भी की थी और कई वार वह अपने कुछ ऐसे मित्रो को ले आते थे, जिनका कोई-न-कोई अदालती काम होता था। उनका

अपना भी काफी अदालती काम हुआ करता था। वह सटोरिए थे और फलस्वरूप जन्मजात मुकदमेबाज थे। मेरा निजी ख्याल है कि अपने व्यवहार मे वह अत्यावश्यक रूप मे ईमानदार थे; लेकिन वह इस सिद्धांत में विश्वास नहीं करते थे कि सही लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सही साधनों का ही अनुसरण करना चाहिए। बल्कि उनकी धारणा इससे विपरीत थी। उनकी निजी आचार-नीति थी। यदि उनका मुकदमा सच्चा था तो वह समझते थे कि सभी क्रियात्मक उपायो से उसे जीतना न्यायपूर्ण है। इसलिए वही-खातो में एक या दो अतिरिक्त इंदराज कर देने या मीयाद की झझट से पार पाने के लिए रसीद बना लेने को वह बहुत दोष नही मानते थे। जो वह वस्तुतः करते थे, उसे उन्होंने कभी नही माना था, लेकिन मेरी निजी शंकाएँ होती थी। अपनी नौजवानी की अक्ल से मैंने कभी-कभी उनकी भर्त्सना भी की थी; लेकिन रामचद्र मेरी बातो पर ध्यान ही नही देते थे। वह कहा करते थे, "पंडितजी, इसमे हर्ज ही क्या है ? इस व्यक्ति को मेरा रुपया देना है। उसे देना चाहिए, लेकिन वह देता नही, और आपके कहने का क्या यह मतलब है कि अपने वही-खातो मे थोड़ी हेर-फेर से मै चद कानूनी कठिनाइयो से भी पार न पा लू ? ऐसा करने में कोई बुराई नही है।" मै रामचंद्र से प्यार करने लगा था। उत्साह और आशा से वह कितने परिपूर्ण थे और मेरे हित की उन्हे किस कदर चिंता रहती थी ! एक मामले की मुझे खासतौर पर याद है। उन्होंने एक काफी ठोस दावा मुझे सौंपा था। अदालत खफीफा मे मै उसे हार गया जैसे ही फैसला सुनाया गया, मेरा चेहरा फक रह गया और मै सचमुच ही बेहद निराश हुआ। हम अदालत से बाहर आये। एक असाधारण अवस्था थी। वकील साहब तो सुध-बुध खोये हुए और बुरी तरह निराश थे और उनका मुवक्किल हँस रहा था और मजाक कर रहा था। उनमे दुःख का लेश भी नही था। मेरी इतनी गहरी हैरानी को देखकर उन्होंने मुझे उत्साहित किया और मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले, "पडितजी, इसके बारे मे आपको दुख नही करना चाहिए। मुकदमेबाजी के ये तो उतार-चढाव

है। फिर यही तो इसका अत नही हम इसकी अपील करेगे, वहाँ हम जीतेगे। आप चिंता न कीजिए।" जब मैं यह पक्तियाँ लिख रहा हूँ तो ४० साल पहले भी वह तस्वीर हू-ब-हू मेरी आँखो के सामने आ गई है। हमने अपील दायर की। मैंने उनसे कहा कि वह मेरे साथ किसी बडे वकील को भी कर दे पर वह हर्गिज तैयार न हुए। बोले, "नही-नही, आप खुद ही कीजिए।" हमने जिला जज की पेशी मे अपना बदला ले लिया।

यह जिला जज भी अपना खास व्यक्तित्व रखते थे। वह अगरेज थे और उनका नाम आस्टन कैंडल था। बडे विचित्र ढग से मै शुरू-शुरू में उनकी निगाह में आया था। अपनी वकालत के बारह महीनो के भीतर ही मैंने उनकी अदालत मे एक अपील दायर की थी; लेकिन अपने वाद-सार को बिलकुल गलत समझते हुए मैंने आधाररहित कल्पना पर अपील का मसविदा तैयार कर दिया। सात ही दिन के अन्दर-अन्दर अपील लग गई, और जब मैंने मिसल देखी तो पता लगा कि मैंने सारा मामला ही गडबडा दिया है। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ; लेकिन अपील का मसविदा तो सर्वथा गलत था, वह संबधित मुकदमे के स्वीकृत तथ्यो के सर्वथा विपरीत था। मै अपील की बहस के लिए खडा हुआ और मैंने मुकदमे को सही दिशा पर डाल दिया। श्री कैंडल को मेरी बहस सुन कर कुछ आश्चर्य हुआ, और तब अपने सामने एक नौजवान नौसिखिए को देखकर वह धीरे से किंतु हँसती हुई आँखो से बोले, "लेकिन अपील के मसविदा के बारे मे आपको क्या कहना है? उसपर आप अपने तर्क को क्योकर न्याय्य ठहराते है? आप अपील के किस आधार पर जोर दे रहे है?" सौभाग्य से मैंने तत्काल कहा, "जनाब, नं० ६ के आधार पर"। न० ६ मे लिखा था—"ऊपर लिखित और साथ-ही-साथ अन्य आधारो पर अपील को मंजूर किया जाय।" इस तात्कालिक उत्तर को उन्होंने पसन्द किया। वह मुस्कराए, मुझे बहस जारी रखने की मजूरी दी और अपील का फैसला मेरे हक में किया। लेकिन उनका फैसला वस्तुत. उल्लेखयोग्य था। उसकी शुरु की पक्तियाँ आज ४२ बरस बाद भी मुझे याद है। उन्होने इस ढग से शुरू किया

था:--"इस अपील मे अपील के मसविदा से ही उत्पन्न होने वाली कठिनाई हुँ, लेकिन मैं एकदम नौजवान वकील के इस स्पष्टीकरण को स्वीकार करता हूँ कि यह नितात भ्रमपूर्ण तथ्यो के आधार पर तैयार की गई थी।" इत्यादि। मै अपील मे जीता ही नही, वल्कि मै उनका कृपा-पात्र भी वन गया, और वह जज पाच वर्षों के लिए, जवतक कानपुर मे रहे, मेरे धर्म-पिता वन गए। उनकी अदालत मे मुझे अपनापन-सा लगता था और वह भी मेरे प्रति अपने व्यवहार में अत्यधिक सौम्य दिखाई देते थे।

श्री कैंडल की इच्छा थी कि मै प्रातीय न्याय-विभाग मे नौकरी कर लू और उन्होने मुझे सलाह देते हुए कहा था कि आपकी नियुक्ति जल्दी-से-जल्दी हो जाय, इसमे मै सहायता करूँगा। लेकिन पिताजी ने इस सुझाव को नामजूर कर दिया। मैंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और तदनुसार श्री कैंडल को भी सूचना दे दी।

श्री कैंडल के साथ वातचीत और व्यवहार के ढग को मै जान गया था और अपने मामले को हमेशा ही ऐसे तरीके से पेश करने की चेष्टा करता था कि उन्हे वह पसन्द हो। उनमें एक सामान्य-सी दुर्वलता थी। वह किसी भी वकील के उस समय तक वहस शुरू करने को पसद नही करते थे, जवतक वह वस्तुत उसकी ओर ध्यान न दे लें और इन शब्दो से शुरुआत न कर दें, "अच्छा, तो अव आप कहिए।" मै यह जानता था और फलत हमेशा ही चुपचाप वैठा रहता था। मै अपने ओठो को तवतक नही खोलता था, जवतक वह "अच्छा तो, आप कहिए," शब्दो को कहकर मेरी ओर मुखातिव नही हो जाते थे। अन्य जो वकील इस खास आतरिक भेद को नही जानते थे, वह झपट पडते थे और वहस शुरू कर देते थे। इससे हमेशा ही उनका मामला उनके विपरीत जाता था।

इस प्रकार जव पेशकार ने रामचद्र की अपील पेश की तो मै हमेशा की तरह श्री कैंडल के सामने चुपचाप वैठा रहा। प्रतिवादी की ओर से डा० सुलैमान इलाहावाद से आये थे। डा० सुलैमान समझ ही नही सके कि क्या होने जा रहा है। मुकदमा पेश हो चुका था और वादी का वकील सर्वथा

बेफिक्र बैठा हुआ था और कोई भी कुछ बोल नही रहा था। थोड़ी देर बाद श्री कैंडल ने मेरी ओर ध्यान दिया और कहा, "मै समझता हूँ कि जज ने अपने फैसले में सब सबंधित न्याय-विषयक निर्णयो का समावेश कर दिया है।" मैंने कहा, "जी जनाब, केवल एक ही और है, जो अभी हाल ही में प्राप्त हुआ है।" वह बोले,—"वह कौन-सा संदर्भ है?" इसपर मैंने उन्हे वह निर्णय-पत्र दे दिया। इससे अधिक मैंने कुछ नही कहा और किसी प्रकार की बहस भी मैंने शुरू नही की, क्योकि उन्होने "अच्छा तो कहिए" शब्दों द्वारा मुझे सकेत भी नही दिया था। इसके बाद वह डा० सुलेमान की ओर मुखातिब हुए और बोलें, "इस मुकदमे में एक कानूनी प्रश्न है। क्या यह ज्यादा सुविधाजनक नही होगा कि आप प्रतिवादी की ओर से बहस शुरू करें और उसके बाद प० कैलासनाथ उसका जवाब दे। इससे समय की बचत हो जायगी।" मै तत्काल सकेत समझ गया और मन-ही-मन कहा कि मैंने मुकदमा जीत लिया। फलस्वरूप डा० सुलेमान ने, जो श्री कैंडल की मानसिक कार्यकारिता से अपरिचित थे, अपनी बहस शुरू की और दो घटे बोले। जज ने जाहिरा तौर पर बहुत ध्यान देकर सब कुछ सुना और मेरा यकीन है कि उन्होने सब तरह के सदर्भ भी दर्ज कर लिये और जब डा० सुलेमान कह चुके तो वह मेरी ओर मुखातिब हुए और बोले, "मै आपको सोमवार को बताऊँगा कि मै आपकी बहस सुनना चाहता हूँ या नही।" मैंने कहा, 'बहुत अच्छा, जनाब!" तत्पश्चात हम बाहर आ गए और मैंने रामचद्र से कहा कि मुकदमा तो हमने जीत लिया। सोमवार को अपील की मजूरी देते हुए उन्होने फैसला सुना दिया। इस तरीके से मेरा आशावादी मित्र रामचद्र सही साबित हुआ। रामचद्र ९० बरस की उम्र तक जीते रहे। वह हमेशा पहले के समान उत्साह, पितृत्व-भाव और मेरे कल्याण की चिन्ता के साथ इलाहाबाद आया करते थे।

एक और मित्र थे, जिनका चरित्र भी निश्चित ही निराला था। थे एक ठाकुर, जिनका गठा हुआ और दोहरा बदन था, सूरत से वह बेहद काले थे; परन्तु थे बडे खुश-मिजाज। बडे ही अजीब

ढग से मै उनके सपर्क में आया। एक दिन मै कानपुर-कचहरी की लाइब्रेरी में बैठा था। यह साहब आये और बोले कि मै एक विचाराधीन मुकदमे में प्रतिवादी हूँ। क्या आप उसमें मेरी ओर से पैरवी करेगे? मैंने उसके दूसरे वकीलो के बारे मे पूछा और उसने बहुत बडे-बडे वकीलो के नाम लिये। मुझे इस बात से आश्चर्य हुआ कि वह एकाएक ऐसे वकील के पास क्यो आया है, जिसे वकालत शुरू किये अभी केवल दो बरस हुए हैं। मैंने उससे पूछा कि यह विचाराधीन मुकदमा किसकी अदालत मे है? उसने बताया कि सहायक जज की अदालत मे। असल बात यह थी कि यह जज मेरे पिता के दूर के नाते मे चचाजाद भाई थे। इन जज महोदय से अलग रहने मे मैंने विशेष सावधानी बरती थी, क्योंकि मुझे शुरू मे ही चेतावनी दे दी गई थी कि इन जरियो से वकालत चलाने का अर्थ निश्चित रूप से असफलता होगा। लेकिन यह ठाकुर बहुत ही चालाक आदमी जान पडता था और मेरा खयाल है कि उसने सब तरह की जाच-पडताल कर ली थी। सभवत उसे यह पता लग गया था कि जज साहब के साथ या तो मेरी रिश्तेदारी है या जज और मै कम-से-कम एक ही बिरादरी के हैं। जो हो, मेरी आत्मा तो बिलकुल साफ थी। फलत. मैंने पूछा कि कितने का यह मुकदमा है। उसने बताया, "१२०० रु० का।" मैंने अपनी नियत फीस ३० रु० मागी। उसने तत्काल ३० रु० मेरे हाथ पर रख दिये और मुकदमे से सबधित सब कागज मुझे सौप दिये।

यह मुकदमा एक कर्ज देनेवाले ने जमानत की वसूली के लिए किया था। बधक बहुत पुरानी थी और बरसो पहले कर्जदार ने ५०८ रु० का भुगतान किया था। वादी ने इस भुगतान की जमा दिखाई थी और बकाया की माग की थी। मेरे मुवक्किल का कहना था कि यह भुगतान चुकता रकम के तौर पर हुआ था और बधक पर कोई रकम बाकी नही है। इस मुकदमे का विचारणीय प्रश्न केवल यही था। ५०८ रु० की बाकायदा रसीद मौजूद थी और इसके विषय में प्रश्न यह उत्पन्न हो गया कि यह रसीद चुकता भुगतान की है या आंशिक भुगतान

की। दुर्भाग्यवश इसकी भाषा बड़ी अटपटी थी और उसके दोनो ही अर्थ लिये जा सकते थे। चुकता भुगतान के समर्थन में और भी अधिकृत प्रमाण पेश किये गए थे। जब मुकदमे की पेशी का दिन आया तो हमारी तरफ के सभी बड़े वकील गैरहाजिर थे। मुझे छानबीन करने पर पता लगा कि उन्होने मुवक्किल से कह दिया था कि जज बेहद खिलाफ है और इसीलिए मोहनसिंह नाम के इस व्यक्ति ने जज को अपने पक्ष मे करने के लि मुझे वकील करने की तजवीज सोची थी। खैर, मुझे बहस करनी थी और जो कुछ मुझसे बन पड़ा, मैंने कहा। जज ने मेरे खिलाफ फैसला दिया और उन्होने अपने फैसले मे प्रतिवादी के आचरण पर काफी कड़ी टिप्पणी की। उन्होने प्रतिवादी की किताबो को सरासर जाली बताया और इस तरह यह मामला ठप्प होगया। बाद मे जब मोहनसिंह मेरे पास आया और उसने अपील दायर करने को कहा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा कि यह बडी विकट समस्या है। फैसला बहुत ही सख्त लिखा गया है और जिला जज द्वारा न केवल इस अपील को खारिज कर देने की संभावना है, प्रत्युत यह भी हो सकता है कि वह झूठा और जाली सबूत पेश करने के अपराध मे फौजदारी का आदेश भी कर दें। ऐसी दशा मे बेहतर यही है कि आप किन्ही दूसरे बड़े वकीलो के पास जाय। उसने कहा, "पडितजी मैं अमुक-अमुक के पास गया था। हर कोई कहता है कि मुकदमे मे जान नही हैं; लेकिन मैंने मुकदमा लड़ने का इरादा कर लिया है और आप ही को इसे लडना है। आप अपील दायर कर दें।" यह अपील मेरे धर्म पिता श्री कैंडल, जिला जज की अदालत में दायर की जानी थी। तदनुसार मैंने अपील कर दी और जब उसकी मजूरी का दिन आया तो मैंने श्री कैंडल के तरीको को जानते हुए बस यही कहा कि फैसला अनावश्यक रूप से एक-पक्षीय है। ५०८ रु० की फैसलाशुदा रकम के लिए पक्की रसीद मौजूद है और "क्या आप कल्पना कर सकते है कि ५०८ रु० की जैसी पक्की रसीद आशिक भुगतान मे दी जा सकती है?" श्री कैंडल पर इसका असर हुआ और उन्होने अपील की आज्ञा दे दी और दूसरे पक्ष को नोटि

जारी करने का आदेश दिया। आखिरी पेशी की तारीख के लिए महीनो बाद बारी आई। इस बीच मोहनसिंह कानपुर के देहाती इलाको में मेरा अवैतनिक प्रचारक बन गया था।

एक दिन जब मै अपने दफ्तर में बैठा था तो मोहनसिंह बडी डरावनी मूछो वाले रईसी ठाठ-बाट के एक राजपूत के साथ कमरे में दाखिल हुआ। वह हरदम मूछो को बल देता रहता था और उसका बडा आकर्षक व्यक्तित्व था। मोहनसिंह ने उसका परिचय देते हुए कहा,—"ये है ठाकुर उमेदसिंह, जो ग्वालियर रियासत के मुखिया राजपूत परिवारो में से एक के सदस्य हैं। इन्हे स्नेहभाव से हर कोई चिमनाजी कहता है।" फिर उसने कहा, "पडितजी, चिमनाजी बडे भारी सकट में है।" मैने सहानुभूति दिखाई और पूछा कि मामला क्या है। इसपर मोहनसिंह ने सारी कहानी सुनानी शुरू करदी। इस दौरान ने चिमनाजी लगातार मूछो पर ताव देता रहा और समर्थन में कभी-कभी सिर हिला देता था। मोहनसिंह ने बताया कि चिमनाजी की दादी के कारण ही सारा कष्ट है। मुझे इससे बडा आश्चर्य हुआ। मोहनसिंह ने आगे बताया,"पडितजी, वह तो मरना ही नही चाहती, वह मरेगी भी नही। क्या आप इस बेइसाफी का अनुमान कर सकते है?" इस पहेली को सुनकर मुझे और भी हैरानी हुई। वह आगे बोला, "वह चिमनाजी की सौतेली दादी है। ४० साल हुए उसका पति मर गया था। यह बुढिया ईर्ष्यावश चिमनाजी और उसके भाइयो की इतनी बडी जायदाद पर कब्जा किये बैठी है और मरने का नाम तक नहीं लेती। इसके अलावा वह इन सबको लगातार परेशान करती है और ये लोग उस जायदाद की ओर ललचाई आँखो से देखते रह जाते है, लेकिन उसे पा नही सकते।" जिस दुखद ढंग से उसने यह सारी कहानी कही थी, उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके बाद उसने कहा, "बरसो से वह इस जायदाद का नाश करने मे लगी हुई है और बेचारे चिमनाजी ने इस बर्बादी को रोकने के लिए कई बार मकदमेबाजी की है; लेकिन मतलब हल नहीं हुआ। हाईकोर्ट तक भी ये मुकदमे जा चुके है। हमने प० सुन्दरलाल और प० मोतीलाल को

वकील किया था, लेकिन किस्मत ने हमारा साथ नही दिया और हमेशा ही हम नाकाम होते रहे। वुढ़िया जायदाद पर साप बनी वैठी है। आप नही जानते कि अव उसने क्या किया है ? वह एक लड़का गाव मे ले आई है और उसे अपने पति के पुत्र के रूप में गोद ले लिया है। उसने मशहूर कर रखा है कि ४० साल हुए, उसके पति ने मरने से पहले उसे इस लड़के को गोद लेने की ज़बानी इजाजत दी थी। एकदम सफेद झूठ है यह, पडितजी। लेकिन उसने कर दिखाया है। अव तो यह एक घातक प्रहार है और हम दत्तक-पुत्र की इस मार से अपनी रक्षा करने के लिए आपके पास आये है। उसकी सारी कहानी सफेद झूठ है।"

जो हो, मामला तैयार करने की कुछ गुजायश तो मिली। लेकिन यह जायदाद दो लाख रुपए की थी। मैंने कहा कि मै अकेला ही इस सारी जिम्मेदारी को नहीं ले सकता। मोहनसिंह बोला, "आप जिसे अपनी मर्जी से चाहे साथ ले ले। हम तो यह मुकदमा आप ही को सौपते है।" इसपर ज़बानी वसीयत की कहानी को झुठलाते हुए मैने अभियोग लिखा और गोद लेने को कानून के विरुद्ध करार देने की माग की।

प्रतिवादी ने बाद में अपना लिखित बयान दाखिल किया। यह बुढिया रानी कहलाती थी और उसने अपनी सफाई पेश की थी। उसने जबानी वसीयत पर ज़ोर दिया और गोद लेने को बिलकुल सही बतलाया। मुकदमे के विचारणीय मुद्दे निकाले गए और उनपर विचार के लिए पेशी का इंतजार किया जाने लगा।

एक दिन रात के दस वजे के करीव मैने किसीको अपने घर के किवाड़ पर दस्तक देते हुए सुना। रात को मै खुद ही घर की चौकसी करता था। मेरा नौकर दिन भर का काम पूरा करके जा चुका था। फलत. मैंने किवाड़ें खोली और एक आदमी भीतर आया। वह बोला, "मुझे चिमनाजी ने भेजा है।" मैंने पूछा, "किसलिए ? क्या हुआ ?" उसने कहा, "पडितजी, नानी मर गई। चिमनाजी ने आज सुवह शव को गगाजी पर ले जाते समय मुझे आपके पास यह जानने के लिए भेजा है कि अव क्या किया जाय।"

"उस दत्तक-पुत्र का क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

"वह गाव में ही है।" उसने कहा।

"क्या गांव वाले चिमनाजी के हक मे है ?"

"जी हाँ, सभी उनके साथ है।" उसने जवाब दिया।

"तो-फिर उस पुत्र को गाँव से खदेड बाहर करो। अगर ज़ोर-जबर की ज़रूरत पड़े तो उसमे भी हर्ज नही। उसके बाद सारी जायदाद पर कब्जा कर लो।"

"बहुत अच्छा !" कह कर उल्टे पाँव वह रवाना हो गया। बाद में पता लगा कि मेरी सलाह का अक्षरश: पालन किया गया। बेचारे दत्तक-पुत्र को मार डालने की धमकियाँ देकर भगा दिया गया और गाँव के लोगो की मदद और अनुमति से चिमनाजी ने सातो बड़े-बड़े गाँवो समेत सारी जायदाद पर अधिकार कर लिया। इसके बाद हमने रजिस्टरो में सुधार करने की तहसील में दर्खास्त दी। चिमनाजी ने कहा कि आपको तहसीलदार की अदालत में भी चलना होगा। मैंने कहा, "वहाँ मेरे जाने की कोई जरूरत नही है। इस कार्यवाही में कोई मुख़ालिफ तो है नही और जो होना चाहिए, उसका आदेश हो जायगा।" लेकिन उसने जवाब दिया, "पंडितजी, आप कह क्या रहे है ? आप क्या समझते है कि हम आपको योही छोड़ देगे ? आप नही जानते कि क्या हुआ है। पचास से भी ज्यादा बरसो से हम इस जायदाद के लिए बुरी तरह तरस रहे थे। भगवान ही जानता है कि हमने इसके लिए कितने दुख उठाए है और कितना रुपया मुकदमेबाज़ी में बर्बाद किया है। चाहे जिस अदालत मे कोई मुकदमा हो, भले ही उसमे मुकाबला हो या नही, आप उनमें पेश होगे। आपके बिना हम इंच भर भी इधर-से-उधर नही होगे।" हुआ भी ऐसा ही। मुझे याद नही कि वह मुझे कितने ही ऐसे मुकदमो में ले गया, जिनमें मेरी जरूरत भी नही थी और हमेशा मेरी तारीफो के पुल बांधा करता था। एक बार एक गाँव मे तहसीलदार की पेशी में मुझे हाज़िर किया गया। यह इकतरफा मामला था और उसमें केवल नियमित कार्यवाही

ही की जानी थी। जब पेशी खत्म हुई तो उसने हाथी पर मेरा जलूस निकाल कर मुझे अपने गाँव तक ले जाने का अनुरोध किया। वहाँ मेरा शानदार स्वागत किया गया और मैं परिवार के सम्मानित अतिथि के रूप मे रात भर वहाँ रहा। उन दिनो तहसीलदार लोग दौरे के दौरान मे इस तरह कार्यवाहियों को सुना करते थे। मुझे याद है कि एक और मामले में हमे पेडो तले घटो इंतजार करना पड़ा था और आखिर रात के नौ बजे एक खेमे में मुकदमे की पेशी हुई की।

उसके एक दूसरे काफी बड़े मुकदमे मे मुझे एक सबक भी हासिल हुआ था। उसमे मुझे यह शिक्षा मिली थी कि प्राचीन भावनाएँ और विश्वास किस प्रकार मानवीय क्रियाओ को प्रभावित करते है। चिमनाजी की नानी ने एक पडौसी ज़मीदार की प्रार्थना पर उसे दस एकड़ भूमि बाग लगाने के लिए भेट दे दी थी। यह भूमि उस समय बिलकुल बेकार थी। भेट लेने वाला अच्छा शौकिया आदमी था। उसने देशभर से कई तरह के फलो के पेड़ मगाकर जमा किये। बहुत-सा पैसा खर्च किया और जब बुढिया मरी तो उस ज़मीन पर एक भरा-पूरा फलो का बगीचा लग चुका था। हिंदू-कानून के अधीन यह भेंट बेमानी और नानी की मृत्यु के बाद अर्थहीन थी। चिमनाजी ने मुझे ज़मीन की वापसी के लिए दीवानी दावा दायर करने की सूचना दी। यह बहुत ही सीधा मामला था और इसका जवाब कोई नही था। जज ने चिमनाजी के हक में डिगरी दे दी; लेकिन प्रतिवादी को इस बात की छूट दी कि वह १२ मास के अन्दर-अन्दर अपने पेड़ो को हटा ले। प्रतिवादी ने जिला जज के यहाँ अपील करदी। विद्वान् जज हिंदू थे। पेशी के समय उन्होने मुझसे कहा, "निस्सदेह, आप अपनी खाली ज़मीन का स्वामित्व पाने के अधिकारी है, लेकिन आप इन लाभकारी खडे पेड़ो के बदले कुछ मुआवजा क्यो नही दे देते ? केवल ईंधन के लिए इन्हे काट डालना तो बहुत ही बुरा होगा।" यह कहकर उन्होने ५ हजार रुपए की रकम का सुझाव पेश किया, जो मेरी राय मे बहुत वाजिब था। मैंने अपने मुवक्किल से बाहर जाकर सलाह करने

की आज्ञा चाही, लेकिन जब मैंने चिमनाजी से बात की तो वह इस बात को कतई मानने को तैयार नही था। मैंने बगीचे की खूबसूरती और उपयोगिता का बखान किया तो उसने कहा, "आप इसकी चिंता न करे। यह बाग ज्यो-का-त्यो हमारे पास आवेगा। शायद आपको पता नही कि हरे फूलदार पेड को काटना कितना पाप है, और मुझे यकीन है कि प्रतिवादी कदापि ऐसा नही करेगा। इसलिए हम क्यो कोई रकम दें ? यह बगीचा हमारे ही लिए तो है और जैसे-का-तैसा हमे मिलेगा।" मै इसका क्या जवाब देता ? मै अदालत के कमरे मे लौट गया। मैंने चतुराई के साथ जज को सूचित किया कि मुझे बडा खेद है कि मेरे मुवक्किल के पास मुआवजा देने के लिए नकदी नही है। जज महोदय ने जब यह सुना तो उन्हे बडा बुरा लगा; लेकिन वह कर कुछ नही सकते थे उन्होने डिगरी को ज्यो-का-त्यो बहाल रखा। लेकिन चिमनाजी का कहना शब्दश. सही साबित हुआ। एक बरस की समाप्ति पर उसे सारे-के-सारे पेडो सहित वह जमीन मिल गई। प्रतिवादी ने भी एक पवित्र हिंदू को जो करना चाहिए, वही किया। इस प्रकार चिमनाजी ने मेरा बड़ा ही मान किया और बरसो तक मैंने उसकी और उसके पुत्रो तथा भतीजो की मित्रता के सुख का लाभ लिया।

पाठक यह जानना चाहेगे कि मोहनसिंह की अपील का क्या बना ? वह तो मैंने जीत ही ली थी और किसी खास चतुराई के बल पर नही, बल्कि निरतर धैर्य एव दृढता के सहारे मै उसमें और सैकडो अन्य मुकदमो मे सफल हुआ था।

९ .

अपराध और अपराधी

अपराध और अपराधियो के बारे मे लिखते समय मै कुछ अजीब-सी बेचैनी महसूस कर रहा हूँ। पुराने जमाने मे कानून-भंग करने वाले के साथ बहुत-ही बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। सैकडो अपराधो

के लिए मृत्यु-दंड ही एक सजा थी । वारेन हेस्टिंग्स के काल मे, हमारे भारतीय इतिहास में नदकुमार इसी तरह की वर्वरता का शिकार वना था। लेकिन अव तो जनमत में वड़ी जागरूकता उत्पन्न हो गई है और इन दिनों अपराधी को अत्यंत स्नेह, सहानुभूति और दयापूर्ण व्यवहार का अधिकारी माना जाता है ।

प्रचलित सिद्धात यह है कि अपराधी को दड देने की अपेक्षा उसके प्रति दया प्रकट करनी चाहिए। उसके वारे मे यह खयाल किया जाता है कि वह किसी मानसिक रोग या मनोवैज्ञानिक पीड़ा का मरीज है और उसने जो किया, उसके लिए वह ज़िम्मेदार नही था । इसलिए उसे कुछ सहानुभूति, उचित पोषक भोजन, व्यक्तिगत देख-रेख और शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक ढंग के इलाज की आवश्यकता है। मनोविज्ञान के विशेषज्ञ उसकी परीक्षा करते है और अनत धैर्य के साथ उसके पुराने इतिहास का निरीक्षण करते हैं। हर कोई यह कहता है कि जेल को सुधार-स्थान वनना चाहिए। जेल मे उसका अस्थायी रूप से रहने का मतलव यह होना चाहिए कि वह एक अच्छा नागरिक वन गया है ।

अन्य देशो मे ऐसी समितियाँ है, जो मुक्त कैदियो की वाद मे देख-भाल करती है। ये समितियाँ जेल से उसकी रिहाई के वाद उसे रोजगार दिलाने और उसे अपने पाँव पर खड़ा होने मे आवश्यक सहायता देने के लिए वनाई जाती है । जब वह जेल में अपनी सजा काट रहा होता है तो उसे कई तरह की सुविधाएँ दी जाती हैं । वह अपने परिवार के लोगो, अपने नातेदारो और अपने मित्रो को पत्र लिख सकता है और उनसे मिल भी सकता है। यदि वह जेल-नियम के अनुसार आचरण करता है, तो उसे पैरोल (अस्थायी रिहाई) पर भी छोडा जा सकता है । सार यह कि समाज और राज्य दोनो ही उसके सुधार के लिए वहुत ही चिंतित होते है।

यह अत्यन्त विरोवाभास की स्थिति है और सामान्य जनो के वारे में तो इसका खयाल भी नही किया जा सकता । लाखो-करोड़ो स्त्री-पुरुप,

जो अच्छे नागरिक है, वड़ा कप्टमय जीवन विता रहे है। वड़ी वुरी अवस्थाओ में रहते है , उनके सिरो पर महज़ एक छप्पर का ही आश्रय है। कभी-कभी वे कौड़ी-कौडी के मुहताज हो जाते है। वे भी मानव-प्राणी है, उनमें भी मातृत्व की प्यार-भरी भावनाएँ है, लेकिन वे अपने वच्चो को पोपक भोजन नही दे पाते। वे उन्हे शिक्षा नही दे सकते, पूरे कपड़े भी नही पहना सकते। इसपर भी लोग कानून के अनुसार और अपरावहीन विशुद्ध जीवन विताते है।

समाज उनके वारे में रत्तीभर भी चिंता करता जान नही पडता। कोई भी उन्हे सहायता देने का खयाल नही करता। सहृदय स्त्री-पुरुपो की ऐसी समितियाँ भी हमारे देश में नही है, जो आवश्यकता के समय उनकी सहायता कर सके। मै समझता हूँ कि समाज वस्तुत इन लोगो से यह कहता है, "अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी चिंता की जाय तो हमारे ध्यान को आकर्पित करने की शर्त यह है कि तुम अपराध करो, जिससे तुमको पकडकर मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जा सके। वहाँ उससे किसी भी अपराध के लिए छ मास से लेकर पाच वरस तक की कोई भी कैद की सज़ा हासिल करो और तव तुम देखोगे कि हम किस तरह तुमपर कृपा-वृष्टि शुरू करते है। हम तुम्हारे रहने को साफ-सुथरा कमरा देंगे, तुम्हे काफी अच्छी खाट भी दी जायगी, दिन-प्रतिदिन तुम स्वस्थ रहो, इसकी देखभाल के लिए डाक्टर-कम्पाउडर मौजूद होंगे, और अगर कही तुम्हे कोई भयकर वीमारी हो गई तो तुम्हे उचित खुराक मिलेगी और साथ ही रात-दिन चिंता के साथ इलाज भी होगा।

"अगर तुम अपढ होगे तो तुम्हे पढाने के लिए भी कुछ प्रवव होंगे और तुमको किसी-न-किसी दस्तकारी की भी तालीम दी जायगी। तुम एक अच्छे दर्जी या एक अच्छे वढई या एक अच्छे लोहार भी वन जाओगे, जिससे , जव तुम जेल से निकलो तो अच्छी कमाई करने के लायक हो जाओ, और तुम देखोगे कि इसी मतलव की समितियाँ तुम्हे एक अच्छा घर वसाने के लिए हर प्रकार की मदद करने को तैयार है। लेकिन,

याद रखो कि यह सब तभी होगा, जव तुम पहली कही शर्त को पूरा करोगे। पहले सज़ायाफ्ता वनो और तुम देखोगे कि तुम्हे मदद पहुँचाने के लिए हर कोई कितना चिंतित है। हम तत्परता-पूर्वक तुम्हारे पक्ष मे यह कहेगे कि यद्यपि मैजिस्ट्रेट ने तुम्हे कैद की सजा दी है, तथापि यह कतई तुम्हारा दोप नही था। तुम तो वस्तुत. रोगी थे और संभवत. असावधानी के कारण तुमने वह कार्य किया, जो तुमको मैजिस्ट्रेट के पास ले गया और उसने तुमको जेल मे नही भेजा, वल्कि उसने तुमको इलाज की जगह पर भेजा है।"

कुछ दिन हुए, मै पजाव के एक जिले मे गया था। उस शहर के अस्पताल मे सवसे वढ़िया और आकर्षक मुझे जेल का अस्पताल लगा। वह वहुत ही खूवसूरत वना हुआ था, हवा और रोशनी का उसमें वढ़िया प्रवध था, वीमारो के लिए वहाँ वहुत-से विस्तर थे और उनकी देखभाल के लिए समझदार कार्यकर्त्ता भी थे। लेकिन उस चहार-दीवारी के वाहर नगर के कथित स्वतंत्र शहरियों के लिए नाममात्र की चिकित्सा-सुविधाएँ थी। उनके अस्पताल की बड़ी बुरी हालत थी। अस्पताल में रखे जाने वाले वीमारो का कमरा बडा गंदा और तग था। वीमारो को अपने लिए निजी खाना मगाना पड़ता था। मुफ्त खुराक का कोई प्रवध नही था। नर्स भी वहाॅ कोई नही थी। हर चीज जितनी वुरी हो सकती है, वहाॅ थी और इतने पर भी ये लोग स्वतंत्र नागरिक थे और इसलिए उनके वारे मे कोई भी चिंता करने वाला नही था।

यही विचार वच्चो के वारे मे भी कई वार मेरे मन मे आये है। हम उन्हे वाजारो और गलियो मे देखते है। वे गदे और मैली दशा में मारे-मारे फिरते है, उनकी देखभाल भी कोई नही करता। लेकिन ऐसे वहुत-से लोग है, जो अपराधी वच्चो के कल्याण की चिंता करते है। यहाँ फिर वही पहली शर्त हर वच्चे पर लागू हो जाती है कि वह पहले किसी की जेव काटे, तव वह शिशु-न्यायालय मे लेजाया जायगा और जिस क्षण वह वहाँ पहुँचेगा, उसके प्रति दया के द्वार खुल जायगे। वह एक अच्छे-से घर मे रखा जायगा। वहाँ उसे स्वास्थ्य-सवधी शिक्षा देने के लिए

शिक्षक होगा, और सभव है कि वह वढिया स्काउट भी वन जाय। उसे किसी दस्तकारी की शिक्षा दी जायगी, पढ़ाया-लिखाया भी जायगा, आदि-आदि। जब वह अठारह वरस की आयु के बाद उस घर से निकलेगा तो वह सच्चे मानो मे अच्छा नागरिक वनने योग्य हो जायगा। लेकिन इस सबके लिए पहली शर्त हमेशा यही होगी—पहले गिरहकट बनो !

यह सब अजीब मजाक-सा लगता है। मै समझता हूँ कि हम सदा असामान्य स्थितियो से क्षुब्ध होकर काम करते है। अपराधियो और गुनहगारो के साथ इतना दुलार दिखाने और उनके सुधार की आवश्यकता तथा उनके प्रति कोमल-व्यवहार दर्शाने में वड़ा भारी खतरा निहित है। उनके दुष्कृत्यो के कारण जिन्हे हानि पहुँचती है, उनके बारे में कोई सोचता तक नही। सभव है, उन्होने एक परिवार का सवकुछ चुरा लिया हो। चोर को सजा मिलती है और वह उस घर में जाता है, जिसका आज के दिन गलत नाम जेल है और समाज उस परिवार के विषय में तनिक भी चिंता नही करता, जिसे उसने लूटा था। हानि सहन करने वाले को उसकी क्षतिपूर्ति के लिए किसी सार्वजनिक कोष से एक दमड़ी तक नही दी जाती। सजायाफ्ता के प्रति हमारी सहानुभूति उमड पड़ती है और हम उसका सुधार करने की चिंता करने लगते है, लेकिन उसके शिकारो को हम पूर्णतया भूल जाते है, उनके प्रति कोई भी सहायता का हाथ नही वढाता। मैं खुद भी मृत्युदड के खिलाफ हूँ, लेकिन हत्यारो के बारे मे तो यह सारी चर्चा की जाती है, परन्तु उन वच्चो के विषय में एक शब्द भी सुनने को नही मिलता, जिन्हे उन हत्यारो ने पितृहीन या मातृहीन कर दिया था, यह बडे ही दु ख की वात है।

पिछले कुछ वरसो के दौरान मे, जब सभी जगह खाने-पीने की भारी कमी थी और लाखो परिवार खरीदने की सामर्थ्य न होने के कारण उचित खुराक भी नही प्राप्त कर सकते थे, मै बगाल की जेलो मे देखा करता था कि वहाँ सप्ताह मे दो वार हर कैदी को वढिया भोजन दिया जाता था।

उसके भोजन में चावल और दाल , भाजियाँ और चटनी तथा मीठे तेल मे वनी मछली या मास होता था। वंगाल के मध्यवर्ग के ७० प्रतिशत परिवार उन दिनो ऐसा भोजन प्राप्त करने मे असमर्थ थे।

यह सव कहने का मेरा मतलव यह नही कि कैदियो को भूखो मारा जाय, लेकिन लगता है कि जो-कुछ हम कर रहे है, वह आवश्यकता से ज्यादा है। निस्सदेह अपराधियो को सजा देते समय उनकी परिस्थितियों में भेद करने का काम मैजिस्ट्रेट का है। मान लीजिए, एक आदमी है, जो अपने परिवार के भूखे बच्चो के लिए एक रोटी चुराता है। ऐसे व्यक्ति को समझा-बुझा कर या चेतावनी देकर भी छोड़ा जा सकता है। लेकिन दूसरा है, जो केवल लोभवश ही ऐसा करता है या अपनी किसी आयोजित योजना को पूरा करने के लिए दूसरे लोगो के सिर फोडता है, वह वस्तुत किसी ठोस दंड का अधिकारी है। उसे यह महसूस कराना होगा कि अपराध करने से लाभ नही होता और कानून पालन करने के लिए ही वनाये जाते है।

भारत के प्रत्येक भाग मे मैंने कई जेलो को देखा है और मैंने अक्सर सोचा है कि हम अपराधो और दुष्कर्मो के प्रति उदारता दिखा कर वड़ा भारी खतरा उठा रहे है। जहां पुराने जमाने में कैदियो के साथ वहुत ही वेरहमी और वर्वरता के व्यवहार की रीति थी, वहाँ आज के दिन मुझे यह अजीव-सा लगता है कि एक आदमी, जो तकलीफो मे पड़ा है, वह सहज ही खयाल करले कि कोई अपराध कर लेना फायदेमद होगा, क्योंकि अपराधी वन जाने पर कुछ महीनो, या एक अथवा दो वरस के लिए भारतीय गणतंत्र का मेहमान वनने का मौका हो जायगा और उस मेहमानी के दौरान मे पूरी रक्षा के साथ सुखकर और नियत्रित जीवन के दिन कटेंगे। इसपर दयावान सरकार अच्छे खाने, रहने और चिकित्सा आदि प्रवध भी करेगी। वर्तमान में जेलो को इतना सुखकर वनाने में निश्चय ही वड़ा भारी खतरा है। जव मैं जेल में था तो मैंने कइयो को वारंवार वहाँ आते देखा था, क्योंकि उन्हे जेल का जीवन ज्यादा लाभकर लगता था।

: १० :

अदालतों में झूठी गवाहियां

अदालतों में झूठी गवाही देने की बुराई बहुत बढ़ी हुई है। हर वकील उसे जानता है। कुछ अनुदार लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि बहुत से वकील बेईमानी से इसको बढ़ावा भी देते हैं और झूठी गवाही देने के भागीदार होते हैं। झूठी गवाही देने की कोई सीमा दिखाई नही देती। उदाहरण के लिए मुझे ही एक ऐसे निर्लज्ज मामले का अनुभव है, जिसमे दीवानी के एक मुकदमें में दोनों फरीकों के बीच यह झगड़ा था कि दो जीवित व्यक्ति—एक पुरुष और एक स्त्री—पति-पत्नी थे अथवा मा-बेटे। दोनो ही जीवित थे और किसी भी फरीक की ओर से उन्हें अदालत में पेश नही किया गया था। बहुत-से लोग आये और जिस ओर से उन्हे पेश किया गया था, उसके पक्ष में कसम खाकर गवाही दे गये। जज ने दोनो ओर की गवाहिया सुनकर एक ओर के गवाहो को तरजीह दी और उसीके अनुसार फैसला दे दिया। अपील संयोग से न्यायाधीश सुलेमान तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक और जज के सामने आई। मैंने कहा कि निचली अदालतो मे जज ने बचपन की-सी बात की है और उन परिस्थितियो मे उसका एक दर्शक बने रहना मूर्खतापूर्ण रहा है। मैंने सुझाया कि अगर वह दोनो व्यक्तियो को बुलाकर सीधे तरीके से कुछ प्रश्न पूछ लेता तो बिना किसी कठिनाई के सच्चाई निकल आती। इस बात का न्यायाधीश सुलेमान पर, जो प्राचीन-काल के सुलेमान की भावना से प्रेरित होकर कार्य कर रहे थे, काफी असर हुआ और उन्होने उस मामले को मातहत अदालत को इस आदेश के साथ लौटा दिया कि दोनो व्यक्तियो से सीधे सवाल कर लिये जाय। मुझे अच्छी तरह याद है कि बिना किसी खास दिक्कत के सचाई सामने आ गई।

× × ×

एक और भी मुकदमा था जिसकी अपील १९१९ में इलाहाबाद हाईकोर्ट

के उन दिनों के नये आये हुए मुख्य न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेअर्स ने एक अन्य जज के साथ सुनी थी। अब भी वह दृश्य मेरे सामने आ जाता है जो सर ग्रिमवुड ने प्रणय के उस मामले मे हुई लम्बी-चौड़ी गवाहियो को पढकर प्रस्तुत किया था। दोनो दल मुसलमान थे। वादी एक नौजवान था। वह उस नवयुवती के अपनी औरत होने का दावा करता था, जो उस मुकदमे मे प्रतिवादी नं० १ थी। उसने अपनी बीवी के साथ वालो पर, जो अन्य प्रतिवादी थे, यह दोष लगाया कि वे उसे (बीवी को) उससे दूर रखने में मदद कर रहे हैं। वादी का कहना था कि उस नवयुवती के साथ अमुक रात को ९ बजे इस्लामी तरीके पर एक काजी, वकीलों और गवाहो के सामने उसकी शादी हुई, जिसमें बहुत-से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए थे। प्रतिवादी ने इस प्रकार की शादी से बिलकुल इन्कार कर दिया। इसके बजाय उसने कहा कि उसी दिन रात के ९ बजे शहर के दूसरे हिस्से मे, एक दूसरे मकान के अन्दर प्रतिवादी नं० २ के साथ एक क़ाजी, वकीलो और गवाहों के सामने विवाह हुआ, जिसमें बहुत-से रिश्तेदार और दोस्त शरीक हुए। उसने जो हाल बताया, सही-सा था। उस औरत ने कहा कि यह बिलकुल ठीक है कि उसकी मां वादी के साथ ही शादी करना चाहती थी, लेकिन वह खुद इस विचार से ही नफरत करती थी, हालांकि उसे खामोश रहना पड़ता था। बाद को जब उसने देखा कि मामला आगे बढ़ता जा रहा है और शादी की तारीख तक तय हो गई है तो वह अपनी चाची के पास दौडी गई और उससे अपनी मदद करने के लिए कुछ करने को कहा। उसने अपनी चाची को यह भी बता दिया कि, शादी करने के लिए उसने प्रतिवादी नं० २ को अपने दिल में जगह दे रखी है, वही उसकी पसन्द का नौजवान है। इसलिए चाची को शादी का इन्तज़ाम करना ही होगा, वरना वह आत्महत्या कर लेगी। चाची ने उसपर तरस खाया और उसका नतीजा जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह हुआ कि उसी तारीख को दूसरी जगह प्रतिवादी नं० २ के साथ उसकी शादी हुई। इस प्रकार ये दो प्रतिद्वन्द्वी कहानियां दो शादियो के

वारे मे थी और विश्वास कीजिए कि दोनों ओर से ५० से भी अधिक गवाहिया अदालत में अपनी आखो के सामने इस या उस शादी होने के प्रमाण मे हुई। उन गवाहियो के निष्पक्ष होने के सबन्ध मे देखने से ही कोई मुद्दा कायम नही किया जा सकता था। उनमें से बहुत-से लोग दोनो के ही रिश्तेदार और मित्र थे। ऐसे मामले में मैं स्वय जज होना पसन्द न करता और मेरा यह खयाल है कि गवाहिया इस मुकदमे का अन्तिम निर्णय कराने में सहायक नही हुई, बल्कि सब मिलाकर अन्य घटनाएँ ही काम आई। जब नीचे की अदालत में मुकदमा चल रहा था, उस स्त्री के बच्चा पैदा हो गया। उसका पिता वादी न० २ था और उस समय तक, जबकि सर ग्रिमवुड मेअर्स के सामने अपील पहुची, एक और बच्चा हो गया। हाईकोर्ट के जजो ने साफ कह दिया कि मुकदमे में कुछ भी सही-गलत हो, वे उन बच्चो को किसी तरह भी जायज घोषित नही कर सकते।

× × ×

अदालतो मे झूठी गवाहियो को छांटना बेकार है, किन्तु एक दृष्टि से उनमें से कुछ वास्तव में शानदार होती है। कुछ तो हिमालय की चोटियो की तरह होती है। भोवाल संन्यासी का मामला एक अच्छा उदाहरण हो सकता है। परन्तु मै और भी कुछ ऐसे मामले जानता हू, जो सूझबूझ के मधुर और मनोरंजक खेल तथा मनुष्य की कल्पना-शक्ति की बडी भारी मिसाले कही जा सकती है। मै यहां दो मामलो का उल्लेख करूगा। एक इलाहाबाद हाईकोर्ट मे मेरी वकालत के शुरू के दिनो मे १९१६ या १९१७ का है और दूसरा कुछ बाद का। दोनो में एक ही प्रश्न उठा था। पहले मुकदमे का थोडा परिचय देना आवश्यक होगा।

यह मामला एक अच्छी-खासी रियासत के सम्बन्ध में था, जो राजा की मौत के बाद कोई लड़का न होने के कारण उसकी विधवा के हाथ आई थी और उनके मरने के बाद वह जायदाद कुछ दूर के घरवालो को पहुचनी थी। इस प्रकार के दूर के उत्तराधिकारियो को अलग करने के लिए गोद

ले लेने का एक तरीका होता है। एक बालक के साहसी पिता ने रानी को अपने पुत्र को गोद लेने के लिए इस आशा से फुसलाया कि उसका बच्चा गोद ले लिया जायगा तो उसका पिता और स्वाभाविक सरक्षक होने के कारण वह बहुत वर्षों तक जायदाद का लगान , किराया आदि वसूल करके मुनाफा उठाता रहेगा। लडका गोद ले भी लिया गया; लेकिन फौरन ही कानूनी तथ्य के आधार पर झगड़ा शुरू हो गया। काफी लम्बी मुकदमेबाजी हुई और अन्त में हाईकोर्ट ने गोद लेना बहाल रखा। पिता ने खुशिया मनाईं। इसी बीच रानी की मृत्यु हो गई और लडका गोद लेने की तारीख से ही जायदाद का स्वामी बन गया और उसका पिता वास्तविक अधिकारी। मुकदमे के दौरान मे इस बालक के विवाह का कोई सवाल ही नही था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह अकस्मात बीमार पड गया और कुछ ही दिनो मे मर गया। बाप की सारी आशाओ पर पानी फिर गया और वे विरोधी, जिनसे गोद लेने के मामले में वह इतने दिनो तक लडा था, अब स्वत. जायदाद के मालिक बननेवाले थे। इस विपदा को हटाने के लिए कुछ-न-कुछ तो किया जाना चाहिए था। बच्चे के दाह-सस्कार के बाद, कहना चाहिए कि एक 'युद्ध-परिषद्' बन गई, जिसे यह विचार करना था कि उस सकट को दूर करने के लिए क्या उपाय काम मे लाये जाय। विचार किया गया कि एक यही तरकीब कारगर हो सकती है कि उस अविवाहित बालक की एक विधवा तैयार की जाय और यह जाहिर किया जाय कि उस (बालक) की मृत्यु के बाद जायदाद स्वाभाविक रूपसे उसकी उस विधवाको पहुच गई है। उस समय कोई लडकी निगाह मे न थी, किन्तु यह तो एक मामूली-सी बात थी। फौरन ही यह तय किया गया कि एक नाम सोच लिया जाय और संयुक्त प्रात के जाब्ता माल के अनुसार गाव के अधिकारियो से उसकी सूचना फौरन करा दी जाय। लीलावती नाम छाट लिया गया और गाव के अधिकारियो से , जो षड्यन्त्र में शामिल थे, फौरन खाना-पूरी कर देने को कह दिया गया। तीन ने तो उसी रात यह रिपोर्ट कर दी कि नवयुवक

राजा की मृत्यु हो गई है और वह अपने पीछे अपनी विधवा लीलावती को छोड गया है। चारो ने अगले दिन इसकी सूचना कर दी।

स्वभावत विपक्षी दल मे इस काड से तहलका मच गया। न कोई विवाह हुआ था और न कोई लीलावती ही थी। सारा-का-सारा मामला काल्पनिक था और इस आशय की दरख्वास्तें दे दी गई। नियमानुसार माल अदालत को मामले की सरसरी जाच करने के लिए कहा गया ताकि गाव के सरकारी कागजो मे ठीक अमल-दरामद हो सके।

अब पिता को एक लीलावती प्राप्त करने को कहा गया। किसी लडकी को लीलावती बनाना जरूरी हो गया। यहां यह बताना पडेगा कि इस व्यक्ति के दो विवाह हुए थे। उसकी पहली स्त्री से वह लडका हुआ था, जो गोद ले लिया गया था और जिसका यह किस्सा है। उसकी पत्नी तब मर गई थी। उसने दुबारा शादी कर ली थी और उससे कहा जाता है कि चार बच्चे हुए थे। इस स्त्री की एक अविवाहित छोटी बहन थी। सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया—और उसमे उसके पिता की भी राय थी—कि इसी लडकी को जब जरूरत पड़े लीलावती बना कर खडा किया जाय। इस प्रकार काम आराम से चलता रहा। गवाहिया प्रस्तुत कर दी गई। मुझे ठीक से याद नहीं है कि लीलावती को कभी अदालत मे पेश किया गया हो, शायद नही किया गया था। अत मे माल अदालत ने कह दिया कि उन्हे सदेह है, इसलिए वह उसके नाम का इन्दराज नही करेंगे। यह पहली अदालत मे हुआ। इन सबमे कुछ समय लग गया। इस बीच लीलावती बडी हो गई और उसके पिता को उसकी शादी की फिक्र हुई। उसने कह दिया कि वह अपने दामाद पर अहसान करने को भी इस दिलचस्प नाटक में अपनी कन्या को लीलावती का पार्ट अदा करने के लिए अविवाहित नही रख सकता। खुशामद के बाद भी वह अपने विचार से नही डिगा और उस लडकी का विवाह यथा नाम तथा गुण वाले शैतान-सिह से हो गया।

जब विवाह के बाद एक अन्य लीलावती की आवश्यकता हुई, क्योंकि

एक वड़ी अदालत में माल की कार्रवाई चल रही थी और किसी समय भी लीलावती को अदालत मे हाजिर करने के लिए कहा जा सकता था। इसलिए एक और छोटी लडकी को छाटा गया। उससे भी कुछ न वना। अपील भी माफिक न हुई और जायदाद की वापसी के लिए एक दीवानी दावा दायर करना जरूरी हो गया। दुर्भाग्य अकेला कभी नही आता। इस वीच लडके का पिता मर गया। सट्टेबाज मामले मे आगए और उन्होने सोचा कि मामला खत्म हो गया और अगर कुछ कारगर उपाय न किये गए तो सारा लगा-लगाया रुपया वेकार जायगा। मुझे यह पता नही कि उन्होने यह कैसे किया; लेकिन उन्होने गोद गये लड़के की सौतेली मां को लीलावती बनने को राजी कर लिया और उसने ऐसा ही किया। स्वर्गीय नावालिग स्वामी की विधवा की हैसियत से उसने सम्पत्ति पर दावा दायर कर दिया। यह ध्यान देने योग्य वात है कि जब लड़का मरा था तो उसकी उम्र १५-१६ वर्ष की थी और लीलावती भी उसी उम्र की वनाई गई थी। यह मुकदमा लड़के की मृत्यु के ४-५ साल वाद शुरू हुआ था, किन्तु यह स्त्री, चार बच्चो की एक अधेड उम्र की औरत थी। वह तमाशे की नायिका वनने को राजी हो गई; लेकिन खिलाडी निराश न थे। मुकदमा शुरू हुआ। दूसरी तरफ भी सट्टेवाज लोग थे। असली उत्तराधिकारी तो गरीव लोग थे, जो भूखे-नंगे थे और एक नामी सट्टेबाज़ ने थोड़ा-सा रुपया और करीव ३०० एकड भूमि देकर उन्हे खरीद लिया था। दीवानी मुकदमे मे जैसे हुआ करता है, वहुत वक्त लगा। करीब १०० गवाहियां हुई। इनमें से ६० तो वादी की ओर से हुई, जिन्होने शपथपूर्वक कहा कि लडके का विवाह हुआ था। कुछ ने तो यहाँ तक कहा कि वे उसकी वारात में गये थे और पाणिग्रहण के समय उपस्थित थे, आदि-आदि। दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने इस आशय की साक्षियां दी कि विवाह हुआ ही नही, लड़का वहुत छोटा था, किसी ने भी विवाह की वात नही सुनी। स्कूल के अध्यापक ने गांव के स्कूल का वह रजिस्टर दिखलाया, जिसमें जिस दिन विवाह हुआ वताया गया था, लडका हाजिर था। स्कूल के रजिस्टर में जहा तक

मेरा खयाल है, हाज़िरी झूठी बनाई हुई थी । जो हो, वहां हाजिरी थी । प्रतिवादियों ने लीलावती की शारीरिक परीक्षा के लिए भी प्रार्थना की, जिससे देखने पर उनकी उम्र की शनाख़्त हो सके और यदि आवश्यकता हो तो आतरिक जाच भी की जाय । यह प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लिया गया और एक डाक्टरनी कमिश्नर की हैसियत से इस कार्य के लिए नियुक्त हुई । वह मकान के अन्दर गई, फौरन ही लौट आई और अपनी रिपोर्ट दे दी । उसने अपनी रिपोर्ट मे लिखा कि मकान के अन्दर उसने एक स्त्री को देखा जिसका नाम लीलावती बताया गया । वह स्त्री सिर से पैर तक ढकी हुई थी और उसका केवल मुंह और हाथ खुले हुए थे, जो दिखाई पड़ते थे । उसने लिखा कि बडी शिष्टता के साथ उसने उस स्त्री से कपडा हटा कर थोडी अपनी बाह, पेट और शरीर के अन्य भाग दिखाने को कहा; किन्तु उस स्त्री ने दृढता के साथ वैसा कुछ करने से इन्कार कर दिया । इतना ही नहीं, उसने धमकी दी कि वह डाक्टरनी को पीट देगी । डाक्टरनी ने बताया कि वह उस स्त्री का चेहरा और हाथ देखकर सिर्फ राय ही कायम कर सकती है । चेहरे से वह अधेड़ उम्र की जान पडती थी और हाथों से पता चलता था कि वह शारीरिक परिश्रम करने की बहुत आदी है । मुझे ध्यान पडता है कि उस मामले में वही निर्णायक पहलू हुआ और परिणाम यह निकला कि पहली अदालत में लीलावती हार गई और इलाहाबाद हाईकोर्ट में की गई अपील मे भी, जिसमें मैं उसके विरुद्ध डाक्टर सप्रू के साथ छोटा वकील था, वह असफल रही । उस समय छोटी उम्र का होने के कारण सारा मुकदमा मुझे हमेशा याद रहने वाला और यकीन न करने-जैसा लगा ।

× × ×

दूसरा मामला, जो कुछ वर्ष बाद सामने आया, एक लडकी से संबंधित था, वह अनाथ हो गई थी, लेकिन उसके पास काफी सम्पत्ति थी और वह सम्पत्ति उसके पिता के भाई, चाचा, के संरक्षण में थी । इस चाचा ने उसका विवाह पडौस मे ही समान प्रतिष्ठावाले परिवार में एक नवयुवक के साथ

कर दिया। लडकी वहुत बड़ी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, इसलिए उससे हर कोई विवाह करने को आतुर था। मुझे संदेह है कि उसका विवाह निश्चित करते समय उसके चाचा ने निजी लाभ के लिए वर के पिता से अवश्य कुछ सौदेवाज़ी की होगी। लेकिन उसके चाचा से भी शायद मामला 'हीरे से हीरा काटने' का हुआ और भारी सम्पत्ति के साथ उस लड़की को अपनी पुत्रवधू वनाकर वह व्यक्ति सौदे से मुकर गया। चाचा अपनी मूर्खता पर रोता रह गया। यही उन घटनाओ की शायद भूमिका वना, जिनका मैं उल्लेख करने जा रहा हूँ।

मामला यो शुरू हुआ कि उसके चाचा ने अपनी नावालिग भतीजी और उसकी जायदाद के सरक्षण के लिए जिला जज के यहाँ दरख्वास्त दी। दरख्वास्त में लिखा कि उसका पति नाबालिग—स्कूल का विद्यार्थी था और उसका (लड़की का) ससुर उसकी उपेक्षा तथा सम्पत्ति का बेहद बुरा प्रवन्ध कर रहा था, साथ ही मुनाफे का गोलमाल भी किया जा रहा था। इसलिए कानूनी सरक्षण जरूरी था और उस लडकी की देखरेख करने के लिए उसका चाचा ही उपयुक्त व्यक्ति था, जो विवाह से पूर्व भी देखभाल करता था।

जिले के उस नगर मे, जहां यह दरख्वास्त दी गई थी, जज की अदालत नही थी। जिला जज पन्द्रह दिन में एक वार वहां इस प्रकार की दरखास्तें सुनने जाया करता था। इस प्रकार एक शनिवार को एक ओर चाचा, उसका वेटा और वकील तथा प्रतिपक्ष में दूसरी ओर लडकी का ससुर और उसका वकील उस मुकदमे के सिलसिले में जिला जज के सामने खड़े हुए। ज्योंही मुकदमा शुरू हुआ, चाचा के वकील ने दुखी आवाज में जज से कहा कि अव दर्खास्त की सुनवाई की आवश्यकता ही नहीं रह गई, क्योंकि दुर्भाग्यवश लडकी का देहात हो गया है। प्रसंगवश मैं कह सकता हूँ कि इस देहात का कानूनी अर्थ यह हुआ कि सम्पत्ति लडकी के पिता के कुटुम्ब को लौटनी चाहिए और सवसे निकट का उत्तराधिकारी उसका चाचा था।

चाचा के वकील की वात सुन कर जज ने स्वभावत. सवाल की निगाह से दूसरी तरफ देखा और तुरन्त ही ससुर ने कहा कि तीन दिन हुए, जब मैं घर से आया हूँ। उस समय पुत्रवधू विलकुल ठीक थी, उसकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह वात विलकुल झूठ है। जज चक्कर मे पड गया और मामले की १५ दिन आगे की तारीख लगादी। साथ ही यह आदेश भी दे दिया कि लड़की को अदालत मे उपस्थित किया जाय।

पखवाडा वीता। अदालत वैठी। ससुर उपस्थित न हुआ, लेकिन उसके वकील ने एक तार पढ कर सुनाया, जिसमें ससुर तथा पुत्रवधू के वीमार होने की सूचना थी और अदालत मे आगे की तारीख डालने का निवेदन किया गया था। इससे जज का सदेह वढा। उसने तारीख तो स्थगित कर दी, लेकिन यह आदेश दिया कि अगली पेशी मे लडकी को अवश्य उपस्थित किया जाय, चाहे ससुर आ सके या न आ सके। इसके वाद दोनो पक्ष फिर चले गए।

अगली पेशी पहली पेशी से ठीक चार सप्ताह वाद पडी। चाचा अपने वेटे के साथ हाजिर था। दूसरी ओर ससुर के स्थान पर खुद लडकी का पति अपने मामा के साथ उपस्थित हुआ। मुकदमा शुरू होते ही जज ने पूछा कि लडकी हाज़िर है? वकील ने जवाव दिया कि वह आ गई है और अदालत के अहाते मे ही एक पालकी में वैठी हुई है। जज ने चाचा से कहा, "तुम्हारी भतीजी वहाँ वाहर है। जाओ, उससे मिल आओ।" चाचा अपने पुत्र के साथ वाहर गया और दो मिनट में ही यह चिल्लाते हुए लौट आया, "वह उसकी भतीजी नही है। उसकी भतीजी तो एक महीना हुआ तभी मर चुकी है। अदालत के साथ भारी षड्यत्र किया गया है और उसकी भतीजी के स्थान पर कोई और लडकी लाई गई है। वाहर पालकी मे वैठी लडकी तो कोई विलकुल अजनवी है।" जज वडे चक्कर मे पड गया। उसे वडा गुस्सा आया। उसने एक आदेश लिखा, जिसमे कहा कि इस प्रकार की स्थिति सिर्फ भारत मे ही पैदा हो सकती है, और कहीं नही। उसने यह भी लिखा कि इस रहस्यपूर्ण मामले

2089

में वाहर पालकी मे वैठी लड़की के सम्वन्ध में कुछ भी निर्णय करना असम्भव है, लेकिन वह लड़की के पति को उसका सरक्षक नियुक्त करता है, भले ही वह लड़की कोई भी हो और मामले को यही छोड दिया।

स्थिति कुछ वर्षो तक इसी तरह रही। चाचा कोई और कदम न उठा सका। इस वीच लड़की की सम्पत्ति का उपभोग पति के परिवार-वाले करते रहे।

अत में छः वर्ष के वाद चाचा ने सम्पत्ति की वापसी के लिए दीवानी अदालत में एक दावा दायर किया। दावे मे कहा गया कि भतीजी मर चुकी है और उसकी मृत्यु के वाद हिन्दू कानून के अनुसार सम्पत्ति उसे मिलनी चाहिए और वह उसे पाने का पूर्ण अधिकारी है। उसने सरक्षण के मुकदमे का उल्लेख किया भी और कहा कि मुकदमे के चार सप्ताह के दौरान मे लडकी के पति ने दुवारा विवाह कर लिया और नई स्त्री अमुक गाव के एक व्यक्ति लक्ष्मीनारायण की लडकी है। उसने पूरा विवरण दिया। अव वही नई स्त्री दुनिया के सामने भतीजी के रूप मे प्रकट की जा रही है।

जवाव मे चाचा के दावे को गलत वताया गया और कहा गया कि लडकी हर तरह से सही-सलामत है और जीवित है, और यह दावा अदालत के साथ भारी धोखाधडी है। इस तरह दोनो तरफ से वाते कही गई।

जिला जज के सामने वह एक हास्यजनक दृश्य वन गया। जज की आज्ञा से जव गवाह लिये जा रहे थे तो लड़की को वाहर एक पालकी मे विठाया हुआ था और वादी की ओर से रिश्तेदार, दोस्त और परिचित, हर गवाह जा-जाकर वाहर पालकी मे झाकता और लौटकर अदालत में शपथपूर्वक कहता कि यह वह लडकी नहीं है, जिसे वे जन्म से ही जानते हैं। वह तो कोई और है। कुछ गवाह ऐसे भी आये, जिन्होंने जोर के साथ कहा कि वह लड़की लक्ष्मीनारायण की कन्या है और वे उसे वचपन से पहचानते हैं। तव वहुत सारे गवाह लडकी के ससुराल के गाव और पास-पडौस के आये। उन्होंने शपथपूर्वक कहा कि उन्होंने लड़की की वीमारी का समाचार सुना

था और वे हालचाल पूछने भी गये थे। तब उनसे कहा गया कि लडकी मर गई। बहुत-से लोगो ने कहा कि उन्होंने शव अपनी आखो से देखा था। दूसरो ने तो यहा तक कह दिया कि वे शव-यात्रा मे भी गये थे और कुछ मील दूर नदी के किनारे उनके सामने शव जलाया गया था। दूसरी तरफ पति, ससुर, रिश्तेदार और बहुत से लोग आये, जिन्होने हलफ लेकर कहा कि उस परिवार में कोई मृत्यु नही हुई और यह लडकी वही है, जिसे चाचा ने बडे ठाठबाट से शादी करके दिया था। अब रहा लक्ष्मी-नारायण। उसने कहा कि उसके तीन लडकिया थी, सब जीवित है और उसने सबका हिसाब बता दिया। मुझे याद है, उसने कहा था कि वे तीनो लडकिया भारत के तीन अलग-अलग शहरो मे है और अपने-अपने घरो मे खुश है।

मातहत जज के दिमाग की कैफियत का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है। उसने मामले को सुलझाने का भरसक यत्न किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि चाचा अपना मामला सिद्ध नही कर सका और लडकी की मृत्यु साबित नही हो सकी, इसलिए उसने मुकदमा खारिज कर दिया।

इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपील की गई और वादी की ओर से मुझे वकील किया गया। मुकदमे की मिसल बहुत बडी थी। दोनो तरफ से गवाहो की सख्या भी बहुत अधिक थी। जितना मै मामले पर विचार करता उतना ही अधिक मुझे यह महसूस होता कि मेरा मुवक्किल (चाचा) ही ठीक था। मेरे मस्तिष्क में दो मुद्दे थे। पहला था जिला जज के सामने सरक्षण के मामले मे ससुर का व्यवहार और दूसरा, जिसकी ओर किसी का ध्यान ही नही गया था, यह था कि लड़की का इस मुकदमे में एक गवाह की हैसियत से बयान नहीं लिया गया था। अपील दो विद्वान् और अनुभवी जजो के सामने पहुँची। एक हिन्दू थे, न्यायाधीश लालगोपाल मुखर्जी तथा दूसरे पारसी, न्यायाधीश बी० जे० दलाल। मैंने उक्त दो मुद्दो पर ध्यान केन्द्रित कराने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु न्याया-

धीश मुखर्जी के सामने वात आगे न वढी। कभी-कभी वह एक हठी जज बन जाते थे और उनसे कोई वात मनवाना कठिन हो जाता था। उनका मस्तिष्क मेरे विरुद्ध वहुत जल्दी वन गया। न्यायाधीश दलाल की ओर से कुछ आशा वधी थी। वहुत दिनो के वाद अत मे न्यायाधीश दलाल ने मुझसे साफ-साफ कहा, "आपने जो कुछ भी कहा है उसका मुझपर प्रभाव पडा है, मै यह मानता हूँ; लेकिन मेरे सामने एक कठिनाई है। अगर आपकी वात ही सच है तो आपका मामला दायर होने मे इतनी देर होने का आपके पास क्या उत्तर है ? सरक्षण के मुकदमे और इस दावे के वीच छः वर्ष से भी अधिक का समय हो गया। मुझे ऐसा लगता है कि आप एक मास के भीतर ही दीवानी अदालत मे पहुँचकर सम्पत्ति पर अपना दावा दायर करते।" मिसल मे इसका जवाव देने के लिए कुछ था भी नही। मै यही कह सका कि मेरा मुवक्किल मालदार नही है और दीवानी मुकदमा करने के लिए धन की आवश्यकता होती है—वह तो एक खर्चीला सौदा है। लेकिन न्यायाधीश दलाल को इस उत्तर से सतोष नही हुआ। उन्होने अपना नोट देते हुए लिखा कि उनके साथी जज का विचार तो प्रारम्भ से ही मेरे खिलाफ था और उनके पास भी अपने साथी से असहमत होने के लिए कोई विशेष वात नही है। परिणाम यह निकला कि खुली अदालत में फैसला सुनाया गया और अपील खारिज हो गई।

फैसला सुनने के वाद मेरे विरुद्ध काम करने वाले एक छोटे वकील ने मुझसे कहा, "डाक्टर साहव, आप मुकदमा जीत गए।" मै आश्चर्य मे पड गया। पूछा, "कैसे ?" उसने शातिपूर्वक कहा, "मै ठीक ही कह रहा हूँ। आपको पता नही कि क्या हुआ है।" मैने कहा, "मुझे कुछ नही पता।" उसने कहा, "मेरे मुवक्किल के परिवार में यह दशा हो गई है कि लडकी का पति मर गया, लडकी का ससुर चल वसा और लड़की के कोई औलाद नही है। वह किसी वच्चे को गोद भी नही ले सकती, क्योकि उसका पति अकस्मात मर गया और उसे गोद लेने की अनुमति प्रदान नही कर गया। वह खुद भी वहुत वीमार है और तपेदिक की तीसरी मजिल पर पहुँच

चुकी है। उसका दम किसी भी समय निकल सकता है। वह शायद चन्द हफ्ते भी जीवित नही रह सकेगी। आपको भतीजी से कोई मतलब नहीं, आप तो सम्पत्ति की चिन्ता ही कर रहे है। यह लड़की चाहे उसकी भतीजी हो या वनावटी, जल्दी ही कूच करने वाली है और सम्पत्ति आपको मिल जायगी। यही तो आप चाहते थे। इस प्रकार मुकदमा आप ही जीते है।" जिस ढग से यह वात कही गई थी, उससे मुझे कुछ दुख हुआ, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि हम तो अपनी सूझ-बूझ के अनुसार कार्य करते है, लेकिन ईश्वर अनेक रूपो मे अपना जल्वा दिखा देता है।

× × ×

मुझे एक और इसी प्रकार की घटना का ध्यान हो आया है। यह भोवाल सन्यासी के मुकदमे के वारे मे मुझे लंदन मे सुनाई गई थी। यह तो सवको मालूम ही है कि भोवाल के कुमार की पत्नी ने उसके दावे को अस्वीकार करते हुए अपना वास्तविक पति नहीं माना था। उसने दृढता के साथ कहा कि उसके पति की तो मृत्यु हो चुकी है और दावेदार कोई छली मनुष्य है। ढाका के मातहत जज तथा कलकत्ते के हाईकोर्ट में वह नाकामयाव रही। तव उसने लदन मे प्रिवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी के सामने अपील की। वहा पर भी २० दिन की लम्बी सुनवाई के वाद अपील खारिज हो गई। लेकिन हुआ यह कि अपील के खारिज होने के कुछ ही दिन वाद दावेदार भोवाल का कुमार मर गया और मुझे वताया गया कि लदन मे रानी के कानूनी सलाहकार ने यह सूचना अपने प्रतिपक्षी को एक विजिटिंग कार्ड पर यह लिख कर दे दी, "न्याय हो गया!" उसका तात्पर्य क्या था, पाठक स्वय समझ सकते है।

: ११ :

अंगूठे के निशान ने बचाया

भारत मे मुकदमेवाज़ी का सवसे सफल साधन तथा सव तरह के छल-कपट करने का जरिया उत्तराधिकार-कानून है, जो ज्यादातर लोगों को पसंद नही है। पुराने जमाने मे गाव का समाज सभी वर्णों के परिवारो का होता था। लेकिन हर वर्ण के परिवारों का समूह आपस में रिश्तेदारी से वंधा होता था, क्योकि उन सवके एक ही पूर्वज होते थे और वह समान पूर्वज-पुरुष होता था। लड़कियों की शादी दूसरे गांव मे होती थी, और वे अपने जन्म के परिवार से सम्पूर्णत: अलग हो जाती थीं तथा वे और उनकी सताने पिता की जायदाद की उत्तराधिकारिणी होने से वंचित कर दी जाती थीं। इसका कारण किसी खास रिश्तेदार को वहिष्कृत करने की इच्छा से नहीं था, वल्कि इसका उद्देश्य था समाज की एकता को वनाये रखना। उत्तर-प्रदेश मे अग्रेज शासको ने इस पुराने रिवाज मे हस्तक्षेप किया और लड़कियो तथा उनकी सतानो को पिता के धन का उत्तराधिकारी माना। यह अधिकार किसी सख्त रिवाज के अनुसार ही रद्द किया जाता था, जिसको जज खुले आम कठोर और अस्वाभाविक वताते थे। जजो द्वारा वनाये इस कानून को कमजोर वनाने मे जनता कभी-कभी सफल हो जाती थी और हर प्रकार से ऐसे उत्तराधिकार के दावे को रद्द करवाती थी। अग्रेजो की अदालतो ने लड़कियो को नजदीकी उत्तराधिकारी माना; लेकिन वहनो को नही माना। धोखा देने का एक आम तरीका यह होता था कि लड़की को मृत व्यक्ति की वहन वताया जाता था और उसके लड़की होने के दावे को अस्वीकार कर दिया जाता था। अगर वाप अपनी जवानी मे मरा तथा माता गर्भवती हुई, तो वताया जाता था कि माता के पिता की मृत्यु के वाद लडका हुआ, जो सप्ताह या महीने के वाद मर गया। लेकिन अंतिम मालिक वही था, इसलिए लड़की वहन के उत्तराधिकार का दावा कर सकती थी। इस तरह के कितने ही

बहाने बनाये जाते थे ।

फिर उस विधवा का सवाल लीजिए, जिसका पति संयुक्त हिन्दू परिवार में रहकर ही मरा हो। हिन्दू समाज धीरे-धीरे इस नियम का मानने वाला होने लगा था कि परिवार चाहे संयुक्त हो या न हो, विधवा को परिवार में अपने पति का हिस्सा मिलना चाहिए, जिसका जीवन भर वह उपभोग करे। बंगाल में यही नियम है; लेकिन उत्तर-प्रदेश में जजों ने इस नियम के प्रचार-प्रसार को रोक दिया और पुराने नियम के अनुसार तय किया कि संयुक्त हिन्दू-परिवार में निपूती विधवा को पति का हिस्सा नहीं मिलना चाहिए। उस विधवा के पति का हिस्सा दूसरे पुरुषों के हिस्सों में बांट दिया जाता और उसे परिवार के साथ रहने तथा उनके आसरे रहकर ही जीवन-यापन का अधिकार दिया जाता। इस नियम से उत्तर-प्रदेश में बहुत मुकदमेबाजी हुई। हर मुकदमे में संयुक्त और विभाजित परिवार का बहाना मुकदमेबाज अपनी सुविधानुसार करने लगे और इन बहानों को धोखे-बाजी तथा झूठी गवाही दिला कर सत्य साबित किया जाने लगा। गवाही में भेद होने से अक्सर सचाई का पता लगाना मुश्किल हो जाता था। अपनी वकालत के दिनों में मेरे पास ऐसे सैंकड़ो ही मुकदमे आये। लेकिन उनमें से कुछ तो सचमुच ही बडे विचित्र थे, विशेष रूप से एक मुकदमा तो बडा ही मनोरंजक था। अदालत में एक लम्बे अर्से से वह चल रहा था; लेकिन अंत में सबसे बड़ी अदालत—लंदन की प्रिवी कौंसिल ने अपना निर्णय एक अंगूठे के निशान पर ही दे दिया। यह किस्सा यहां बयान करने योग्य है :

उत्तर प्रदेश के एक देहात में दो भाई रहते थे और वे सचमुच एक संयुक्त परिवार के थे। उनकी जमीन-जायदाद कई गांवों में फैली हुई थी और दो जिलों में पडती थी। प्रबंध की सुविधा के ख्याल से संयुक्त परिवार की मर्यादा को कायम रखते हुए भाइयों ने यह तय किया कि एक भाई एक जिले की जमीन का प्रबंध करे और दूसरा भाई दूसरे जिले की। इन दो जिलों की जायदाद का मुनाफा लगभग बराबर था और इसलिए

हर तरह से यह प्रवध प्रशंसनीय और सुविधाजनक था। एक भाई के एक लडका था, दूसरे के सतान नही थी।

सन् १९१८ ई० के जाड़े के मौसम मे जव प्रथम विश्व-युद्ध समाप्ति पर था, सारे उत्तर-भारत मे इफ्लुएंजा ने महामारी का भयानक रूप धारण कर लिया था। उसी बीमारी से संतान-हीन भाई की मृत्यु होगई।

उसकी स्त्री एक पुलिस अफसर की लड़की थी। दशहरा के त्यौहार पर वह अपने पिता के घर गई थी। उसका पति वाद मे उसके पास पहुँचा। उसे इफ्लुएजा हो गया और वह एक-दो दिन के भीतर ही मर गया। कहा जाता है कि विधवा स्त्री ने उस समय यह तय किया कि वह अपने पति के घर में रहकर परिवार की सम्पत्ति का, जो उसके पति के हाथ मे थी, प्रवध करेगी।

जहा तक दूसरे भाई का सम्वन्ध था, हिन्दू कानून ने उसे भाई की मृत्यु के वाद सारी जायदाद का मालिक वना दिया और भाई की विधवा गुजर-वसर करने मात्र की उत्तराधिकारिणी रह गई। उसका पति के हिस्से पर कोई अधिकार न रह गया, क्योकि उसका पति सयुक्त परिवार मे मरा था और उसके कोई लडका नही था। उस जीवित भाई के आश्चर्य का अन्दाजा लगाइये, जवकि कई महीने वाद एक दिन अचानक उसे पुलिस अफसर का तार मिला। उसमे विधवा के पिता ने यह खुशखवरी दी थी कि उसके भाई की विधवा के नैहर मे लड़का हुआ है। तार भेजने वाले ने लड़के के चाचा को इस परिवार-वृद्धि पर वधाई दी थी। यह समाचार दूसरे भाई को वज्रपात-जैसा मालूम हुआ। इसकी पहले कोई खवर नही थी। हिन्दू परिवार-प्रथा के अनुसार वच्चा होने से दो-तीन महीने पहले कुछ उत्सव मनाया जाता है और होने वाली खुशी की खवर रिश्तेदारों को इस तरह मिल जाती है। इस मामले में भी साधारणतः भाई और उसके परिवार को यह खवर वच्चे के जन्म से पहले ही मालूम होनी चाहिए थी। यह भी आशा की जाती थी कि पुलिस अफसर सावधानी के रूप मे तथा गलतफहमी को दूर करने के ख्याल से वच्चे के जन्म से पूर्व ही इसकी सूचना

उस भाई को दे देता , ताकि अगर उसकी इच्छा होती तो वह बच्चे के जन्म के समय वहा उपस्थित हो जाता । लेकिन ऐसा कुछ नही किया गया और यह तार एकाएक आ पहुँचा । बच्चे के चाचा को धोखेबाजी का सदेह हुआ । पुलिस अफसर के कई लडके थे और उसने सोचा कि यही हो सकता है कि यह महाशय अपने एक पोते को नाती बनाकर हटाना चाहते है । लडका पोता तो रहेगा ही , अन्तर यही होगा कि वह पुत्र का पुत्र न होकर पुत्री का पुत्र बन कर रहेगा । लेकिन इस थोड़े परिवर्तन से लडके को अपने बाप के हिस्से पर दावा मिलने का हक होगा, और वह इतनी बड़ी भू-सम्पत्ति का हकदार हो जायगा ।

चाचा ने बच्चे को नकली करार दिया, और कहा कि उसे फरेबके लिए खडा किया गया साथ ही यह दलील पेश की कि उसके भाई की विधवा भाई के मरने के समय गर्भवती नही थी ।

इसमे बडे दावे थे । समझौता सम्भव नही था । तुरन्त मुकदमे-बाजी शुरू हो गई । मुकदमे की सारी बात बच्चे की 'असलियत' पर निर्भर करती थी । इसका सबूत देना विधवा के सिर पर आ गया । उसने सबूत मे जो बयान दिया वह अद्भुत था । उसने कहा कि पति की मौत के बाद ही उसे गर्भवती होने का ज्ञान हुआ । फिर भी वह अकेली अपने घर मे ही रहती थी, साथ मे कुछ नौकर थे और उसने अपना घर छोडने की चिन्ता न की । उसका पिता दूसरे जिले मे पुलिस-अफसर था । उसकी एक सहेली थी । वह एक ईसाई महिला थी, जो उसके पास अक्सर आया करती थी । एक दिन उस सहेली ने कहा कि लडके की पैदाइश पर शक किया जायगा और खानदान मे झगडा उठेगा, इसलिए यह बेहतर होगा कि गर्भवती माता को अपने गर्भ का कुछ सबूत रखना चाहिए । विधवा ने बताया कि यह सलाह उसके दिमाग मे बुद्धिमानी की जची और उसने अपनी सहेली से कहा कि वह उसे ऐसा प्रमाण दिलाने की कोशिश करे । इसपर उस ईसाई महिला ने पास के शहर की एक ईसाई प्रचार-मडली की लेडी डाक्टर से सम्पर्क किया और उसने अपने-

यहा बुलाया। वह लेडी डाक्टर आई और उसने गर्भवती मां की जाच की। उसने कहा कि स्थिति सामान्य है । उनके कहने पर लेडी डाक्टर ने अपनी जाच का सर्टिफिकेट दस्तखत करके दिया और उसपर गर्भवती माता के अंगूठे का निशान लगवा दिया। जव प्रसव का समय नजदीक आया तो विधवा ने पिता के घर जाना बेहतर समझा। पिता से कहा कि वह उसके पति के भाई को इस खुशखबरी की सूचना भेज दे। लेकिन किसी-न-किसी कारण से खबर भेजने में टालमटोल हो गई और बच्चा पैदा होने से पूर्व खबर न भेजी जा सकी। यही उसका किस्सा था । प्रसव होने की गवाही दाई ने दी और दूसरे लोगो ने भी गवाही दी, जो वहां उस समय मौजूद थे।

दूसरी ओर, मृत व्यक्ति के भाई और उसके गवाहों ने यह बयान दिया कि बच्चे के जन्म होने से पूर्व किसी को इसकी खबर न थी। अगर यह बात सच होती तो जन्म से पूर्व सूचना तथा कई तरह की रस्में पूरी की गई होती। यह दलील भी पेश की गई कि डाक्टरी सर्टिफिकेट सदेहात्मक परिस्थिति मे दिया गया है और वह एक काफी अनुभवी तथा फरेबी दिमाग की उपज है। फिर दो औरतो का मिलकर सर्टिफिकेट लिखवाने का किस्सा और भी यकीन के लायक नही है ।

लेडी डाक्टर से जज के सामने प्रश्न किये गए। उसने सर्टिफिकेट को सही बताया। लेकिन मैं नहीं कह सकता कि दोनों पक्षों में से एक ने भी लेडी डाक्टर को उस विधवा माता पर नजर डालने के लिए कहा जिसकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था । यह भी नही कह सकता कि उसने सर्टिफिकेट को सही बताते हुए कहा था कि उसने एक औरत की जाच की थी, जिसने अपना वही नाम बताया था, जो सर्टिफिकेट में लिखा था ।

विद्वान् जज सचमुच विधवा के बयान से प्रभावित नही हुआ। उसने सोचा कि यह बात बहुत सन्देह से भरी है और ऐसे मौके पर हिन्दू-परिवार में साधारणतः जो-कुछ किया जाता है, उसके बिलकुल खिलाफ

है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जज ने यह ख़याल किया कि यह मामला पुलिस-अफसर के फरेबी दिमाग की करतूत है। जो हो, उसने यकीन नही किया और भाई के हक में फैसला दे दिया। इसपर इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपील की गई और प्रधान न्यायाधीश सर ग्रिमवुड मेयर्स और न्यायाधीश पिग्गट के इजलास में यह मुकदमा सुनवाई के लिए आया।

दोनों तरफ बड़े अनुभवी वकील रखे गए और सुनवाई मे गवाह के बयान पर काफी बहस हुई। बहस के अंत में सर ग्रिमवुड मेयर्स ने कहा कि दोनो मे से एक पक्ष ने भी लेडी डाक्टर के बयान की सचाई पर संदेह नही किया था। निस्सदेह लेडी डाक्टर का चरित्र बहुत ऊंचा था और उसने उस क्षेत्र में काफी नाम कमाया था। प्रधान न्यायाधीश ने इस विचित्र सबूत पर आलोचना की कि दो में से एक पक्ष ने भी और न जज ने ही लेडी डाक्टर से यह कहा कि वह मां पर नजर डाले और बतावे कि क्या वह वही औरत है, जिनकी उसने जाच की थी और सर्टिफिकेट दिया था। जब अनुभवी न्यायाधीशो को यह मालूम हुआ कि वह लेडी डाक्टर अब भी उसी मिशन अस्पताल मे डाक्टर है तो उन्होने सबसे अच्छा यह समझा कि उसको हाईकोर्ट मे बुलाया जाय और फिर उसीके द्वारा मा की जाच करा कर उसका बयान ले लिया जाय। यही तय हुआ, मा तथा लेडी डाक्टर दोनो को हाईकोर्ट मे बुलाया गया।

नियत तारीख आई। हाईकोर्ट मे बडी भीड़ थी और सचमुच वातावरण बहुत गर्म था। दोनों तरफ काफी दबी हुई उत्तेजना भरी थी। लेडी डाक्टर हाईकोर्ट में आई। वह शील-सम्मान की प्रतिमूर्त्ति थी और जब उसने अपना बयान दे दिया तो प्रधान न्यायाधीश ने उसे नीचे के कमरे में जाने का आदेश दिया, जहा मा बैठी हुई थी तथा उसको देखकर आने के बाद फिर बयान जारी करने को कहा। वह नीचे गई और कुछ मिनटो के बाद जब वह ऊपर आई तो वह बहुत गभीर थी। प्रधान न्यायाधीश ने पूछा कि उसने उस औरत को पहचाना या नही।

यह भी पूछा कि क्या वह वही औरत है, जिसको उसने सर्टिफिकेट दिया था ? लेडी डाक्टर ने बहुत शाति तथा दृढतापूर्वक कहा, "नही, मै नही कह सकती। मैंने उस औरत को कुछ ही मिनटो के लिए देखा था। तबसे कई वर्ष बीत गए हैं। मेरी याददाश्त के अनुसार जिस औरत की मैंने जाच की थी वह हृष्ट-पुष्ट थी। बहुत स्वस्थ दिखती थी और शारीरिक रूप में वह बहुत अच्छी हालत में थी। जिस औरत को मैंने अभी देखा है, वह बहुत दुबली है और यह साफ जाहिर है कि वह चिता से सूख रही है। मुझे बहुत दुख है, मै यह बिलकुल नही कह सकती कि यह वही औरत है या नही, जिसकी मैंने जाच की थी।" इसपर अदालत में सनसनी फैल गई। लेकिन लेडी डाक्टर ने अपना बयान जारी रखा और कहा, "लेकिन एक बात के बारे मे मै निश्चित रूप से और दावे के साथ कह सकती हूँ। जिस औरत की मैंने जाच की थी उसके अगूठे का निशान मैंने अपने सामने ही सर्टिफिकेट पर ले लिया था।" ज्योंही लेडी डाक्टर की जाच खत्म हुई, प्रधान न्यायाधीश ने कहा, "नये सबूत के कारण मुकदमा सहल हो गया है। अब यह मुकदमा अगूठे के निशान के सही होने पर निर्भर करता है।" इसके बाद न्यायाधीश पिग्गट स्वय नीचे गये और एक कागज पर उस महिला के अगूठे के तीन या चार निशान ले आये।

इजलास में लौट आने पर अनुभवी जजो ने एक बड़ा दिखाने वाला शीशा मगाया, अगूठे के निशानो को देखा और पूर्ण जाच के बाद प्रधान न्यायाधीश ने कहा, "हम लोग तो सचमुच इस मामले मे साधारण जानकारी रखते है, और यह चीज विशेषज्ञो की है। लेकिन जहा तक हम लोगो की जांच का सवाल है, अगूठे के नये निशान सर्टिफिकेट के निशान से मिलते है।" मुझे अब याद नही है कि क्या कारण हुआ, दोनों मे से एक पक्ष ने भी विशेषज्ञ द्वारा अगूठे के निशान की जाच की दरख्वास्त नही दी। बहुत सभव है कि जिस पक्ष को न्यायाधीश के विचार से समर्थन प्राप्त हुआ हो, उस पक्ष के वकील उतने से ही सतुष्ट हो गए और दूसरे पक्ष के वकील ने सोचा कि यह काम सबूत पक्ष का था कि वह अगूठे के निशान की जाच विशेषज्ञ द्वारा

कराने की दरखास्त दे। जो हो, दोनो तरफ के वकीलो के दिमाग ने चाहे जो कुछ भी सोचा हो, जाच की दरखास्त नही दी गई और वह बात वही-की-वही रह गई। दोनो न्यायाधीशो में से एक ने भी अंगूठे के निशान को विशेषज्ञ के पास जाच के लिए भेजने की नही सोची और इन दोनो ने अपना फैसला नही दिया।

बाद मे एक दिन जब सारे सबूत पर बहस हुई, जिसमे दोनो न्यायाधीशो के निजी विचार अगूठे के निशान की समानता के सम्बन्ध मे भी सम्मिलित थे, न्यायाधीशो ने निचली अदालत का फैसला बदल दिया और बच्चे के हक में निर्णय दिया।

फिर लदन की प्रिवी कौंसिल मे अपील की गई और वहां जुडीशियल कमेटी ने मुकदमे को जल्दी मे देखकर फैसला कर दिया। सारे सबूत की अवहेलना कर, श्रेष्ठ न्यायाधीशो ने अपना छोटा-सा फैसला देते हुए कहा कि सारे मुकदमे का दारोमदार अगूठे के निशान पर था। दोनो पक्षों का कहना था कि लेडी डाक्टर का चरित्र सदेह से परे है, तब अगूठे के निशान की समानता होने पर ही मुकदमा खत्म हुआ।

: १२ :

अविश्वसनीय किन्तु सच

वस्तुत सभी तरह की कहानियाँ आमतौर पर और जासूसी कहानियाँ तो खासतौर पर, चाहे वह रहस्यभरी हो, या काल्पनिक एक बडे भारी मुद्दे को पूरा करती है। लाखो अनगिनत पाठक उनसे मनो-रजन और सुखलाभ करते है और उनमे आश्चर्य की भावना जग जाती है। लेकिन कभी-कभी मुझे खयाल हो आता है कि जो आदमी अपनी सारी जिदगी अदालतो में गुजारता है, कुछ समय बाद उनके लिए इस तरह का साहित्य कोई खास रुचिकर नही रह जाता, क्योंकि उपन्यास या कहानी का कोई भी लेखक, भले ही उसकी कल्पना-शक्ति कितनी ही महान्

क्यो न हो, सचाई से हमेशा ही दूर रहता है। कल्पित की वनिस्वत सच्ची घटना ज्यादा आश्चर्यजनक होती है और इस कथन मे विरोधाभास भी दिखाई दे सकता है; लेकिन यह नितात सत्य है कि मानव-कल्पना मानवीय प्रक्रिया की सीमाओ तक कभी पहुँच ही नहीं सकती और न कोई कल्पनाशील लेखक मानव-मन की कार्यकारिता और मानव-भावनाओ के अंतर्द्वंद्व की गहराई तक पूरी तरह से कभी पहुँच सका है। अखवारो मे प्राय. किसी खास मुकदमे के तथ्यो का संक्षेप ही प्रकाशित हो पाता है, लेकिन मुकदमा जव अदालत मे पेश होता है और दैनिक कार्रवाई मे लगातार एक के वाद दूसरा व्यक्ति ऐसी एक बात को प्रमाणित करने के लिए पेश होता है, जिसे विपरीत दिशा मे असभव ही कहा जाता तो सच्ची कहानी अतत· सामने आ जाती है । इतने पर भी वह असंभव ही लगती है, अतर केवल यह होता है कि वह घटना हुई जरूर थी। जव किसी सही या कल्पित गलती को ठीक करना हो अथवा किसी न्यायालय का आसरा बेकार सावित हो जाने पर गलत सावित हुआ व्यक्ति, इस दैवी आज्ञा को भूल कर कि 'वदला लेने का काम ईश्वर का है', गलती करने वालो से वदला लेने का भार खुद अपने ऊपर ले लेता है तो मानव-क्रोध और क्षोभ की भावनाएँ वेहद वढ जाती है और तव लोभ, सत्ता-प्रेम और स्त्री-प्रेम के भिन्न मुद्दों के कारण ऐसे-ऐसे कार्य, अपराध या भूलें की जाती है, जिनका खयाल तक नही किया जा सकता। फारसी की कहावत है कि 'जर, जमीन और जोरू' ही सब अपराधों और वुराइयो की जड है । इस दृष्टि से संपत्ति-व्यवस्था के नाश से कम-से-कम यह तो लाभ होगा ही कि वुरे कामों की एक मुख्य वुनियाद नष्ट हो जायगी।

अपनी वकालत के चालीस वर्षो मे मैंने कानूनी रिपोर्टों में कई आश्चर्यजनक कहानियां पढी है; लेकिन कानूनी रिपोर्टें भी वहुधा कोरे कानूनी प्रश्नो की व्याख्या तक ही सीमित रहती है। विशुद्ध सचाई जानने के लिए व्यक्तिगत अनुभव और लोगो व उनके मामलो की निजी

जानकारी होना जरूरी है। जब मैं बीते बरसों का खयाल करता हूँ तो मुझे कई ऐसी घटनाएँ याद आती है, जो वास्तव में अगर घटी न होती, तो उनपर कोई विश्वास ही न करता । उदाहरण के लिए आज से ३०-३५ बरस पहले की नीचे लिखी इस घटना को ही देखिए, जो उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण ज़िलो के एक कस्बे में घटी थी।

एक हिन्दू परिवार था, जिसके पास काफी बड़ी जमीन-जायदाद थी। परिवार में दो भाई थे, जो अलग-अलग थे; पर पास-पास के मकानो मे रहते थे। इनमें से एक अपनी पत्नी और पुत्री को छोड़ कर मर गया। हिन्दू-कानून के अनुसार उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसकी विधवा स्त्री और विधवा की मृत्यु के बाद उसकी पुत्री और पुत्री के बच्चो को प्राप्त होता; परन्तु पुत्री के यदि बच्चे न होते तो वह सम्पत्ति मृत व्यक्ति के भाई और उसके बेटो को मिलती। वह पुत्री अपने पिता की मृत्यु के समय अविवाहित थी। बाद में उसकी मा और उसके चाचा ने पास के जिले के एक प्रतिष्ठित परिवार मे उसे ब्याह दिया। यह संबंध हर तरह से उचित था और साधारणतया यह आशा की जाती थी कि यह विवाह सुखदायी और सफल साबित होगा। अब देखिए, किस तरह मानव-मुद्दो और प्रक्रियाओ की पेचीदगिया अपना काम करती है।

जाहिरा तौर पर चाचा भविष्य में होने वाली घटनाओ को होने नही देना चाहता था। उसे शक था कि जैसे ही उसकी भतीजी अपने घर मे बसने लगेगी, उसकी मा उसकी तरफ खिच जायगी और इस प्रकार मृत भाई की जायदाद का किराया व मुनाफा उसकी भाभी को मिलने लगेगा, परिणाम-स्वरूप वह खुद और उसका परिवार इस सबसे वंचित हो जायेंगे। यह तो थी भावी आशंका, लेकिन वर्तमान अभी उसके अनुकूल था, उसकी भाभी पूरी तरह उसके वश में थी। यद्यपि वह निजी मकान में रहती थी और किसी प्रकार के अनौचित्य का कोई कारण भी न था, फिर भी न जाने कैसे उसने अपनी भाभी को वश में कर लिया था। अब उसके सामने यह समस्या खड़ी हुई कि किसी तरीके से अपने भाई

की जायदाद के उत्तराधिकारी को स्वाभाविक पथ से हटाया जाय। देखिए कि इसके लिए उसने क्या-क्या किया। लड़की अपने पति के घर मे रहती थी। दोनो युवा पति-पत्नी में बहुत प्रेम था। एक त्यौहार पर लड़की को अपनी मा के घर बुलाया गया और फिर किसी-न-किसी बहाने से उसे वहां एक साल से ज्यादा रोका गया। पत्नी और पति तथा पति के रिश्तेदारों के बीच के सब पत्र रोक लिये जाते थे। पति का कोई भी पत्र पत्नी तक नही पहुँचने दिया जाता था। उसका क्षुब्ध और निराश होना स्वाभाविक ही था। इसपर हर रोज उसकी मां, उसका चाचा और हरेक आदमी उसके कान भरता रहता कि उसका पति और पति का परिवार उसकी उपेक्षा कर रहे है। इसके अलावा उसे यह भी कहा जाता कि यह विश्वस्त खबर मिली है कि तेरे पति ने तुझे छोड़कर दूसरी शादी करना तय कर लिया है। आप सहज ही सोच सकते है कि ऐसी असहाय मनोदशा मे वह लडकी किस पीड़ा के साथ अपने दिन और रात गुजार रही होगी। अपनी मां का विश्वास करने के अलावा उसके पास और चारा ही क्या था ?

उधर जिस शहर मे पति का परिवार रहता था, लडकी के चाचा ने अपने कुछ रिश्तेदारो और दोस्तो की मदद से झूठी अफवाह उड़वा दी कि लडकी अपनी मा के घर में भ्रष्ट होकर गर्भवती बन चुकी है और उसकी इस शर्म को छिपाने के लिए ही उसे वहां रोका गया है। पति एक नवयुवक था। वह और उसके घरवाले परेशान थे और उन्हे कोई रास्ता भी नही सूझता था। पति बारबार पत्र लिखता; पर कोई नतीजा न होता। उसके खतों का कभी कोई उत्तर नही मिला। वह कई बार अपनी सास के घर भी गया; सास ने बड़ी आवभगत की और बडे प्यार के साथ उसका स्वागत किया, खिलाया-पिलाया; एक-दो रोज वह वहां ठहरा भी; पर उसे अपनी पत्नी का कोई चिह्न तक दिखाई नही देता था। पति-पत्नी को आपस में मिलने का कोई मौका ही नही दिया जाता था। मेरा खयाल है कि वह लड़का इतना शर्मीला था कि बहुत सीधे सवाल

भी नही पूछ सकता था। लेकिन मां किसी-न-किसी झूठे बहाने से जैसे, लड़की बीमार है और बिस्तरे पर पडी है, या किसी और बहाने से लडकी की अनुपस्थिति का कारण समझा देती । नतीजा यह होता कि हर बार वह नवयुवक निराश ही लौट जाता।

इस प्रकार उस नवयुवती की आत्मा की हत्या करके और उसे पूर्णतः दुखी बनाकर चाचा ने मा के साथ साजिश करने की ठान ली, ताकि उसकी सम्पत्ति को अपने और अपनी संतान के लिए हथिया लिया जाय। इस इरादे से एक निश्चयात्मक कदम उठाया गया। और वह कदम यह एक ऐसे रजिस्ट्रीशुदा अधिकार-पत्र पर हस्ताक्षर कराना, जो अपने किस्म का एक अजीब ही दस्तावेज था। मेरा खयाल है, उसने अपने इस कपट के बारे में जरूर ही कानूनी सलाह ली होगी और मै सिर्फ यह कह सकता हूँ कि उसके सलाहकारो ने अपनी बुद्धिहीनता का भी एक बेजोड़ परिचय दिया था । इस अधिकार-पत्र के अधीन मा ने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पुत्री को सौंप दी थी। हिन्दू-कानून के अनुसार उसे यह अधिकार प्राप्त था। अधिकार-परिवर्त्तन का कारण देते हुए उसने स्वीकार किया कि वह विधवा हो चुकी है और उसने सयम तथा भक्ति का जीवन व्यतीत करने का सकल्प कर लिया है। इसलिए उसने यही सबसे अच्छा समझा कि उसकी पुत्री को तुरन्त ही अपने पिता की सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त हो जाय। यहां तक तो ठीक ही हुआ। इसके बाद उस अधिकार-पत्र मे उस लडकी की बारी आई और बीस बरस की उस जवान लड़की से यह घोषणा करवाई गई कि अभी तक चूकि उसे अपने जीवन मे बहुत दु ख मिला है, उसने निश्चय कर लिया है कि वह ससारी झगड़ो में न पडेगी, न जमीन-जायदाद की देखभाल के पचड़े मे ही पडेगी। इसलिए कि वह अपना जीवन सादगी और सयम से बिताना चाहती है, इसलिए उसने निश्चय कर लिया है कि अपनी सारी सम्पत्ति कुटुम्ब के मान्य देवता को समर्पित कर देना ही उत्तम है। इतना सब कर चुकने के बाद उसने यह भी ऐलान किया कि उसके चाचा ने उसकी देवार्पित सम्पत्ति के व्यवस्थापक बनने की उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। इस-

लिए उसने अपने चाचा को और उसके वाद चाचा के पुत्रो को पीढी-दर-पीढी इस काम के लिए नियुक्त कर दिया है। हरेक जानता है कि इस प्रकार की व्यक्तिगत धार्मिक भेट के दुरुपयोग की वहुत अधिक संभावना वनी रहती है, और शायद ही कभी जायदाद का किराया या मुनाफा देवता की सेवा के काम मे लाया जाता हो। इस प्रकार चाचा ने सोचा कि उसने एक ही चोट में मा और वेटी दोनो से छुटकारा पा लिया और अपने तथा अपने वेटे-पोतो के लिए जायदाद हथिया ली।

अव नाटक का नया दृश्य आरम्भ होता है। लडकी का पति इतनी कम उम्र का था कि खुद कुछ न कर सकता था; किन्तु सौभाग्य से उसका एक भाई था जो उससे अधिक अनुभवी था और जो लखनऊ के प्रातीय दफ्तर में कर्मचारी था। जव इस भाई ने अपने शहर मे लडकी के चरित्रभ्रष्ट होने की अफवाहे सुनी तो उसे वड़ी हैरानी हुई। उसका खयाल था कि उसके भाई की स्त्री वहुत सच्चरित्र और सुशील लड़की है। वह विश्वास न कर सकता था कि ऐसी लड़की मा के घर मे दुश्चरित्र वन सकती है। वह इस सारे मामले को कुछ शक की निगाह से देखने लगा। उसने कार्लटन नामक एक रिटायर्ड पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से सलाह ली, जो रिटायर होने के वाद अनियमित ढंग से लोगो को कानूनी सलाह दिया करता था। जहा तक मुझे खयाल है, पुलिस विभाग मे अपनी नियुक्ति से पूर्व वह स्वयं एक वकील रह चुका था। उसका वेटा वैरिस्टर था और मेरा घनिष्ठ मित्र था। श्री कार्लटन ने सलाह दी कि वह मामला कचहरी का नही है, वल्कि सीधी कार्रवाई का है। अत. लडके के भाई और श्री कार्लटन लखनऊ से सवसे निकट के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे और वहा से सोलह मील की दूरी पर लडकी के चाचा के गाव के लिए रवाना हुए। वे दोनो एक इक्के में वहा पहुँचे और गोरे के आगमन ने सारे गांव मे खलवली मचा दी। इक्का चाचा के घर पहुँचा और उसमे से रिटायर्ड पुलिस सुपिरिन्टेन्डेन्ट लडके के भाई के साथ उतरे और उन्होंने वड़े नाटकीय ढग से लडकी के वारे मे पूछा कि वह कहा है और क्यो उसे उसके

पति के घर वालो की इच्छा के विरुद्ध रोक रखा गया है । एक साथ हल्चल और गड़बड़ी का मच जाना स्वाभाविक था । चाचा बाहर निकल कर आया और गोरे आदमी की मौजूदगी मे बहुत ही नम्र बन गया। थोड़ी देर बाद लडकी की मां आई और उसके हावभाव से भी बड़ी नम्रता झलक रही थी। कार्लटन ने इस बात पर जोर दिया कि लडकी को तुरन्त पेश किया जाय और वह लडकी भी घर के अन्दर से निकल कर बाहर कमरे में आई। तब कार्लटन ने कहा कि वह लडकी को लेने आये है, उसे उसी वक्त भेजना पडेगा। मा ने बहुत विरोध किया। कहने लगी कि यह असभव है। नए कपड़े और उचित रस्म अदा किये बिना कैसे मैं इस तरह अपनी बेटी को भेज सकती हू । रीति के अनुसार लडकी के लिए नए कपडे और कुछ गहने नए बनवाने होंगे और आज का दिन भी अशुभ है अगला शुभ दिन चार दिन बाद आयगा । इसलिए लडकी को तुरत भेजने का सवाल ही पैदा नही होता। कार्लटन ने हठ पकड़ ली और उसने लड़की से पूछा कि क्या वह चलने को तैयार है। लडकी ने तुरन्त उत्तर दिया कि वह तैयार है । उनसे पूछा गया कि उसे किस कपडे की जरूरत है तो उसने कहा कि उसे किसी चीज की जरूरत नहीं, "मैं इसी साडी में चलने के लिए तैयार हूं, मुझे और कुछ नही चाहिए।" जब कार्लटन ने कहा, "आओ, चलो" तो वह बडी तत्परता के साथ तुरन्त इक्के में जा बैठी। चाचा और मा हैरान रह गए, न वे कुछ कह सके और न कुछ कर सके। इक्का चल दिया और लड़की प्रसन्न और प्रफुल्ल अपने पति के घर पहुँची।

वहा उससे विगत अठारह महीने की घटनाओ के बारे मे पूछा गया। उसने अपने पति तथा पति के परिवार की ओर से की गई अपनी उपेक्षा की बहुत शिकायत की। उन लोगो ने उसे विश्वास दिलाया कि वे उसे हमेशा चिट्ठी लिखते रहे। उसने कहा कि मुझे कभी कोई चिट्ठी नहीं मिली। बदचलनी की सब अफवाहे बिलकुल बेबुनियाद थी। फिर उसने उस अधिकार-पत्र के बारे में बताया जिसपर हस्ताक्षर करने के लिए

उसे लाचार किया गया था। कानूनी सलाह ली गई और अधिकार-पत्र को रद्द करने तथा सम्पत्ति की वापसी के लिए दावा किया गया। मा का तो अब प्रश्न ही नही उठता था, क्योकि वह अपनी सम्पत्ति अपनी पुत्री को सौंप चुकी थी।

मेरे खयाल मे यह एक ऐसा मामला था, जिसमे दो मत होने सभव ही न थे, लेकिन जिन्दगी बहुत कुछ सिखाती है। चाचा ने गंभीरतापूर्वक कहा कि वह अधिकार-पत्र भतीजी की पूरी-पूरी मंशा से लिखा गया है और वह उससे बधी हुई है। चाचा को एक ऐसा न्यायाधीश भी मिल गया, जिसने कुछ गवाहों की शहादत लेकर मुकदमा खारिज़ कर दिया।

इलाहाबाद हाईकोर्ट मे अपील की गई और मुझे लड़की की ओर से नियुक्त किया गया। आमतौर पर अदालत मे मैं अपनी भावनाओ को अपने ऊपर हावी न होने देना ही सदा से उचित समझता आया हूँ, किन्तु इस मौके पर इस निर्मम दुष्टता नें मुझमें इतना क्षोभ भर दिया जिसे छिपाना मेरे लिए सभव न था, मेरा खयाल है कि यह क्षोभ बिलकुल सच्चा होने से न्यायाधीशो को भी छू गया। किसी प्रकार के लंबे-चौडे विवाद का न वहां प्रश्न था और न आवश्यकता ही। मैंने मात्र सचाई बयान कर दी और फिर उस अधिकार-पत्र को पढ सुनाया। न्यायाधीश सन्न रह गए। यह सब कितना अजीब और कितना अस्वाभाविक था! पेशी थोड़ी देर मे ही खत्म हो गई और न्यायाधीशों ने चाचा के वकीलों को बडी लताड सुनाई। अपील मजूर की गई और न्यायाधीश के पास मामला दुबारा भेज दिया गया ताकि इस दौरान मे चाचा द्वारा प्राप्त किराये और मुनाफे की रकम निर्धारित की जा सके। इस मुकदमे ने एक न्यायाधीश, स्वर्गीय श्री लालगोपाल मुखर्जी पर इतना प्रभाव डाला कि जब मुकदमा दुबारा सामने आया और मालूम हुआ कि न्यायाधीश ने रुपये की रकम मे फिर गोलमाल किया है तो न्यायाधीश मेरी इस बात से तुरत सहमत हो गए कि यह एक ऐसा मामला था,

जिसमें मुआवजा ऐसा मिलना चाहिए जो चाचा-जैसों के लिए पाठ रहे। प्रत्येक अनुमान चाचा के विरुद्ध होना चाहिए और लड़की को ज्यादा-से-ज्यादा लाभ पहुँचाना चाहिए। इस प्रकार वह मुकदमा खत्म हुआ।

: १३ :

मानव-जीवन दाँव पर

शासन-अधिकारियो की आचरण-संबंधी शिकायतो की न्याय-विभागीय जाच के लिए सार्वजनिक माग देखकर मुझे कभी-कभी बड़ा अचभा होता है। लेकिन यह भी कोई कम संतोष की बात नही कि अगर ऐसी किसी जाच-कमेटी का अध्यक्ष न्याय-विभाग का उच्च-अधिकारी हो तो जनता के विश्वास मे भारी वृद्धि हो जाती है, क्योकि जाच-पड़ताल के लिए सार्वजनिक न्याय-विभागीय जाच की विधि ही सर्वोत्तम मानी जाती है। सारी कार्रवाही जनता के सामने होती है, सभी संबंधित दल गवाहो की छानबीन और उनसे जिरह कर सकते है। इसके अलावा हर संबंधित व्यक्ति को घटना-विषयक अपना बयान देने का मौका मिलता है और अगर किसी रूप में उसका नाम उपस्थित प्रश्न में आ जाता है, तो वह अपनी सफाई पेश कर सकता है। इसपर भी, अदालतो मे वकालत के अपने लबे अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि जाच की इस विधि का अनिवार्यतः यह नतीजा नही होता कि जाच-अधिकारी ने बिल्कुल सही तथ्य को ही खोज निकाला है। फिर भी यह सच है कि इस तरह की जाच मे सही परिणामो पर पहुँचने की सुविधा हो जाती है। गवाहो को देखने और सुनने के अलावा अदालत को एक और बड़ा भारी लाभ होता है। वह ऐसे अनुभवी वकीलो की युक्तियो को सुनती है, जो हर बयान के मजबूत और कमजोर नुक्तो को उनके सामने पेश करते है। लेकिन इन सब लाभो के बावजूद वकीलो का यह सामान्य अनुभव है कि

किसी तथ्य के मामूली से प्रश्नो तक के बारे मे न्याय-विभागीय निष्कर्ष कभी-कभी इतने भीषण रूप मे भिन्न होते है कि सामान्य आदमी के आश्चर्य की सीमा नही रहती। मान लीजिए, एक फासी के दड के खिलाफ आप दो या दो से ज्यादा जजो की बेंच के सामने अपील पर बहस करते है। सारा मामला तीन या चार गवाहों की विश्वस्तता और उस मामले की परिस्थितियो के निष्कर्षो पर ही निर्भर करता है, लेकिन हम देखते है कि अत्यधिक अनुभवी जज भी ऐसे परिणामो पर पहुँचते है, जो सर्वथा विपरीत होते है।

एक के बाद एक अदालत मे अपीलो का जो क्रम चलता है, उनमे न केवल यह कि न्याय-विषयक मतो के कारण सघर्ष उत्पन्न होता है, बल्कि कभी-कभी न्याय का खून होता है। मुझे ऐसे भीषण अनुभव भी हुए है, जिनमे आदमियो की जान के साथ जुआ खेला जाने लगा था। अगर कही एक ही जज को उन मामलो का फैसला करना होता तो निश्चित था कि वे फासी पर लटक जाते। किन्तु घटनावश मामला एक और जज के सामने चला गया, जहाँ वे फासी के तख्ते से ही नही बचे, बल्कि वे पूर्णतया रिहा भी हो गए। ऐसे दो मामलो का मै यहा उल्लेख करूँगा, जिनमे एक तो मेरी वकालत शुरू करने के दिनो मे हुआ था और उसने मेरे दिल पर इतना गहरा आघात किया था कि उसका आतंक मेरे समूचे वकालत के जीवन पर छाया रहा।

१९१४ की गर्मियो के दिन थे और मै अभी इलाहाबाद हाईकोर्ट मे नया-नया ही गया था। एक दिन मैंने चार्ल्स रास आल्स्टन को एक अदालत में फौजदारी अपील करते देखा। यह अपील हाईकोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजो, श्री जस्टिस विलियम टडबाल और श्री जस्टिस मुहम्मद रफीक के सामने पेश हुई थी। आल्स्टन भारत के गण्य-मान्य वकीलो मे थे। दीवानी कानून मे तो उनका बहुत ही व्यापक ज्ञान था। फौजदारी मामलों मे भी वह अग्रणी थे और अदालत के सामने अपने मामले को आश्चर्यजनक कानूनी चतुराई के साथ पेश करते थे।

किसी मामले के महत्वपूर्ण नुक्ते को वह सहज-ज्ञान से ही पकड़ लेते थे और उनके बोलने तथा व्यक्त करने के ढंग से उनकी वकालत का प्रभाव बहुत बढ जाता था। बोलते समय वह थोड़े शब्दो का प्रयोग करते थे; लेकिन उनका बोला हुआ प्रत्येक शब्द सुचारु रूप से चुना होता था और सुनने वालों को लगातार प्रभावित करता था। जो मामला उन्होंने अदालत के सामने पेश किया था, वह था तो छोटा ही, लेकिन उसके तथ्य बड़े अजीब थे।

एक गाव के बाहरी हिस्से मे एक कुआ था और एक दिन सवेरे ही सारे गांव में यह बात फैल गई कि एक औरत अपनी चौदह बरस की लड़की के साथ कुएँ मे गिर पडी है। बहुत से लोग वहा एकत्र हो गए और उन्हे कुएं से निकालने का तत्काल यत्न किया गया। किसी तरह की मदद पहुँचने से पहले ही लडकी तो मर गई थी, लेकिन मा को जीवित ही निकाल लिया गया। उसके कुए से बाहर आते ही लोगो ने उससे पूछा कि क्या हुआ था। कहा जाता है कि उसने फौरन वही, बिना किसी सकोच के कुए के किनारे पर खडे दो आदमियों की ओर इशारा किया और बोली, "इन्ही दोनो ने मुझे और मेरी लड़की को मार डालने के लिए कुएँ मे धकेल दिया था।" समाचार पाते ही पुलिस घटनास्थल पर पहुँच गई और जाच के बाद उसने दोनो आदमियो को हत्या के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया। इस्तगासे का कहना था कि यह औरत भिखारिन थी और गाव मे अपनी लड़की के साथ बड़ी दयनीय दशा मे जीवन बिता रही थी। दोनो अभियुक्तो के साथ एक दिन इसका कुछ झगड़ा हो गया था और उसी सवेरे उसने गुस्से में यह ऐलान किया था कि इन्होने मेरा जीना दूभर कर दिया है और वह इस गाव को छोड़कर चली जायगी। इतना कहकर उसने अपने थोडे-से सामान को इकट्ठा किया और गाँव से रवाना हो गई। दोनो अभि-युक्त उसका पीछा कर रहे थे। इसके बाद बताया गया कि जब वह कुएं के पास से निकल रही थी तो उन्होने उसको और उसकी बेटी को मार

डालने की इच्छा से कुएं मे धकेल दिया। वास्तविक घटना के बारे मे प्रत्यक्ष गवाह कोई नही था; लेकिन गाँव मे जो झगड़ा हुआ था, उसके एक या दो गवाह जरूर थे।

सैशन जज ने अभियुक्तो को दड देते हुए अपने फैसले मे लिखा "इस औरत को गवाही के कटहरे मे देखकर और उसकी स्पष्ट-वादिता तथा उसके सरल आचरण से मैं इतना प्रभावित हुआ हू कि उसकी गवाही के हर शब्द पर मुझे यकीन था और उसकी गवाही के समर्थन के बिना भी अभियुक्तो को सजा देने के लिए तैयार था।" जब वह वस्तुत. सजा सुनाने की सीमा पर पहुँचा, तो उसने अत मे लिखा कि यद्यपि मै इस औरत की गवाही पर यकीन करता हू, तथापि इस तथ्य को अपनी आखो से ओझल नही कर सकता कि इस अपराध को साबित करने वाली वह एकाकी गवाह है। इसलिए, विचार मे हत्या के अपराध के लिए मृत्यु-दंड को कम करके आजीवन कारावास की सजा देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

आल्स्टन ने इसी सज़ा के खिलाफ अपील दायर की थी। उसने बहुत सक्षेप मे, किंतु बडे शक्तिशाली ढंग से अपना मामला पेश किया था। उनका तर्क था कि झगडे की बात तो निश्चय ही सभव है, और यह भी हो सकता है कि जब यह औरत गुस्से मे गाँव से बाहर जा रही थी तो ये दोनो आदमी उसका पीछा कर रहे हो। लेकिन उसने सुझाव दिया था कि क्रोधी स्वभाव की औरतो का अपने आपको कुओ में गिरा लेना भी असामान्य नही है। ऐसी दशा मे यह भी तो सभव है कि इस औरत ने क्रोध और आवेश में अधी बनकर अपने आपको और अपनी लड़की को कुए मे गिरा लिया हो, और जब वह कुए से बाहर निकाली गई, और उसने दोनो अभियुक्तो को वहां देखा तो उन्हे देखते ही डर कर उसने इन्ही पर इल्ज़ाम लगाना बेहतर समझा हो। लेकिन दोनो विद्वान् जजो पर इसका तनिक भी प्रभाव न पड़ा, बल्कि वे तो क्रोध मे उबल उठे। मैंने जजो को इतने आवेश में कभी नही देखा था। श्री जस्टिस टडबाल

तो आपे मे वाहर हो गए और ऊँचे स्वर मे वोले, "मिस्टर आल्स्टन, आपके मुवक्किल वड़े निर्दयी, जंगली, घृणा के पात्र है। मैं आपको वतलाता हूँ कि उनकी मंशा क्या थी। वे उस औरत का पीछा नही कर रहे थे। वल्कि उसकी लड़की पर अधिकार करना चाहते थे। इसीलिए उन्होने माँ का जीवन दूभर कर दिया था। जव उसने इकार किया तो वे जान-वूझ कर उसे ही नही, वल्कि दोनो को मार डालना चाहते थे।" और तो और, न्यायाधीश सैशन जज पर भी मृत्यु-दड न देने के लिए विगड़े। उनका खयाल था कि जज अपने कर्त्तव्य-पालन में सतर्क नही रहा और इसके लिए वह दोषी है। जहाँ तक मुझे याद है, ये जज-महोदय प्रातीय न्याय-विभाग मे थे, और उन दिनो हाईकोर्ट के जजो का यह आम खयाल था कि भारतीय न्याय-विभाग के अफसरो को जव नौकरी के अतिम दिनो में तरक्की देकर जिला का सैशन जज वनाया जाता है तो ये लोग मृत्यु-दड देने में सकोच करते है। जस्टिस टडवाल के कहने का वास्तविक आशय यही था।

दोनो जजो ने वारवार यही विचार प्रकट किया कि वे इस थोडी सजा को स्थिर रखने में सहमत नही हो सकते। ऐसे भीषण मामले मे तो मृत्यु-दंड ही उचित है। इसमे सदेह नही कि वे खुद ही यह सजा दे देते; लेकिन कानून के अनुसार वे ऐसा नही कर सकते थे। किसी फौजदारी अपील मे भारतीय हाईकोर्ट को अपील खारिज करने का ही नही वल्कि सजा को वढाने तक का भी अधिकार है, लेकिन फौजदारी के कानून के अनुसार जव किसी सजा को वढ़ाने की तजवीज की जाती है तो अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप मे सूचना देनी पडती है और ऐसी वृद्धि के लिए कारण प्रकट करने का समुचित अवसर प्रदान करना पडता है। है तो यह खेल विधि पालन ही, लेकिन इसका होना जरूरी होता है। फलत जजो ने इस आदेश के साथ आज्ञा निकाली कि अपील करने वालो के नाम नोटिस जारी किया जाय और वे कारण वताये कि उन्हे मृत्यु-दड क्यों नही दिया जाना चाहिए। अभियुक्त जेल मे थे। उन्हे जेल में नोटिस मिला

ही जाना था, और इसका दूसरा मतलव यह भी था कि यह मामला कुछ समय के लिए स्थगित हो गया।

लगभग दो सप्ताह वाद की वात है। मै एक और अदालत मे वैठा था—यह थी श्री जस्टिस चेमियर और श्री जस्टिस पिग्गट की अदालत। दोनो वडे पुराने और अनुभवी जज थे और मैंने सुना कि पेशकार ने इसी अपील की पेशी की आवाज दी। फौरन ही मेरे कान खडे हो गए। सरकारी वकील श्री मैलकमसन खड़े हुए और वडे सहज स्वर मे वोले :

"श्रीमान्, कही कोई भूल हुई जान पड़ती है। ऐसा लगता है कि गलती से यह मुकदमा आपके सामने पेश हो गया है। अदालत न० २ के सामने इसपर पूरी तरह वहस हो चुकी है और अव सिर्फ दण्ड के निर्णय का प्रश्न शेष है। समय वचाने की दृष्टि से क्या श्रीमान्, यह आदेश कर सकेंगे कि इस मुकदमे को उस अदालत के सामने पेश कर दिया जाय ?"

ज० चैमियर ने मि० मैलकमसन से कहा, "क्या यह तरीका नही है कि जव एक अदालत दंड-वृद्धि का नोटिस जारी करती है तो आखिरी फैसले के लिए मुकदमा दूसरी अदालत मे पेश किया जाता है ?"

मैलकमसन वोले, "नही जनाव, ऐसा कोई तरीका या रीति नही है। हर रोज ऐसा होता है। वही अदालत नोटिस जारी करती है और वही अतिम निर्णय भी सुनाती है।"

चेमियर वोले, "अगर ऐसा नही है तो मै समझता हूँ कि ऐसा होना चाहिए। खैर, जो कुछ हो चुका, उसे छोडिए। अव तो मुकदमा हमारे सामने पेश हो गया है। हम ही इसे सुनेगे और इसका फैसला करेगे।"

विद्वान जजो ने अपील सुनी और गवाहियों को भी देख गए। तथ्य भी थोडे ही थे और गवाहियाँ भी वहुत थोड़ी थी। एक घंटे के अदर-अंदर उन्होंने सव यह फैसला लिखाया कि अभियुक्तो के विरुद्ध हत्या का अपराध सावित नही होता और वे उन्हे रिहा करने की आज्ञा देते हैं।

यह सव मेरी उपस्थिति में हुआ था और मेरे कानो ने इस फैसले

को सुना था। न्याय-सचिवी इस बुद्धिमानी पर मैं आश्चर्यचकित था और साथ ही मैंने दो मनुष्यों की जानों से होते खिलवाड को भी अपनी आँखों से देखा था। कई दिन तक इस फैसले का मुझपर असर रहा। इसके अलावा जब मैंने खुद भी फौजदारी का काम आरंभ किया तो जिन मुकदमों में सामान्य कैद की सजा होती थी, उनकी अपील करने में मैं सकोच करता था, क्योंकि सजा में वढती का सवाल मुझे सदा परेशान कर देता था। लेकिन इतने पर भी एक ऐसे ही मामले के खिलाफ मुझे अपील करनी पड़ी और मुझे वैसी ही यातना में से निकलना पडा।

एक दिन शाम के वक्त एक डाक्टर मेरे दफ्तर में आया। वह प्रांतीय चिकित्सा-विभाग में नौकर था। बड़ा खूबसूरत जवान था। उसने बताया कि हमारे परिवार के पास कुछ जमीन है। इन जमीनों के काश्तकारों के साथ पिताजी का कुछ झगडा हो गया था और उन्होंने गोली चला कर उनमें से एक को घायल कर दिया। इस अपराध में उन्हें तीन वरस कैद की सजा मिली है। इतना कहकर उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं उसके पिता की अपील कर सकूंगा? जैसे ही मैंने सजा सुनी, मैंने पूछा "कोई मरा?" उसने उत्तर दिया, "घायल आदमी मर गया।" पहला खयाल जो मुझे आया, और जिसे मैंने प्रकट भी किया, था कि इस अपील के लिए इकार कर दूगा। जिस गोली चलाने का नतीजा एक जान की क्षति हो, वह हत्या ही तो है और तीन वरस की कैद की सजा तो बहुत ज्यादा नही है। लेकिन वह बडी आशाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखता रहा और बोला कि आप कम-से-कम सैशन जज के फैसले को तो पढ लें। मैंने पढा। यह साफ था कि सैशन जज जिस नतीजे पर पहुँचे थे, उससे उन्हें साफ रिहा कर देना चाहिए था। अभियुक्त ने आत्मरक्षा के अधिकार की सफाई दी थी। कानून इस बारे में साफ कहता है कि अगर जान पर बन आये या जान का खतरा हो तो आप शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं, लेकिन प्रयुक्त शक्ति परिस्थिति की अनिवार्यताओं से बढकर नहीं होनी चाहिए। जज इस नतीजे पर पहुँचा था कि अभियुक्त अपने ऐसे काश्तकारों में घिर गया था, जिनके पास लाठियाँ थी

और जो उसे मार डालने की धमकियाँ दे रहे थे । ऐसी दशा मे केवल उपाय अभियुक्त अपनी बंदूक के इस्तेमाल से ही अपनी रक्षा कर सकता था, क्योकि उस समय उसके हाथ मे दूसरी कोई वस्तु नही थी । लेकिन गोली दागते हुए उसने सब महत्वपूर्ण अगो की उपेक्षा की और टागो के निचले भाग को अपना निशाना बनाया । बहुत सभव था कि यह घाव जान-लेवा भी साबित न होता, बशर्ते कि घायल आदमी थानेदार के घटनास्थल पर पहुँचने और स्वय उस जगह को देख लेने तक महज मूर्खतावश पुलिस कांस्टेबल के साथ अस्पताल जाने से इंकार न कर देता। ऐसा होने मे १२ घटे से भी अधिक का समय लग गया और वह आदमी केवल रक्त बहते रहने के कारण ही मर गया। इस आधार पर अभियुक्त की यह सफाई कि उसने आत्म-रक्षा मे ही गोली चलाई थी, कानून की नजर मे न्याय्य थी; लेकिन सैशन जज ने यह स्वीकार करते हुए कि परिस्थिति-वश निजी रक्षा का अधिकार उत्पन्न हो गया था, अपेक्षाकृत तर्कहीनता के साथ लिखा था कि, गोली दागते हुए अभियुक्त ने उचित सावधानी नही बरती और इसलिए वह निजी रक्षा के अपने अधिकार को लाघ गया। तदनुसार वह हत्या के अपराध से कम का दोषी तो अवश्य है ही। फलस्वरूप उसे तीन वर्ष की कैद का दड दे दिया। मेरी राय में यह फैसला टिकनेवाला नही था । मै सहमत हो गया और मैने अपील दायर कर दी।

मई १९३४ की गर्मियो की छुट्टियो से पहले यह श्री जस्टिस उमाशकर बाजपेयी के सामने पेश हुई । उधर मृतक के भाई की ओर से, वकील ने सजा बढाने की प्रार्थना करते हुए दर्खास्त दी थी। अपील के प्रारभ में ही मैने तथ्यो को प्रकट कर दिया और माग की कि विद्वान सैशन जज को निजी जानकारी के आधार पर ही अभियुक्त को बरी कर देने का आदेश दे देना चाहिए था। मैने सारा फैसला पढा, जो बहुत लबा था। थोडे-से विवाद के बाद विद्वान जज ने मेरी माग के साथ सहमति प्रकट की और सरकारी वकील को जवाब देने के लिए कहा। सराकरी वकील ने विद्वान जज से प्रार्थना की कि वह मिसरीलाल चतुर्वेदी

को इस्तगासे का मामला पेश करने की इजाजत दे, जिन्होंने सजा बढ़ाने की दर्ख्वास्त का पूरी तरह से अध्ययन कर रखा है। इस पर श्री चतुर्वेदी ने मुकदमे पर बहस की। उन्होंने बड़ी योग्यता और चतुराई के साथ जवाब दिया और यह कहते हुए मेरे पक्ष को एकदम पलट दिया कि सैशन जज की सारी जानकारी गलत थी। इस बात का यहां प्रश्न ही नहीं कि अभियुक्त को उद्धत काश्तकारों के जमघट ने घेर लिया था और उसके मारे जाने का खतरा हो गया था। वस्तुस्थिति यह है कि पोस्ट-मार्टम-जांच, घाव की दिशा तथा अन्य गवाहियों से यह स्पष्ट है कि काफी फासले पर से मृतक पर पीठ की दिशा से संभवतः तब गोली चलाई गई जबकि वह अभियुक्त से दूर भागा जा रहा था। जस्टिस बाजपेयी इस तर्क से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कागजात को गौर से देखा और साफ कहा कि मेरे खयाल में मि० चतुर्वेदी सही कहते हैं।

दोपहर के भोजन का वक्त होने को था और वह मुझसे बोले, "डा० काटजू, यह तो बड़ा गंभीर मामला है। मैं समझता हूँ कि श्री चतुर्वेदी ने इसकी बिलकुल सही बात पकड़ ली है और ऐसा मान लेने पर आप जानते हैं कि जान के बदले जान का सवाल होगा। मैं इस सजा को इसी तरह रहने की मंजूरी नहीं दे सकता।" मैं तो सन्न रह गया मेरी आंखों के सामने श्री आल्स्टन की मूर्त्ति आ गई और मन-ही-मन मैं इस अपील की सहमति के लिए अपने को कोसने लगा। आध-घंटे के लिए अदालत उठी। अभियुक्त भी अदालत में हाजिर था। बड़ा विशालकाय व्यक्ति था वह। मैं उसे एक ओर ले गया और उसे बताया कि बिलकुल आशा नहीं दिखाई देती। इसके अलावा जहाँ तक मेरा खयाल है अगर तीन ही बरस में छुटकारा हो जाय तो अपने को बड़ा भाग्यशाली समझो। मैंने यह भी कहा कि जज तो सजा की बढ़ती के लिए नोटिस जारी करने पर तुला हुआ जान पड़ता है, और क्या वह इसका सामना करने को तैयार होगा। अगर तुम चाहो तो मैं जज को यथाशक्ति नरम करने की कोशिश करूँगा और उनसे अनुरोध करूंगा कि अपील को खारिज कर दिया जाय एवं अधिक कार्रवाई भी न की

जाय, लेकिन इसमें खतरा भी हो सकता है। अभियुक्त की वह शक्ल आज भी मेरे सामने आ जाती है। वह कितना भयभीत था और कुछ रुककर वह बोला—"जो-कुछ मेरे लिए अच्छा लगे, वह आप करें। मैं तीन वरस की कैद काटने को तैयार हूँ। मेरे भाग्य में यही है।"

इसके थोडी देर वाद अदालत फिर से बैठी और श्री जस्टिस वाजपेयी मुझसे वोले--"डा० काटजू, खाने की छुट्टी के दौरान में इस मामले पर विचार करता रहा हूँ और अव मैंने निश्चय कर लिया है कि दंड-वृद्धि का नोटिस जारी होना चाहिए। इस सजा को मैं इस रूप में नही छोड़ सकता। यह तो वहुत ही थोड़ी है।" मैंने यह कहकर उन्हे भरमाने की चेष्टा की कि दो दिन तो पहले ही इस मामले ने ले लिये हैं और ऐसा नोटिस जारी करने में व्यर्थ ही सार्वजनिक समय की वर्वादी होगी। अगर इस मामले को जहाँ-का-तहाँ ही रहने दिया जाय तो क्या इतने से ही न्याय की पूर्त्ति नही हो जायगी? लेकिन जस्टिस वाजपेयी अपनी राय पर अटल थे और उन्होने अपनी आज्ञा लिखा दी। असीम काकुल की-सी मेरी दशा हो गई और लगा कि उन्होंने मेरी इस निराशापूर्ण दशा को भांप लिया। वे वोले–"डा० काटजू, सामान्य ढंग से यह मुकदमा छुट्टियों के दौरान में लगभग ६ सप्ताह वाद फिरसे मेरे सामने पेश होता, लेकिन इससे आपकी छुट्टियो के दिन वर्वाद हो जायगे। इसलिए, मै अपने आदेशमें यह लिखे देता हूँ कि यह मामला उन दो जजों की वेंच के सामने पेश किया जाय, जिसका सदस्य मैं नही हूँ। इससे आपकी छुट्टियो का समय वर्वाद नही होगा।"

इस कृपा के लिए मैंने उनका धन्यवाद किया। इससे पूर्व जीवन में मुझे ऐसा भीपण अनुभव कभी नही हुआ था और मैं यह मानता हूँ कि यद्यपि मैं इलाहावाद से पुरी तो चला गया तथापि दंड-वृद्धि के नोटिस की याद के कारण मेरी छुट्टियो के वहुत-से दिन परेशानी में निकले।

अगस्त मे अदालत खुलने पर जस्टिस हैरिस और जस्टिस रिछपाल सिंह के सामने यह अपील पेश हुई और मेरे खिलाफ थे वही

सरकारी वकील और श्री चतुर्वेदी। उन्हीं आधारों पर मैंने मामला पेश किया और तथ्यों को प्रकट करने के बाद अंत में विद्वान जजों के सामने फैसला रख दिया। जैसे ही मैंने बोलना समाप्त किया, श्री जस्टिस हैरिस बोले—"बेशक, यह सब गलत है। इसमें सज़ा देना ही ग़लत है। यह मुकदमा हमारे सामने कैसे आया? इसमें तो केवल तीन ही बरस की सज़ा है। इसे तो किसी अकेले जज के सामने ही पेश होना चाहिए था।"

मैंने कुछ-कुछ चतुराई के साथ उत्तर दिया कि जस्टिस श्री बाजपेयी ने यह ख़याल करके दंड-वृद्धि का नोटिस जारी किया था कि अगर दोनों जज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सज़ा देना ठीक है तो संभव है, उन्हें यह सज़ा बहुत ही कम जंचे। लेकिन विद्वान जज तो बहुत ही असंतुष्ट थे और बोले, "यह मामला बिल्कुल सीधा है। इसमें सज़ा देना सर्वथा गलत है।" इतना सुनते ही मैं तत्काल बैठ गया। अभियुक्त को साफ़ बरी कर दिया गया।

: १४ :

मुवक्किल का भाग्य

अपनी वकालत के पिछले ४० बरसों पर जब मैं निगाह डालता हूँ तो मुझे इस अनिश्चय के बारे में बेहद आश्चर्य होता है, जो किन्हीं मामलों के निर्णय के साथ सदा जुड़ा रहता है और जिसपर एक व्यक्ति का जीवन, स्वाधीनता या संपत्ति निर्भर होती है। इन पंक्तियों को लिखते समय दर्जनों ऐसे मामले याद हो आते हैं, जिनमें अदालती निर्णय अतत. एक बहुत ही क्षुद्र वातावरण द्वारा प्रभावित हो गया, जिसे वकील तक भी महत्वपूर्ण नहीं समझते थे। बहुधा कैदी का भाग्य और असभावित घटना ही उसे स्वाधीनता दिलाने का कारण बन जाते है। ऐसा ही एक मामला विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है, जिसमें अपील की पेशी के दौरान में एक असाधारण और कल्पनातीत घटना-क्रम उपस्थित

हो गया। वह मामला इस प्रकार है—

इलाहाबाद नगर को बड़े योजना-बद्ध तरीके से बसाया गया है। इसका क्षेत्रफल बहुत लम्बा-चौड़ा है और वह सिविल लाइन्स तथा छावनी-सहित अनेक भागों मे बंटा हुआ है। लम्बी-चौडी और छायादार गलियो तथा सड़कों का सुन्दर जाल बिछा हुआ है। इलाहाबाद रेलवे स्टेशन के उत्तर की ओर निकलने पर आप सिविल लाइन्स की एक मुख्य सड़क पर आ जाते है। पास ही पुलिस-चौकी है, उसके बाद गिर्जा है और मील भर के फासले पर हाईकोर्ट है और उसकी पूर्वी सीमा पर पश्चिम की दिशा मे सिविल लाइन्स का विस्तार है।

एक दिन प्रातः समय सादा पोशाक मे दो सिपाही थाने के प्रवेश-द्वार पर खड़े थे। उन्होने एक नौजवान को साइकल पर निकलते हुए देखा। उनमे से एक ने उसे बहुत गौर से देखा और अपने साथी से बोला—

"बाइसिकल पर जाते हुए उस आदमी को तुमने देखा ?"

"क्यो क्या बात है ?" उसने पूछा।

"वह एम० जे० है, मशहूर क्रातिकारी। वह फरार है। मुझे इसका पक्का यकीन है, और हमे उसकी बहुत जरूरत है।"

"तुम उसे कैसे जानते हो ?"

"वह यूनिवर्सिटी का छात्र है, और हम दोनो स्कूल मे साथ-साथ पढे है। मुझे इस बारे में तनिक भी संदेह नही। यह वही है।"

इसपर इन दोनो ने, जिनके पास अपनी साइकिले थी, तुरत एम० जे० क्रातिकारी का पीछा करना शुरू कर दिया।

कुछ ही मिनटों की दौड के बाद वे हाईकोर्ट के सामने उसके समीप जा पहुँचे, जहां कहा जाता है कि एम० जे० फौरन रुक गया और अपनी साइकिल से उतर कर ऊंचे स्वह में बोला, "तुम मेरा पीछा क्यो कर रहे हो ? मुझे क्यो नही जाने देते ?" और जब उसने देखा कि वे पीछा नही छोड़ते तो उसने कमीज की जेब से पिस्तौल निकाली और उनमें से

एक की टाग पर गोली चलाई। वह उस समय कमीज और निकर पहने हुए था। इस प्रकार थोड़े समय के लिए पीछा करने का अन्त हो गया।

अब एम० जे० अपनी साइकिल पर सवार होकर चल पड़ा; लेकिन वह साइकिल अच्छी नही थी। उसमें पकचर हो गया था। इसलिए उसने दौडना शुरू कर दिया। इधर खुफिया पुलिस के सिपाही ने अपने घायल साथी को किसी दूसरे के हवाले किया और वह भी उसके पीछे दौडा। इसके बाद इस सडक से उस सडक और उससे इसपर इस प्रकार काफी देर तक पीछा किया गया। तब, कहा जाता है कि एम०जे० एक सरकारी डाकबगले के अहाते में घुस गया और डर के मारे वह एक पाखाने मे जा छिपा।

इस बीच बहुत-से लोग जमा हो गए; लेकिन पाखाने मे जाते हुए हर कोई डरता था, क्योंकि एम० जे० की जेब मे पिस्तौल थी और प्रत्येक सशंक था कि न जाने कब क्या कर बैठे। इसलिए पुलिस-सिपाही ने डाकबगले को घेर लेने की सोची और वही उसने किया भी। उसने पुलिस सुपरिन्टेंडेंट को फोन किया कि सहायता के लिए पुलिस भेजी जाय। थोडी ही देर बाद पुलिस वहाँ पहुँच गई। इस बीच, एम० जे० पाखाने से बाहर निकला और सबकी नज़रो के सामने हाथ में पिस्तौल लिये दौडता हुआ मैदान पार चला गया।

चौहद्दी दीवार पर से उसने पिस्तौल फेंक दी और वह दीवार के दूसरी ओर फाद गया। सडक को पार करके वह एक और अहाते में चला गया, वहा चद ही मिनटो बाद, पीछा करनेवालो ने उसे गिरफ्तार कर लिया। लेकिन कितने आश्चर्य की बात थी! गिरफ्तार किया हुआ आदमी धोती और कुर्ता पहने था। कमीज और निकर जैसे जादू के ज़ोर से लोप हो गए थे।

एम० जे० की इन सारी दौड-धूप के विषय में स्पष्ट प्रमाण एवं स्वतत्र गवाहिया मौजूद थी। साथ के मकान मे जो प्रतिष्ठित व्यक्ति रहते थे, उन्होंने सौगध खाकर कहा कि मैंने एम० जे० को दीवार से

कूदते हुए अपनी आँखो से देखा था।

विशेषज्ञों ने बहुत सावधानी के साथ पिस्तौल की परीक्षा भी की और उनका मत था कि घायल सिपाही की टांग मे से जो गोली निकाली गई है, वह इसी पिस्तौल मे से छूटी थी।

अभियुक्त पर दो अपराध लगाए गए थे—हत्या करने की चेष्टा और विस्फोट-कानून के अधीन लाइसेंस-रहित पिस्तौल रखना। असेसरो-सहित जज की अदालत मे यह मुकदमा पेश हुआ। अभियुक्त की ओर से बहुत ही सरल तरीके की सफाई पेश की गई थी। उसने यह स्वीकार किया था कि वह फरार है और कई महीनो से गिरफ्तारी से बच रहा है। उसने यह भी कहा कि वह लोगो की निगाह से बचा हुआ छिपा था। उसने गोली चलाने के सबध मे इन्कार किया और कहा कि इस घटना के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नही। मै धोती-कुर्ता पहने हुए सड़क पर जा रहा था कि एकाएक पुलिस ने मुझे धर पकड़ा और यह झूठा मामला मेरे विरुद्ध खड़ा कर दिया। इस मामले में मै सर्वथा अनजान हू। उसने पाखाने मे और मैदान के उस पार जाने और दीवार फादने तक से इन्कार किया। उसने कहा कि पिस्तौल से भी मेरा कोई संबंध नही और न मैने उसे फेका था।

जूरी ने विस्फोट-कानून के अधीन उसे 'निरपराध' बताया। इसका आशय यह था कि अभियुक्त के कब्ज़े मे पिस्तौल नही थी। इस निष्कर्ष के आधार पर स्वभावतः यह परिणाम निकलता है कि वह खुफिया पुलिस के सिपाही पर गोली नही चला सकता था और असैसरो के रूप मे उन्होने यही कहा भी था।

सैशन जज की चाहे जो भी राय रही हो, पर वह बड़ी कठिनाई मे था। पिस्तौल-सबंधी अपराध के बारे मे जूरी के मत को अस्वीकार करने का उसे कोई कारण नही दिखाई देता था और ऐसी अवस्था में, एक जज के नाते वह भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि दूसरा अपराध भी निराधार हो जायगा। तदनुसार उसने अभियुक्त को बरी कर दिया।

इस रिहाई के विरुद्ध सरकार की ओर से हाईकोर्ट में अपील की गई। यह अपील हत्या करने की चेष्टा के अपराव के सवव में थी। मैं अभियुक्त की ओर से पेश हुआ था।

यह अपील दो विद्वान् जजो श्री मुल्ला और श्री यॉर्क के सामने पेश हुई। सरकारी वकील ने दो दिन तक वहस की और यह आभास हुआ कि जज निश्चित रूप से पुलिस के वयान को मंजूर कर लेंगे।

जब मुझे जवाव देने के लिए कहा गया तो मैंने इस कानूनी प्रश्न पर वोलना शुरू किया कि जिस शस्त्र के रखने के अपराव में अभियुक्त को हत्या करने की चेष्टा का दोषी ठहराया गया है, उसके अधीन वह दोषी करार नही दिया गया था और न ही उसके पास वह शस्त्र था। लेकिन मुझे लगा कि मैं अपने पक्ष को मज़बूती से पेश नही कर सका। जजो का यह दृष्टिकोण था कि दोनो अपराध अलग-अलग है और एक-दूसरे से स्वतत्र है। यह सभव था कि अभियुक्त दोषी न हो और इसलिए पिस्तौल रखने-सवधी अपराध मे बरी किया गया हो, किन्तु वह युक्ति प्रस्तुत अपील में हस्तक्षेप नही कर सकती।

अपील के पक्ष में मैंने वार-वार उन सव महत्वपूर्ण तथ्यो पर जोर दिया, जिनके बारे में कोई व्याख्या नही दी गई थी। वाइसिकल पर चढे हुए जिस आदमी ने खुफिया पुलिस के आदमी को गोली मारी थी, उसने कमीज और निकर पहन रखी थी और जिस आदमी को गिरफ्तार किया गया था, वह धोती और कुर्ता पहने हुए था। पुलिस का इस सवध मे वहुत ही स्पष्ट प्रमाण था कि पाखाने के हर कोने की पूरी सावधानी के साथ खोज की जाने पर कमीज और निकर कही भी नही मिले। मैंने युक्ति दी कि कमीज और निकर का धोती और कुर्ते मे वदल जाना इस्तगासे के मामले को विगाड़ता है। यहां मुझे पुन: मानना होगा कि इससे भी मेरे पक्ष को कोई वल न मिला। जजो ने कहा कि प्रत्यक्ष गवाही वड़ी ही विश्वसनीय है। इसलिए उसपर अविश्वास नही किया जा सकता और वस्त्रो की अदला-

वदली भी किसी-न-किसी कारणवश होगी, जिसके वारे मे समुचित ध्यान नही दिया गया। उनका मत था—'सभव है, अभियुक्त ने कमीज के नीचे कुर्ता और निकर के नीचे धोती पहनी हो और कमीज और निकर को कही फेंक दिया गया होगा और उनके लिए उचित खोज न की गई हो।"

वहस करने में काफी वक्त लग गया था और मई के दिन होने के कारण गर्मी भी वड़ी थी। दोपहर के भोजन से पहले अचानक मैंने देखा कि दोनो जज आपस मे कुछ वात कर रहे हैं और जस्टिस यॉर्क मुझसे वोले—"डाक्टर काटजू, रिकार्ड मे अभियुक्त की गति के विषय मे जो नक्शा पेश किया गया है, उसे मेरे सहयोगी ठीक तरह से समझ नही सके। डाकवंगला पास ही तो है। हमारा मौके पर जाकर परीक्षा कर लेना अधिक लाभकारी होगा। हमारे ऐसा करने मे आपको कोई ऐतराज तो नही?"

पारिभापिक रूप मे इस मामले मे यह नया सवूत पेश करना था; लेकिन मेरा किसी प्रकार का ऐतराज उठाना सर्वथा खतरनाक सावित होता। इसलिए मैं फौरन ही सहमत हो गया। इसी प्रकार सरकारी वकील भी सहमत था। भोजन के वाद हम सव—दोनो जज, सरकारी वकील और मैं—डाकवगले के लिए रवाना हुए।

वड़ी भयंकर लू चल रही थी। डाकवगले के पास पहुचने ही वाले थे तो हम सव मोटर से उतर पड़े और हम रास्ते पर चलने लगे, जिस पर से डाकवगले के अहाते मे पाखाने तक अभियुक्त का पीछा किया गया था। हम वहाँ पहुँचे और देखा कि वह लोहे की चादरों की वनी हुई एक छोटी-सी कोठरी थी।

पाखाने से हम मैदान में गए और उसके वाद उस दीवार से सटे भाग पर पहुचे, जहाँ से अभियुक्त के उस पार फादने की वात कही गई थी। दीवार के साथ-साथ इतनी घनी और ऊची झाड़ियाँ थी कि उनमे जरा भी फासला नहीं था और यहाँ तक कि एक चूहे के भी निकल

सकने का मार्ग नही था । शरीरिक रूप में किसी के लिए भी इनके ऊपर से होकर जाना असम्भव था ।

जैसे ही मैंने यह देखा, मैंने ख़याल किया कि अब मामले का अंत हो गया है और मैंने अपने मुवक्किल के भाग्य की सराहना की। मैंने देखा कि जज भी बहुत ही गंभीरतापूर्वक देख रहे हैं और बड़े व्यग्र हैं। मैंने धीरे से उनमेंसे एक से कहा, "जनाब, इस झाड़ी का मुलाहिज़ा फरमाइये ।" वे चुप रहे, मैं भी और कुछ न बोला । सभी चुप थे। हम लोग हाईकोर्ट लौट आए और जजो ने आसन ग्रहण किया। उसके बाद उनमे से एक ने कहा, "डाक्टर काटजू, अपनी बहस जारी कीजिए।" मैंने जवाब दिया, "जनाब, मुझे और कुछ नही कहना है। मेरे मुवक्किल का यह अहोभाग्य है कि जनाब को इस मौके की स्वयं परीक्षा करने का ख़याल हो आया । इस मामले की असत्यता कदापि इतनी सफाई के साथ प्रकट नही हो सकती थी।" इतना कहकर मैं बैठ गया ।

इसके बाद सरकारी वकील की बारी आई और जजो ने उससे कहा, "इन झाड़ियो के बारे में आपको क्या कहना है ?" वहाँ कहने को कुछ भी नही था। निर्णय सुरक्षित रखा गया और कुछ दिनो के बाद फैसला सुनाया गया, जिसमे विद्वान जजो ने कहा कि उनके ख़याल में जहा यह मामला बहुत ही संदेहास्पद और सच भी हो सकता है वहा इस प्रमाण के आधार पर वह इतना स्पष्ट झूठ था कि कोई सजा नही दी जा सकती थी ।

· १५ ·

आत्मसम्मान

एक मित्र के साथ वकालत के जमाने की चर्चा करते हुए अचानक मुझे एक मुकदमे की याद हो आई, जो एक पुलिस-अधिकारी के असाधारण अवस्थाओ मे मारे जाने के विषय मे चला था। यह कहानी लगभग २५–३०

साल पहले की है और यह दुर्घटना इतनी दिलचस्प थी कि मैं उसे भूल नही सका।

उत्तर-प्रदेश मे वांदा एक वहुत ही पिछड़ा हुआ ज़िला है। जलवायु और वरती की वेहद शुष्कता के कारण वहाँ के किसान वहुत मेहनती, सहनशील और मजवूत होते है। उस जिले के एक थाने में एक वार यह रिपोर्ट की गई कि अमुक नाम के व्यक्ति ने शिकायत करनेवाले की वच्ची के सोने के झुमके और नथनी वलपूर्वक उतार कर छीन लिये है। उस थाने का दारोगा एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर आवश्यक जाच के लिए उस गांव में गया। शिकायती से पूछ-ताछ करने तथा अन्य जांच-पडताल से उसे संदेह हुआ कि यह रिपोर्ट झूठी थी और निराधार आरोप लगा कर अभियुक्त को फासने का जाल रचा गया था। उसे यह भी सूचना मिली कि शिकायती ने वस्तुत. खुद ही उन सोने के जेवरो को उतार लिया था और अपने पड़ोसी के यहाँ उन्हे छिपा दिया था। तदनुसार थानेदार तत्काल संबंधित जाच के लिए उस पड़ोसी के यहाँ पहुँचा। घर का मालिक उस समय घर मे नही था। लेकिन वह रुका नही और सिपाही तथा गाव के चौकीदार के साथ घर के भीतरी आगन मे जा पहुँचा। जाड़ो के दिन थे। आगन में उसने देखा कि उस आदमी की पत्नी अनाज वीन रही है, जिससे वह पूछ-ताछ करना चाहता था। व्राह्मण जाति की इस स्त्री ने जव इन अपरिचितो को इस तरह घर में प्रवेश करते हुए देखा तो वह वहुत ही डरी और उसने घूघट काढ़ लिया। इसपर थानेदार ने कड़क कर उससे कहा कि वह वुंदे और नथनी कहाँ है, उन्हे फौरन पेश करो। वह चुप रही और थानेदार वार-वार ऊँचे स्वर मे यही कहता रहा। आखिर उसने कहा कि उसे इस विपय मे कुछ भी पता नही। उसका आदमी गांव के कुंए से पानी लेने गया है। वह आने ही वाला है और उसी से जांच-पड़ताल की जाय; लेकिन पता नही कैसे थानेदार इससे और शकित हो उठा और उसने सोचा कि आदमी के वजाय इस औरत से उन जेवरों को हासिल करना आसान होगा। इसलिए उसने उसे धमकाया और संभवत. उसे गाली भी दी। स्वभावतः इससे

वात वढ गई। वह औरत चिल्लाई और उनका देवर परमनुख, जो साथ के मकान में रहता था, इस हो-हल्ले को सुनकर घटनास्थल पर जा पहुँचा। उसने देखा कि थानेदार डांट रहा है और हाथ मे वेंत उठा कर उसकी भाभी को पीटने की धमकी दे रहा है। उसने वडी नम्रतापूर्वक शाति रखने को कहा और वोला—"दारोगा जी, आप यह क्या कर रहे है? आप इस तरह इस औरत को क्यो वेइज्जत कर रहे है? कृपा कर वाहर आइये कुर्सी पर वैठिये। हम सब तो आपके सेवक है। जल्दी ही मेरा भाई आ जाता है और आप उसीसे सारी जाच-पड़ताल करे। घर के जनानखाने मे जाकर आप उस औरत को अपमानित कर रहे है। ऐसा करना तो आपको शोभा नही देता।" इस पर वह और भी ज्यादा आपेसे वाहर हो गया। वहुत ही गुस्से मे आ जाने से उसे अपनी अधिकार-शक्ति पर हमले का खयाल हुआ। उसे लगा कि परमनुख ने हस्तक्षेप करके वडी भारी वेहूदगी की है। इसलिए उसने औरत को तो छोड दिया और परमसुख को अवज्ञा का अपराधी समझ कर डाटा। और वुरी तरह गालिया दी। वादा का देहाती इस प्रकार सहज ही गालिया सुन नही सकता था। उसने तत्काल जवाव दिया—"दारोगाजी, कृपाकर अव और गालिया न दीजिए। कृपया होश में रहिए। यह अच्छी वात नही है कि आप गालिया देते जा रहे हैं। आखिर मैंने किया क्या है?" इसने दारोगाजी और भी गुस्सा हो गए और उन्होंने परमसुख को पहले से भी ज्यादा गालिया दी। इसके साथ ही थानेदार ने कडक कर सिपाही को आज्ञा दी कि वह परमसुख के डडे लगावे। इस पर परमसुख ने गाव के चौकीदार के हाथ का छोटा-सा डंडा छीन लिया और झपट कर दारोगाजी पर एक हाथ जमा दिया। दुर्भाग्यवश यह चोट दारोगा के सिर पर पडी और ऐसे मर्म-स्थल पर कि थानेदार गिर पडा और वही वेहोश हो गया। इसके वाद दस घटे के अदर-अदर वह मर गया।

इस भयकर घटना का समाचार आग की तरह सारे गाँव मे फैल गया।

'फौरन ही यह सूचना थाने और जिला-केन्द्र मे पहुँचाई गई, । थोड़ी देर में ही छ. थानेदारो ने वहुत-से सिपाहियों के साथ गाव पर हमला वोल दिया। उन्होने परमसुख और उसके भाई के घर की एक-एक वस्तु लूट ली और कई दिन तक वे उस गाँव मे पड़े रहे। गाॅव मे भीषण आतक छा गया। जिला-अधिकारी भी भयकर रूप मे आपे-से वाहर हो गए। वांदा जिले के इतिहास मे ऐसी घटना कभी नही हुई थी। एक थानेदार को पीटना और इस ढग से मार डालना वडी ही अगोभनीय था। वाकायदा मैजिस्ट्रेट ने जांच की और परमसुख को सैशन के सिपुर्द कर दिया गया। मुकदमे की पेशी पर परमसुख की ओर से निजी सफाई के अधिकार की माग 'पेश की गई। इस आवेदन मे कहा गया कि उसकी मशा थानेदार को मार डालने की नही थी; लेकिन आदि से अंत तक थानेदार का आचरण कानून-विरुद्ध था। उसे घर में दाखिल होने और औरत को गालिया देने का कोई अधिकार नही था और उसे परमसुख को भी पीटने की आज्ञा देने का हक नही था।

जज महोदय प्रांतीय न्यायविभाग के सीनियर सदस्य थे और सैशन जज के रूप मे उन्होने सभवत. पहली ही बार स्थानापन्नता का पद ग्रहण किया था। जहाँ तक मै समझता हुँ, उन्हे सफाई मे कुछ वल दिखाई दिया। 'फैसला सुरक्षित रखा गया। लेकिन मुझे शक है कि सरकारी वकील ने इस सवध मे जिला मैजिस्ट्रेट तथा ज्वाइट मैजिस्ट्रैट को, जो अगरेज अफसर थे, सूचना दी होगी कि सभवत यह फैसला इस्तगासे के खिलाफ जाय और अभियुक्त वरी हो जाय। ज्वाइट मैजिस्ट्रैट नौजवान था और अभी नया-ही-नया इडियन सिविल सर्विस में भरती हुआ था। वह वड़ा जल्दवाज था। इस घटना से वह सतुलन खो वैठा और अभियुक्त के वरी होने की सभावना तो उसे और भी असहनीय लगी। वह सैशन जज से पहले कभी नही मिला था; किंतु इस सवध मे उसने वहुत ही असामान्य रूप मे आचरण किया। अभी फैसला सुनाया नहीं गया था कि एक दिन सवेरे ही वह जज के मकान पर गया। जज का अर्दली साहव को आया

देखकर बहुत हैरान हुआ और भागा-भागा सूचना देने भीतर गया। जज साहब आये और ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट ने बड़ी तेजी से उनसे कहा, "मैंने सुना है कि आप परमसुख को बरी कर रहे हैं। यह कैसे हो सकता है? दरअसल इस आदमी ने थानेदार की हत्या की है। आप उसे कैसे बरी कर सकते हैं? उसे सजा जरूर दी जानी चाहिए, चाहे जो भी सजा आप चाहें, दें, लेकिन बरी तो करना ही नहीं चाहिए।" इस तरीके से जज महोदय खुद भी बड़े विचलित हुए। वह सादे मिजाज के आदमी थे और अंगरेज अफसरों के इस ढंग से पेश आने के आदी नहीं थे। लेकिन उन्होंने साहस किया और कहा कि यह अदालत का मामला है और अगर इस बारे में कुछ कहने की जरूरत हो तो उसकी विधि यह है कि सरकारी वकील अदालत में पेश होकर अपनी बात कहे। इससे ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और भी उत्तेजित हुआ और उसने कई अंट-संट बातें कीं और चलता बना। जज महोदय को इस बात का श्रेय देना ही होगा कि वह, इस घटना के कारण, उनके खयाल में जो सही था, उसे करने से बाज न आये।

आखिर एक दिन उन्होंने फैसला सुना दिया और अभियुक्त को बरी कर दिया गया। लेकिन इस फैसले की उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी। सेशन जज की बजाय वह शेष नौकरी-काल में दीवानी के ही जज रहे। कई बाद के आनेवाले उनसे आगे निकल गए, उनकी तरक्कियाँ हो गईं, परंतु वह उसी स्थान पर रहे और आखिरकार समय से पहले ही रिटायर हुए।

अधिकारी इस फैसले को ऐसे ही नहीं छोड़ना चाहते थे। जिला मैजिस्ट्रेट ने अपने डिवीजन के कमिश्नर को इस रिहाई के विरुद्ध अपील करने के लिए लिखा। उसने पत्र में लिखा था (जो मैंने बाद में पढ़ा) कि एक पुलिस-अधिकारी की हत्या में अपराधी को इस प्रकार बरी कर देने से सारे प्रशासन का अंत हो जायगा और वह अपने जिले में शांति और शासन-व्यवस्था के लिए जिम्मेदार नहीं होंगे। इसलिए प्रशासन-संबंधी दृष्टि से ऐसे मामलों में सजा देना अत्यावश्यक है। कमिश्नर ने जिला मैजिस्ट्रेट के पत्र का समर्थन करते हुए इस प्रस्ताव को सरकार के पास भेजा।

तदनुसार यह प्रस्ताव सरकारी वकील के पास कानूनी राय के लिए भेजा गया और उसके बाद वह न्याय-विभाग के सचिव के पास पहुचा। उन दिनो इलाहाबाद हाईकोर्ट मे सरकारी वकील एक अगरेज बैरिस्टर थे। वह फौजदारी में बहुत अनुभवी थे। उन्होंने सलाह दी कि अपील मे बहुत कामयाबी नही होगी। इसपर हाईकोर्ट मे इस अपील के जाने से जनता मे भी खलबली मचेगी और मृत पुलिस-अधिकारी के आचरण पर विपरीत टिप्पणियाँ होगी। यही खयाल न्याय-विभाग के सचिव का भी था। आखिरकार यह फाइल यू० पी० के गवर्नर सर मालकम हेली के पास गई। उन्होने अपने कानूनी सलाह-कारों की राय के खिलाफ अपील करने का आदेश दिया। उन्होने टिप्पणी की कि ऐसे फैसले को मंजूर करना सभव नही।

फलतः सरकारी वकील ने हाईकोर्ट मे अपील दायर कर दी और हाई-कोर्ट मे परमसुख की ओर से मुझे पेश किया गया। यह अपील दो अगरेज जजो की अदालत में लगी। पेशी से एक या दो दिन पहले परमसुख मेरे यहा आया और उसने अपील के समय अदालत मे हाजिर रहने की स्वीकृति के लिए दर्ख्वास्त देने को कहा। मैंने उस आदमी को देखा, लबा-चौड़ा कद, चौडी छाती और पहलवान-सा दिखाई पडता था। उसे देखकर वस्तुतः मुझे इस बात का आश्चर्य नही रहा कि ऐसे दैत्याकार व्यक्ति के एक ही वार से बेचारा थानेदार जिंदा कैसे रह सकता था! मैंने कहा, "अगर जजो ने तुम्हारी सूरत भी देख ली तो परमात्मा ही रक्षक है। तुम्हें जरूर ही सजा हो जायगी। तुम्हे कोई भी बचा नही सकेगा। इसलिए परमात्मा के नाम पर हाईकोर्ट ही क्या, इलाहाबाद तक मे न आना; क्योकि सभव है जज लोग तुम्हे देखना चाहे और अगर तुम अदालत के अहाते या इलाहाबाद शहर मे भी हुए तो मुझे तुमको हाजिर करना पड़ जायगा। फिर होगा यह कि सारा मामला चौपट हो जायगा। अगर तुम इलाहाबाद मे न हुए तो देखने का प्रश्न आने पर मामला रफा-दफा भी हो सकेगा।"

जिस दिन हाईकोर्ट मे अपील पेश हुई और जब तथ्य उपस्थित किये गए तो जज सहजभाव से बोले "बहुत भयंकर मामला है। एक पुलिस-

अधिकारी की भी हत्या हो !" मैं यह कहे विना नही रहूँगा कि दोनो जज वहुत शांत थे और दोनो पूरी वात सुन कर ही न्याय करने के इच्छुक थे। उन्होंने कहा, "डा० काटजू, उस सारे मामले को पुन. हमारे सामने पेश कीजिए।" मैंने तत्परतापूर्वक कहा, "अच्छा जनाव !" और इसके वाद मैंने क्रमश. पूर्ववर्णित सारा दृश्य उनके सामने पेश किया। अत में मैंने कहा, "जनाव, यह तो वुंदेलखंड है, जहाँ ऐसी उत्तेजना पाकर एक पतगा तक भी हमला कर देता है। परमसुख की तो वात ही छोड़िए, वह तो फिर भी इसान था।"

जजो की समझ मे यह वात आ गई। अपील खारिज कर दी गई। इस प्रकार पुलिस-अफसर की हत्या का वदला नही लिया जा सका, लेकिन इसका वदला उस वेचारे जज से ही लिया गया।

: १६ :

लालटेन की मौजूदगी

दोपहर वाद का समय था। कलकत्ते मे हरिसन रोड पर से निकलते हुए एक देहाती युवक रुका और एक पुलिस के सिपाही से वाते करने लगा। उसने कहा,

"वह जो आदमी सामने मे आ रहा है, उसे देखते हो ?"

"हाँ", पुलिसवाले ने कहा, "कौन है वह ?"

"वह हत्यारा है, उसने एक आदमी की हत्या की है।"

"तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?"

"मेरे चाचा ने मुझे सूचना दी है। उनका खत इस वारे मे मेरे पास आया है।"

"कव ?"

"अभी थोड़े ही दिन पहले। इसने गिरजाशकर की हत्या की है।"

सिपाही ने यह सुना और वह तनिक व्यग्र हो उठा। एकाएक

परिस्थिति को वह समझा नही। लेकिन सूचना इतनी सही थी कि उसकी उपेक्षा नही की जा सकती थी। वह कथित हत्यारे की ओर बढ़ा जाकर उसके कधे पर हाथ रखा और तीनो लाल बाजार की पुलिस-चौकी मे जा पहुँचे। पुलिस के डिप्टी कमिश्नर को मामले की रिपोर्ट की गई। वह इस घटना को सुनकर बडा प्रभावित हुआ और उसने वह पत्र मागा। मुझे यह याद नही रहा कि वह पत्र उस समय उस युवक की जेब मे था अथवा वह उसे अपने निवासस्थान से बाद मे लाया। जो हो, वह पत्र पेश किया गया। उस पत्र मे चाचा ने अनेक घरेलू तथा सामाजिक समाचार देते हुए अत में लिखा था : कुछ दिन हुए गिरजाशकर को वाजपेयी (सदर्भ के लिए मैं यह नाम लिखता हूँ) ने मार डाला है। मृतक के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उन्होने लिखा था—"जाति का एक सिंह चला गया।" इसपर डिप्टी कमिश्नर ने वाजपेयी को हवालात मे भेज दिया और जिला भजना के सुपरिंटेंडेंट पुलिस से तार द्वारा पूछा कि क्या उन्हे अमुक आदमी की तलाश है? तत्काल जवाब आया, "हम उसकी तलाश मे हैं। उसे यहा भेज दीजिये।" तदनुसार वाजपेयी को पुलिस की हिफाजत मे उसके घरू जिले मे भेज दिया गया।

मुकदमे की पेशी के दौरान मे गवाहो से पता चला था कि यह हत्या पूर्वतः आयोजित, निश्चित और इरादे के साथ अकेले आदमी का कार्य था। न केवल यह कि वास्तविक हत्या के प्रत्यक्ष गवाह भी मौजूद थे, प्रत्युत हत्या के मुद्दे के बारे में सर्वथा निर्दोष गवाही भी उपस्थित की गई थी। इस संबध मे मालूम हुआ था कि वहां दो दल थे। एक दल का मुखिया मृतक गिरजाशकर था और दूसरे दल का मुखिया एक अन्य पडौसी ज़मीदार था, जिसका दाहिना हाथ—वाजपेयी—अभियुक्त था। दोनो दलो मे बहुत पुराना झगड़ा चला आ रहा था और सब जानते थे कि अभियुक्त वाजपेयी ही इस झगड़े की जड है, और वही अपने दल का सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य तथा सारी शरारत की बुनियाद है।

गिरजाशंकर की हत्या से छ मास पहले की बात है कि अभियुक्त वाजपेयी को एक दिन शाम के वक्त गांव से बाहर कुछ लोगों ने घेर लिया और आक्रमणकारियों ने उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया। उसे जो चोटें आई थी, उनसे साफ जाहिर था कि वह उसे निश्चित रूप में मार डालना चाहते थे। किन्तु वह मृत्यु से केवल इसलिए बच गया, क्योंकि उन्होंने समझा था कि वह मर गया है। वह बहुत ही हृष्ट-पुष्ट और असाधारण रूप में स्वस्थ था, इसलिए मौत के मुंह में जा कर भी वह बच निकला। अस्पताल में कई सप्ताह तक वह मृत्यु और जीवन के पालने में झूलता रहा; लेकिन अन्तत. अप्रत्याशित रूप मे स्वस्थ हो ही गया।

जैसे ही उसे होश हुआ, उसकी यह धारणा बन गई कि मृतक गिरजाशंकर के आदमियों ने ही उसे मार डालना चाहा था और वह उसके भाड़े के आदमियों का शिकार बना है। खूंखार स्वभाव का होने के कारण उसने इसका बदला लेने का दृढ निश्चय कर लिया। उसने अपने डाक्टरों, कम्पाउडरों, नर्सों और अपने मिलने वाले सभी लोगों से कहा कि जैसे भी हो, अस्पताल से छुट्टी पाकर सबसे पहले वह गिरिजाशंकर को मार डालने का काम करेगा। इस बीच उसने यह सुना कि उसके मालिक ने गिरजाशंकर के साथ सुलह कर ली है। इससे वह और भी आग-बबूला हो गया। वाजपेयी की धमकियों का पास-पड़ोस मे हर किसी को ज्ञान हो गया और गिरजाशंकर को भी इसका पता लगा। उसने अपनी सुरक्षा और हिफाजत के लिए प्रबंध किये। उसने दो बहुत तगड़े अंगरक्षक नियत किये। वे चौबीसो घंटे उसके साथ रहते थे और रात के समय उसकी खाट के दोनो ओर अपने-अपने बिस्तर लगाकर सोते थे।

गिरजाशंकर का घर उसके अपने ही अहाते मे था। घर के सामने ही एक बरामदा था और बरामदे मे दो द्वार थे, जो भीतर की ओर बड़े कमरे मे खुलते थे। उस समय गिरजाशंकर के परिवार मे एक तो वह खुद

था, एक उसका छोटा भाई था, जो बुखार मे पडा था और तीसरी उसकी माता थी। भीतर के कमरे मे उसकी माता और उसका बीमार भाई सोते थे। दोनो दरवाज़ो मे से एक को रात के समय थोड़ा-सा खुला रखा जाता था।

दोनो अंगरक्षको के बयान के अनुसार हत्या की रात को आधी रात के बाद वे बुरी तरह गलगलाने की आवाज सुनकर एकाएक जाग गए। वे उठे और अभियुक्त बाजपेयी को गिरजाशकर की खाट के सिरहाने देख कर डर गए। बाजपेयी के हाथ मे कुल्हाड़ी या दूसरा पैना हथियार था और गिरजाशकर का सिर प्राय. धड़ से अलग पडा हुआ था, और उस गहरे घाव मे से रक्त की धार बह रही थी। चारो ओर मृत्यु का-सा सन्नाटा था। बरामदे के उत्तरी छोर मे लटकी हुई एक छोटी-सी लालटेन की फीकी-सी रोशनी उस दृश्य पर पड़ रही थी। यद्यपि वह अधेरी रात थी तथापि अंगरक्षको ने लालटेन की रोशनी के सहारे बाजपेयी को पहचाना था। लेकिन पूर्व इसके कि वे कुछ कर सके, वह भाग गया।

उन्होने हो-हल्ला मचाया। बुढ़िया मा भी जाग गई थी। वह बरामदे में आ गई और उसने बाजपेयी को भागते हुए देखा और उसे पहचान लिया। बीमार भाई एक या दो मिनट के बाद बाहर आया। उसने भी हत्यारे को भागते हुए देखा लेकिन वह उसे पहचान नही सका। पन्द्रह मिनट के अन्दर-अन्दर सारा गाव जाग गया। लोग घटनास्थल पर दौडे आए और कुछ ने कहा कि उन्होंने हत्यारे को भागते हुए देखा है और उन्हे पक्का यकीन है कि वह बाजपेयी के सिवा दूसरा कोई नही था। आधे ही घटे के अन्दर-अन्दर पुलिस-थाने मे सारे मामले की रिपोर्ट दर्ज कराई गई और इस अपराध के अपराधी के रूप मे अभियुक्त का नाम लिखाया।

तत्काल ही बाजपेयी की तलाश की गई, लेकिन वह नही मिला। यह कहा गया कि उसने बडी सावधानी के साथ हत्या की योजना बनाई थी और यह अपराध करने के फौरन ही बाद वह दस मील की दूरी पर ब्रांच लाइन के एक छोटे से स्टेशन पर गया और वहा से उसने कलकत्ता के

लिए गाड़ी पकड़ी ।

इस्तगासे की गवाही सभी तरह से पूर्ण थी । बहुत-सी आंखोंदेखी गवाहियां थीं और इस मुद्दे के लिए भी बहुत मजबूत प्रमाण था । लेकिन इतने पर भी उसमें एक कमी रह गई थी और वह यह थी कि एक अनावश्यक झूठे प्रमाण के सहारे इस मामले को खड़ा करने की चेष्टा की गई थी । वह कमी इस असाधारण नाटकीय मामले में बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रकाश मे आई ।

मृतक गिरजाशंकर अपने जिले में बहुत ही सम्मानित व्यक्ति था । उसकी जाति के बहुत-से व्यक्ति जिले में प्रतिष्ठित माने जाते थे । उनमें से एक प्रमुख वकील थे, जिन्हें हम अतुलविहारी कहेंगे । वह जिला कचहरी में वकालत करते थे । हत्या के अगले दिन शव को पोस्टमार्टम की परीक्षा के लिए जिला-केन्द्र में लाया गया और परीक्षा के बाद उसे संबंधियों के हवाले कर दिया गया । दोपहर बाद गिरजाशंकर के छोटे भाई तथा अन्य रिश्तेदारों ने उसका दाह-संस्कार किया । सूर्यास्त के बाद मुर्दनी के सब लोग अतुलविहारी के मकान पर जमा हुए ।

बहुत-से लोग वहां हाजिर थे और उनमें कुछेक छोटे वकील थे, जो अतुलविहारी के दफ्तर में काम करते थे । स्वभावत. हर कोई उस समय हत्या के बारे में विचार कर रहा था । बीमार भाई, जो उस समय पूर्णतया विक्षिप्त और बेहाल अवस्था में था, अपने भाई की मृत्यु से शोकातुर आराम कुर्सी पर चित्त पड़ा था । "यह तो केवल दुर्भाग्य ही है", उसने कहा, "गिरजाशंकर कभी न मारा जाता, अगर सूमी (दो अगरक्षकों में से एक) उस रात छुट्टी पर न गया होता । अगर सूमी मौजूद होता तो यह हत्या कभी नहीं हो सकती थी ।" इतने पर भी सेशन जज की अदालत में इस सूमी ने गवाही दी थी कि वह हाजिर था और उसने वस्तुत वाजपेयी को गिरजाशंकर की खाट के सिरहाने खड़ा हुआ अपनी आंखों से देखा था ।

इसके बाद हुआ यह कि वहां उस हाजिर छोटे वकीलों में से एक को अभि-

युक्त वाजपेयी की तरफ से खडा किया गया और जब उसने मूसी को अपनी गवाही देते हुए सुना तो उसे बीमार भाई की उस शाम को कही हुई बात का खयाल हो आया। उसने अपने बड़े साथी वकीलो को इसकी सूचना दी। यह वहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य था। मूसी से जिरह की गई और उससे कहा गया कि उस शाम को वह गिरजाशंकर के घर में हाजिर नही था और उसने कुछ भी नही देखा। लेकिन उसने इससे बिलकुल इन्कार कर दिया। बीमार भाई ने भी इस बात से इन्कार कर दिया कि उसने अतुलविहारी के मकान पर इसके विपरीत कोई बात कही थी। इसपर वकील सफाई ने अदालत से निवेदन किया कि वह अतुलविहारी को वास्तविक घटना की जांच के लिए बुलाए। सेशन जज ने यह निवेदन मान लिया और अतुलविहारी को गवाही देने के लिए बुलाया गया। अतुलविहारी वहुत प्रतिष्ठित वकील माने जाते थे और उनकी गवाही को नितात सत्य स्वीकार किया गया। उन्होने उस रात मूसी की गैरहाजिरी के बारे मे बीमार भाई ने जो कहा था, सफाई के इस बयान की पुष्टि की। लेकिन साथ ही उन्होने कहा कि इस बयान पर किसीने भी कोई ध्यान नही दिया क्योकि वह आदमी वहुत बीमार था और शोक के मारे पूर्णतया विक्षिप्त था। श्री अतुल-विहारी ने यह भी कहा कि जितने लोग वहा जमा थे, सबको यह पक्का निश्चय था कि वाजपेयी ही वह असली आदमी है, जिसने यह अपराध किया था।

सेशन जज ने इस कथित प्रतिकूलता को वहुत महत्व नही दिया। उन्होने सबूत को पूर्णतया निर्णयात्मक खयाल किया। उन्होने दोनो अगरक्षको का विश्वास किया और यह उल्लेख करते हुए कि वह अतुलविहारी की गवाही के प्रत्येक शब्द को स्वीकार करते है; लेकिन उनका खयाल है कि कही-न-कही कुछ भूल अवश्य हुई है। सेशन जज ने अभियुक्त को तदनुसार मृत्यु-दड दे दिया।

मुझे अभियुक्त की ओर से अपील मे पेश किया गया। हमेशा की तरह मैं मिसल के अध्ययन मे जुट गया। अपने मुवक्किल को न तो तब और न कभी

बाद मे मैंने देखा। उसने अपील की सुनाई के समय भी हाजिर होने की दरख्वास्त नही दी थी, इसलिए अदालत मे भी मैंने उसे नही देखा था। उसकी बहन उसके मुकदमे की देखभाल कर रही थी। दूसरी ओर मृतक गिरजाशंकर के परिवार और संबंधी अभियुक्त बाजपेयी के दोष के विषय मे इस कारण असंदिग्ध थे कि उन्होंने सजा को बहाल कराने में सरकारी वकील की सहायता के लिए भारी खर्चे से एक बहुत बड़ा वकील तैनात किया था।

जितना ही अधिक मैंने मुकदमे के कागजों को पढा, उतना ही अधिक मैं व्यग्र हुआ। वस्तुतः बहुत लम्बी-चौड़ी बहस की गुंजाइश नही थी। केवल एक ही रास्ता नजर आता था कि वास्तविक मुद्दे के विषय में जो सबूत पेश किये गए है, उन्हे झूठा माना जाय और उनके बाद यह सुझाव दिया जाय कि इस्तगासे का मामला वस्तुतः एक मनगढन्त किस्सा है। इस बारे मे किसी को तनिक भी संदेह नही था कि अभियुक्त बाजपेयी के सिवा कोई दूसरा यह हत्या नहीं कर सकता था। इसलिए, यद्यपि किसी ने भी वास्तविक रूप मे हत्यारे को पहचाना नही था, तथापि हर कोई इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि हत्यारा वही था।

इस मामले को इस दृष्टि से देखें तो स्वतः ही यह निर्णय हो जाता है कि कथित प्रत्यक्षदर्शी बेमानी साबित हो जाते है। दोनो रक्षकों में से एक को हत्या से अगले दिन बीमार भाई के कथनानुसार अतुलबिहारी की गवाही के आधार पर गैर हाजिर करार दिया जा सकता है, और जहाँ तक दूसरे अंगरक्षक और माता का संबंध है, सारी बात रोशनी पर निर्भर करती है। यह माना गया है कि रात एकदम अंधेरी थी और यह कहा गया था कि जो रोशनी थी वह लालटेन की ही थी। यह 'लालटेन', जो वहाँ पूरे समय मौजूद थी, इस्तगासे के गवाहो द्वारा अभियुक्त को पहचानने के लिए ऊँची टंगी हुई जल रही थी। किसी ने भी इसकी व्यर्थता को नहीं भांपा लोग अक्सर अंधेरे मे अथवा बहुत धीमी रोशनी मे सोना पसंद करते है। इस घटना मे लालटेन का आविष्कार कोई बहुत कठिन काम नही था। इस्तगासे की कहानी की रचना को बड़े योजनापूर्ण ढंग से पेश किया गया

था। जिस योजना के अनुसार मूसी (अंगरक्षक) को घटनास्थल पर लाया जा सकता था। उसमे लालटेन का भी खयाल किया जा सकता था। वस्तुतः सारा मामला यही था।

अभियुक्त की रक्षा की केवल यही आशा थी कि इस मामले को यथासंभव हल्के तौर पर पेश किया जाय और इसकी गहराई में न पैठा जाय, क्योकि जितना ही गहराई में आप जायगे उतना ही अभियुक्त उसकी गहराई में डूवता जायगा।

जिस-दिन हाई-कोर्ट गर्मियो की छुट्टियों के लिए वद होनी थी ठीक उसी दिन इस मुकदमे की पेशी हुई। मैंने वहुत ही सामान्य रूप मे मामला पेश किया और सवूत के वारे मे कोई खास चर्चा नही की। मै मूसी और लालटेन की मौजूदगी पर ही केन्द्रीभूत रहा। मैंने वहस मे कहा कि इन अवस्थाओं मे पहचानना संभव नही था और यह भी सभव नही कि हत्यारा इस ढग से वहां खडा रहे और पकड़े जाने या पहचाने जाने का खतरा उठाए, जिस तरह गवाहो ने वयान दिया है।

सीनियर जज पते की वात को वहुत जल्द पकडते थे। जव कभी उनके सामने कोई नुक्ता कोरे ढग से पेश किया जाता तो वह उसे वहुत पसंद करते। मुझे महसूस हुआ कि दोनो जज मेरी वात से प्रभावित हुए हैं। मैं वैठ गया। मै समझता हूँ कि पूरे साठ मिनट भी मैंने नही लिये होगे। इसके वाद इस्तगासे के समर्थन के लिए सरकारी वकील की ओर से वह वड़े वकील खडे हुए। उन्हे लगा कि जज इस मामले को एकदम हल्का-सा खयाल करके कही अभियुक्त को वरी न कर दे। उन्होने जवाव मे कहा कि मैंने इस मामले को आवश्यकता से अधिक सरल समझा है। इसकी गुरुता के लिए सारे सवूत का भली प्रकार विश्लेपण करना आवश्यक है और इसमे लगभग तीन घटे लग जायगे। यह सुनकर विद्वान जज कुछ नाराज-से दिखाई दिये और सीनियर जज ने कहा, "अगर यह वात है तो अदालत के फिर वैठने तक मुकदमा स्थगित किया जाय।" उन्होने सभवत. यही खयाल किया होगा कि जिस फौजदारी मुकदमे के पक्ष-समर्थन के लिए तीन घटे

चाहिए, वह निश्चय ही भद्दा होगा ।

अदालतें बंद हो जाने पर मैं गर्मियों की छुट्टियों में काश्मीर चला गया और क्लर्क को आदेश कर दिया कि छुट्टियों में मैं तो पेशी पर हाजिर न हो सकूंगा, इसलिए इस अपील-संबंधी कागजात अभियुक्त की बहन को लौटा दें। लेकिन उसने वह कागज न लिये। वह बेहद रोई, चिल्लाई और फलत. मुझे अपील के लिए काश्मीर से आना पड़ा। लेकिन मेरे आने की वस्तुतः जरूरत भी नहीं थी। मुझे मालूम नहीं, यह कैसे और क्यों हुआ कि जब अदालत बैठी और इस्तगासे के वकील खड़े हुए तो जजों में से एक ने कहा, "ओह, यह तो वही मुकदमा है, जिसमें एक अनुपस्थित अंगरक्षक और लालटेन का किस्सा था। तो कहिए, अब आप क्या कहना चाहते हैं। वस्तुतः उसमें बहुत कहने की गुंजाइश नहीं है।"

मेरे विद्वान् मित्र ने बहुत यत्नपूर्वक पक्ष-समर्थन किया। मैं समझता हूं कि स्वतः उन्हें यह विश्वास हो गया था कि यह मामला बिलकुल सच्चा है। उन्होंने सारे सबूत और गवाहों की शहादतों का विस्तार-पूर्वक उल्लेख किया, लेकिन इसका कोई लाभ न हुआ। जज अपना निर्णय कर चुके थे। उन्होंने बारबार इस बात को दोहराया, "रात एकदम अंधेरी थी, सूनी वहां हाजिर नहीं था, घटनास्थल के लिए लालटेन का आविष्कार किया गया और इसलिए किसी प्रकार की पहचान असंभव थी।" इससे भी अधिक उन्होंने यह खयाल किया, "संभव है, हत्यारे के पास टार्च हो और वह एक ही बार में गला अलग करने के बाद यथाशीघ्र भाग खड़ा हुआ हो।" इस्तगासे के वकील की बहस के बाद फैसला तत्काल सुना दिया गया और बाजपेयी बरी हो गया।

: १७ :

कडुए बादाम

श्री श्रीप्रकाशजी (इन दिनों मद्रास के गवर्नर) हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध कांग्रेसी हैं और श्री आनन्द नारायण मुल्ला उत्तर प्रदेश में इंडियन

सिविल सर्विस के एक उच्चाधिकारी है। जिस समय की मै यह घटना लिख रहा हूँ, उन दिनो श्री सप्रू लखनऊ के अस्पताल मे वहुत बुरी तरह वीमार पड़े थे और जीवन और मृत्यु के वीच झूल रहे थे। उनकी बीमारी के विषय मे उनके डाक्टरो का कहना था कि ऐसी वीमारी ही वहुत कम देखने मे आई है। यह एक ऐसी वीमारी थी, जिसकी डाक्टरी रिपोर्टों और पत्रिकाओ मे केवल आठ या नौ ही घटनाए देखने मे आई थी। उनके पास एक पालतू कुत्ता था जो पागल हो गया था और उनके परिवार के डाक्टर ने उन्हे सलाह दी कि सावधानी के तौर पर सारे घर के लोगो को पागल कुत्तो के काटने के असर से वचने के लिए इनजेक्शन लगवा दिये जाय। यह एक मामूली-सा इलाज था और ए० एन० सप्रू के सिवा किसीको कुछ भी तकलीफ नही हुई; लेकिन श्री सप्रू पर तो इसकी भीषण प्रतिक्रिया हुई। थोडे ही दिनो मे उनका टेम्प्रेचर वहुत ही वढ़ गया और उसके वाद गले से लेकर नीचे तक उनके सारे शरीर को लकवा मार गया। उनके डाक्टर कुछ भी कर सकने को लाचार थे और इन्जेक्शन की भीषण प्रतिक्रिया को निरतर सावधानी के साथ देखते रहे, जो स्वत: ही कई महीनो के वाद शान्त हो गई।

× × ×

श्री श्रीप्रकाशजी वहुत ही कोमल-हृदय व्यक्ति है। उनकी जन्म-भूमि वनारस मे उन्हे सव कोई चाहते है। जो भी कोई उनके पास सहायता के लिए जाता, वह हमेशा उसकी मदद करने के लिए तैयार रहते और मै समझता हूँ कि उनकी इसी महानता के कारण कोई भी उनकी कही हुई वात को टाल नही सकता।

श्री श्रीप्रकाशजी कुछ दिन के लिए इलाहावाद आये हुए थे और मेरे ही यहाँ ठहरे थे। एक दिन उन्होने मुझसे पूछा कि मैने वनारस के किसी उस आदमी की फौजदारी अपील को लेने से क्यो इनकार कर दिया था, जिसे मृत्यु-दड दिया गया था। मैने जवाव दिया कि मुझे तो इस मामले का कुछ भी पता नही और कोई भी व्यक्ति मेरे पास नही आया। उन्होने कहा कि वनारस के कुछ लोग अभी-अभी आपसे मिलने को आये थे।

और सम्भव है आपके क्लर्क ने उन्हें इस कारण लौटा दिया हो कि वे ऐसे मामलो मे जो आपकी आम फीस है उसे नही दे सकते थे। मैंने कहा—'ऐसे मामलो में मैं अपने क्लर्क को अपना सरक्षक समझता हूं और वह हमेशा भरसक यत्न करता है कि मेरा मुआवजा मुझे ठीक-ठीक मिल जाय।"

श्री श्रीप्रकाशजी मुस्कराए और बोले, "मैं इन बनारस के लोगो को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ और इससे भी अधिक मेरी उनमे विशेष दिलचस्पी भी है। क्या आप उनका मामला ले सकेंगे?" मैंने फौरन ही मजूर कर लिया, क्योकि मैंने कहा कि अब तो इस मामले का सारा रूप ही पलट गया है। मैंने अपने क्लर्क को बुलाकर आदेश दिया कि इस अपील को ले ले और आवश्यक कार्यवाही करे। इसके बाद श्री श्रीप्रकाश चले गए। जो काम उन्होंने मुझे सौंपा था, न तो उन्होने ही उसे महसूस किया और न तब मैंने ही। कुछ दिन बाद जब मैंने कागजो को देखा तब मैंने उसकी जटिलता को समझा। यह बहुत ही कठिन मामला था और यदि वह सच था तो निश्चय ही वह अत्यन्त भयानक और विद्रोहपूर्ण था। एक हिंदू लडके को इसलिए मृत्युदंड दिया गया था कि उसने अपने पिता की हत्या करने के इरादे से उसे जहर दिया था। इस अपराध का मुद्दा बहुत ही घृणित था अर्थात् पुत्र और उसकी सौतेली माँ के बीच अनुचित सबध। इस्तगासे का मामला बडे सामान्य रूप में पेश किया गया था। मृतक की ताम्बे और पीतल के बर्तनो की दूकान थी। दूकान से थोडी ही दूरी पर उसका मकान था। अभियुक्त उसका बेटा था, जो उसकी पहली पत्नी से था। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने पुन एक युवा स्त्री से विवाह किया, जिससे उसके दो या तीन बच्चे हुए। अभियुक्त की आयु पच्चीस तीस वर्ष के बीच थी। वह विवाहित था और उसका भी एक बच्चा था। जो हो, उसका पिता उसके व्यवहार से बहुत ही असतुष्ट था। उसे अपने बेटे पर शक था कि उसका अपनी सौतेली मा के साथ बुरा सबध है। इसके अतिरिक्त वह अपने बेटे को एकदम आवारा ख्याल करता था और उसने समाचार-पत्रो में विज्ञापन दिया था कि उसने अपने लडके को घर से निकाल दिया है और वह उसके कर्जों के लिए

जिम्मेदार नही होगा। जो हो, पिता-पुत्र रहते तो इकट्ठे ही थे।

पिता की दूकान के साथ एक दूसरी दूकान थी, जहाँ मिठाइयां और ठडाई मिलती थी।

इस्तगासे के अनुसार, दशहरे के दिनो मे एक दिन दोपहर को यह लडका पड़ोसी दूकानदार के पास आया और कहा कि चलो, आज छुट्टी मनाए। किंतु इस मित्र ने उससे क्षमा चाही कि उसे वहुत काम है और उससे अकेले ही चले जाने को कहा। इसपर पुत्र ने कहा कि वह भी नही जायगा। इतना कहकर वह चला गया। आगे यह कहा गया था कि आध घटा या चालीस मिनट वाद यह पुत्र फिर वापस आया और उसके हाथों मे ठडाई के दो गिलास थे। हर कोई जानता है कि ठंडाई मे थोड़ी भाग, चीनी और थोडा दूध और कभी-कभी थोडे से वादाम भी पडते है। उसने इन दोनो गिलासो मे से एक पहले अपने पिता को दिया। उसका ऐसा करना ठीक ही था और पिता ने भी तत्काल ही उसे पी लिया। इसके वाद वह पुत्र साथ की दूकान मे गया और उसने दूसरा गिलास अपने दूकानदार मित्र को पेश किया। यह मित्र उस समय एक ग्राहक को सौदा दे रहा था, इसलिए उसने वह गिलास ज्यो-का-त्यो रख लिया। कुछ मिनटो वाद उसने एक घूट भरा और उसे लगा कि उसमें कुछ कडवाहट है इसलिए उसने उसे थूक दिया। इसके वाद उसने फिर उसे चखा। उसे फिर वह कड़ुवा लगा और उसने फिर उसे थूक दिया। इस तरह करते-करते आध घटा या कुछ समय वीत गया और हर किसी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पिता वेहोश होकर गिर पडा। वहाँ वड़ा भारी गुलगपाडा हो गया भीड़ जमा हो गई। कोई डाक्टर को वुलाने दौडा। नगर के इस हिस्से मे वहुत ही चहल-पहल रहती है और भाग्य से इसी क्षण लोगो ने एक डाक्टर को इक्के में जाते हुए देखा, जो एक रिटायर्ड सिविल सर्जन थे। डाक्टर को तत्काल घटना-स्थल पर लाया गया। उसने पिता की जाच की और उसकी खतरनाक हालत देखते हुए उसे फौरन पुलिस-थाने की राह अस्पताल पहुचाने की सलाह दी। इसके वाद डाक्टर ने दूसरे से पूछा कि उसे किसी तरह की कोई

तकलीफ तो नही है ? इसपर उसने शिकायत की कि उसे भी थोड़े-थोड़े चक्कर आ रहे है। डाक्टर उसे अपनी डिस्पेंसरी में ले गया, उसे उसने कुछ दवाई दी और उसके बाद उसके साथ थाने में गया जहाँ उसने अपनी रपट लिखाई। इस बीच पिता को किसी अस्पताल मे भेज दिया गया था, जहाँ तीन घटे के अंदर-अंदर उसकी मृत्यु हो गई। शव-परीक्षा (पोस्टमार्टम) होने पर मृतक के शरीर में से पोटाशियम साइनाइड मिला, जो बहुत ही घातक विष होता है और डाक्टरो की राय थी कि मृत्यु जहर से हुई है।

मुझे याद नही कि पडोसी को दिये गिलास में बची ठडाई का क्या हुआ। बहुत सभव है उसने स्वय ही उसे पी लिया हो अथवा कोई दूसरा उसे गटक गया हो। जो भी हुआ हो, इतना तो जरूर था कि उस गिलास की ठडाई की डाक्टरी जाच नही की गई थी।

पोटाशियम साइनाइड एक बडा ही घातक जहर है और उसका आम उपयोग भी नही होता। इसलिए बिना किसी पूर्व-योजना के वह ठडाई के गिलास में पड नही सकता था और इस्तगासे की कहानी के लिए वह स्वत. प्रत्यक्ष प्रमाण था। ठडाई पीने से पहले पिता की तबियत बिल्कुल ठीक थी। चार या पाच घटे पहले उसने सुबह का खाना भी खाया था और कोई भी यह कह सकता था कि उसकी मृत्यु ठडाई पीने से ही हुई है।

सेशन जज की अदालत मे जो वकील अभियुक्त की ओर से पेश हुए थे, वह मेरे परिचित थे। फौजदारी मामलो में वह बहुत अनुभवी और सिद्धहस्त थे। उन्होने इस आधार पर सफाई पेश की थी कि यह मृत्यु विशुद्ध रूप से घटनात्मक है। उस गिलास मे कोई भी हानिकारक वस्तु नही थी, स्वाद मे कडुएपन का कारण यह था कि ठडाई तैयार करने में कडुए बादामो का उपयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त उन्होने चिकित्सा-विषयक न्याय-शास्त्र की कई पुस्तकों के आधार पर यह सुझाव उपस्थित किया था कि थोडे से ही कडुए बादामो मे पर्याप्त मात्रा में साइनाइड आइन्स होता है। यह साइनाइड आइन्स मृतक के खाये हुए भोजन में से मुक्त प्राकृतिक क्षारो के

साथ पेट मे मिलकर पोटाशियम साइनाइड बन गया और उसीके कारण उसकी मृत्यु हो गई। जिरह के दौरान मे यह दृष्टिकोण उस सिविल सर्जन के सामने पेश किया गया था, जिसने पोस्टमार्टम किया था। उसने कहा कि यद्यपि यह सच है कि चिकित्सा-विषयक न्यायशास्त्र की किताबो मे गत २०० साल मे इस प्रकार की घटनाओ का उल्लेख मिलता है तथापि मैंने गत २७ वरस के निजी अनुभव मे ऐसी एक भी घटना नही देखी और वह सर्वथा असभाव्य जान पड़ता है। सैशन जज पर इस सफाई का कोई असर न हुआ और उन्होने दूसरी गवाहियो को दृष्टि मे रखते हुए दोष की पूर्ण प्रामाणिकता का खयाल कर लिया और उस दशा मे मृत्यु ही उसका दड था।

जब मैंने अपील के कागजो का अध्ययन किया तो मुझे यह मामला बड़ा जटिल-सा जान पडा। इसमें बचने की केवल इतनी ही गुजायश थी कि यह अपराध अगर सच था तो इतना अस्वाभाविक और इतना भयानक था कि न्यायाधीश का मन उसे स्वीकारने मे ठिठक जाता और मानव-स्वभाव की ऐसी नीचता को स्वीकार करने से पूर्व कोई-न-कोई वैकल्पिक हल ढूढ निकालने की भरसक कोशिश की जानी। उधर अभियुक्त के पक्ष मे भी कुछेक स्पष्ट बाते थी। घटना के समय उसका आचरण सर्वथा सामान्य ही रहा था। उसके आचरण से यह प्रकट नही हुआ कि वह दोषी था। इस बात का भी कोई कारण नही मिला कि उसने पडोसी दुकानदार को क्यो विष देना चाहा! इसके बाद की घटनाओ के फलस्वरूप वह भागा भी नही। समाचार-पत्रो में पिता के विज्ञापन देने की बात निश्चय ही सही बात हो सकती थी अथवा यह भी संभव था कि पिता तथा पुत्र के षड्यंत्र के कारण ही यह विज्ञापन दिया गया हो, ताकि पुत्र के लेनदारों को धोखा दिया जा सके और वे परिवार की सयुक्त-सपत्ति पर हाथ न डाल सकें।

यह अपील हाई कोर्ट के दो बहुत ही अनुभवी जजों के सामने पेश हुई। मैंने अभियुक्त के आचरण-सबधी तथा इस मामले के अन्य पहलुओ को जजो के समक्ष रखा; लेकिन मैंने महसूस किया कि विद्वान् जजो पर मेरी इन

युक्तियो का कोई विशेष असर नही पडा। इसके बाद, मुझे कड़ुए बादाम के उक्त सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ा। जब मैंने यह तर्क उपस्थित किया तो अदालती वातावरण और भी गभीर हो गया। जब मैंने चिकित्सा-सिद्धान्त की एक किताब मे से उस एक अश को पढ कर सुनाया, जिसमे कहा गया था कि कड़ुए बादामो द्वारा विष की अतीत मे कुछ घटनाए हुई है तो न्यायाधीशो के चेहरो पर हल्की-सी हँसी की रेखा खिच गई। एक जज ने उपहास के तौर पर मुझसे कहा, "डा० काटजू, मै समझता हूँ कि गत २०० बरसो मे जो घटनाए हुई है, उनमें आपकी बताई घटना का ११वा नबर जान पड़ता है।"

इसी क्षण, मै नही कह सकता, क्या हुआ; किंतु इतना अवश्य था कि मुझमें नव-स्फूर्ति का उदय हो गया। मेरा चेहरा और स्वर दोनो ही बहुत नम्र एव उदास-से पड गए, और मैंने बहुत धीमे स्वर में कहा, "क्या जनाब, इस किताब के दूसरे पन्ने को पलटने का कष्ट करेंगे?" उसमे लिखा हुआ था कि पागल कुत्तो के काटने से बचने के लिए लगाए जाने-वाले इजैक्शनो की कभी-कभी प्रतिक्रिया भी हो जाती है, लेकिन ऐसा बहुत ही कम अवस्थाओ मे होता है, और १०० या इससे अधिक बरसो में इस प्रकार के इंजैक्शनों से केवल ९ या १० ही ऐसी घटनाए हुई है, जिनमे इजैक्शन लगवाने वाले को लकवा मार गया था। इसके बाद कोई नाम व्यक्त किये बिना ही मैंने आगे कहा—"जनाब, इस अदालत के एक बहुत ही निकट के मित्र के विषय में हम सब बड़े चिंतित रहे है, और इतने पर भी इस किताब के अनुसार, वह मामला भी इस विवरण के अनुसार ग्यारहवा ही है। उस मामले का आपको और मुझे व्यक्तिगत ज्ञान है। इसलिए हमे उसके बारे मे कोई खास आश्चर्य नही जान पडता। हम सब इस मामले को जानते है और यह सत्य भी है। इस पर भी जब मैंने यह कहा कि यह विशेष घटना भी ऐसी ही है कि जिसमे कड़ुए बादामो द्वारा विष का एक अन्य उदाहरण उपस्थित हुआ है तो जनाब को यह असभव तथा असभाव्य जान पडता है और आपके

लिए विश्वास करना कठिन जान पड़ता है। लेकिन अंतर क्या है ? अतर केवल इतना ही है कि एक मामला तो ऐसा है, जिसे हम अपनी आँखो से देखते है, और दूसरा मामला न्याय-सबंधी जांच-पड़ताल का है।"

मैं नही कह सकता कि क्या हुआ, लेकिन इस विश्लेषण का जो इतनी करीब की घटना का था, न केवल जजो पर ही प्रत्युत अदालत मे मौजूद हर किसी पर इतना प्रभाव पड़ा कि सारा वातावरण ही बदल गया। दोनो जज पूर्णतया गंभीर हो गए और उनके सारे सशय हवा हो गए। मैंने फौरन ही अपनी बहस समाप्त कर दी और सरकारी वकील को जवाब देने के लिए कहा गया। उसने कड़ुए बादामो के आधार पर हुई मृत्यु की कहानी की असंभाव्यता पर ही चर्चा की। लेकिन जजो ने कहा, "मगर ऐसा हो तो सकता है। ऐसा होने की सभाव्यता को वह रद्द कैसे कर सकते है ?" इस प्रकार जल्दी ही बहस समाप्त हो गई और खुले इजलास मे फैसले की घोषणा कर दी गई और अभियुक्त को बरी कर दिया गया।

× × ×

उसी शाम की बात है। एक मित्र के यहाँ चाय-पान का आयोजन किया गया था। हम सब वहाँ फिर एकत्र हुए। कुछ ठंडाई का भी प्रबंध था और जब ठडाई का गिलास मुझे पेश किया गया तो मैंने उसे लेने से इकार कर दिया। इन विद्वान् जजो में से एक ने मेरे इस इन्कार को सुन लिया। वे बोले, "डा० काटजू, मै समझता हूँ कि अब तो आप ठंडाई के नाम से ही डरने लगे है। मैं आपकी इस बात की तारीफ करता हूँ। अनुभव से शिक्षा ग्रहण करना इसीको कहते है।"

: १८ :

भाग्य-चक्र

१९४३ की बात है। कांग्रेस का स्वतंत्रता-संग्राम बड़े ज़ोरो पर चल रहा था। दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार को अपनी पुलिस की ताकत

पर बडा भरोसा था। इसमे शक नही कि अनेक पुलिस-अफसरों ने उन दिनो बेहद ज्यादतियां की थी। उन्ही दिनो ज़िला कानपुर के एक थाने का इचार्ज था, जो अपने इलाके के लोगो के साथ बहुत बुरा सलूक करता था। यह आम मशहूर था कि भ्रष्टाचार के मुद्दों मे रुपया ऐंठने के लिए वह जिन्हे गिरफ्तार करके हवालात मे रखता, उनको बहुत ही अपमानित करता और उनके साथ बड़ी निर्लज्जता-पूर्वक पेश आता था। नतीजा यह था कि सारा इलाका उनके डर के मारे कांपता था।

एक दिन सुबह-सुबह उसके एक गश्ती सिपाही ने उसे सूचना दी कि ६ मील के फासले पर एक गांव मे एक जमीदार के मकान पर बहुत-से हथियार-बद आदमी जमा हो रहे है। वे लोग पडोसी-गांव के एक जमीदार पर हमला करना चाहते है। इसका राजनैतिक आदोलन के साथ कोई सबध नही था। यह तो केवल परिवारिक मामला था। दो भाइयो मे झगडा चल रहा था और उनकी बहन का पति उनमे से एक का साथ दे रहा था। तदनुसार एक भाई अपने बहनोई की सहायता से दूसरे भाई के घर पर हमला करने की तैयारी कर रहा था।

इसपर थानेदार ने अपने सहायक थानेदार को सिपाहियो के एक छोटे-से दल के साथ उस गाव मे भेज दिया, जहा दूसरा भाई रहता था और स्वय एक पुलिस-दल के साथ उस बहनोई जमीदार के मकान पर जा पहुँचा। इसका नाम हम उमाशकर मान लेते है। थानेदार ने देखा कि वहा बहुत-से आदमी जमा है और कुछ लाठिया भी जमा की हुई पडी है। इसके अलावा उमाशंकर के पास बदूक का भी लाइसेन्स था। उसने उमाशकर को हुक्म दिया कि वह अपनी बदूक पुलिस के हवाले कर दे। उमाशकर ने बदूक सौप दी। इसके बाद उसने उमाशकर से कहा कि वह गिरफ्तार किया जाता है और उसे थाने चलना होगा। इन सारी चर्चा के समय उमाशकर के बहुत-से आदमी वहा मौजूद थे, जिनमे उनके नौकर कारिंदे और काश्तकार भी थे।

उमाशकर ने पहले तो थाने जाने मे टालमटोल की; पर वह पीछा न छुडा सका। आखिरकार एक इक्का मंगाया गया और थानेदार उमाशकर के साथ उसमें सवार हो गया। जब वह इक्के मे वैठ गया तो कहा जाता है कि उसने अपने कारिंदो से सकेत मे कहा, "अब क्या देखते हो! अव कौन-सा दिन आयगा!" इस कहने का मतलब यह बतलाया गया था कि उसे पुलिस से छुडा लिया जाय और पुलिस-दल और थानेदार पर हमला किया जाय। उसकी मशा चाहे जो भी रही हो और उसके इशारे का चाहे जो भी अर्थ समझा गया हो, यह तो ठीक ही था कि पुलिस-दल पर हमला किया गया और थानेदार को पीटा गया और वह जमीन पर गिर पडा। इस मार-पीट के समय उमाशंकर इक्के से उतर कर भाग गया और घटना-स्थल से सर्वथा लुप्त हो गया। उसके वाद दिन भर वह किसीको दिखाई नही दिया। ठीक उसी वक्त अचानक दूसरे गांव से दूसरा पुलिस-दल भी उसी जगह पहुंच गया। सहायक थानेदार ने भीड़ को डराने और तितर-बितर करने के लिए रिवाल्वर से कुछ गोलियां चलाई और उसके वाद घायल थानेदार को उसने उठाया और इक्के मे वैठाकर थाने की ओर चला। अभी वे वहुत दूर नही जा पाये थे कि भीड (जिसमे उमाशंकर नही था) फिर लौट आई। इस वार भीड़ और भी खूखार वन गई थी और उसने थानेदार को इतनी वुरी तरह पीटा कि वह वही मर गया। इसके वाद पुलिस-दल थाने पर लौट आया और इस दुर्घटना का समाचार हैडक्वार्टरो में भेजा गया। आग की तरह यह समाचार जिले भर मे फैल गया।

उन भयानक दिनो मे एक पुलिस के आदमी की हत्या मामूली वात नही थी इसलिए तत्काल सख्ती के साथ जांच शुरू कर दी गई। उमाशकर को और वहुत-से लोगो के साथ गिरफ्तार किया गया और जांच-पड़ताल के वाद उमाशंकर-समेत वीस आदमियो पर मुकदमा चलाया गया। उमाशकर के विरुद्ध दोषारोपण यह था कि

उसने थानेदार पर हमला करने के लिए भीड को उकसाया और इसलिए वह हत्या के प्रोत्साहन के अपराध का दोषी था। किसी ने भी यह नहीं कहा कि उसने किसी भी प्रकार मे व्यक्तिगत तौर पर पुलिस-दल पर हमला किया या वह हथियारबद था या उसने किसी तरह के हथियार का उपयोग किया। सार-रूप मे उसके अपराध के विषय मे इतने ही शब्द कहे गए थे। कानपुर के सेशन जज ने सब अभियुक्तो को दोषी करार दिया और चार को छोड़ कर, जिन्हे उसने उनकी युवावस्था के कारण आजीवन कारावास का दड दिया था, उमाशकर-सहित बाकी सोलह व्यक्तियो को मृत्यु-दड दिया गया।

हाईकोर्ट मे अपील के अवसर पर उमाशकर और बाकी कई दूसरो की तरफ से मै पेश हुआ। चीफ जज और एक दूसरे जज ने अपील सुनी और कुछेक अभियुक्तो को पर्याप्त सबूत न होने के आधार पर बरी कर दिया। बाकी जिन लोगो की सजा स्थिर रखी गई, विद्वान जजो ने उसपर टिप्पणी की कि मृतक की वस्तुत. किस व्यक्ति ने हत्या की, इस सबंध में कोई प्रमाण न होने की दशा में सभी को मृत्यु-दड देना न्यायोचित नही होगा और ऐसी अवस्था मे आजीवन कारावास का दड समुचित जान पड़ता है। किंतु विद्वान जज इस बारे मे सर्वथा निश्चित थे कि इस नृशंस हत्या की नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी उमाशकर पर ही मुख्यतः है। उसी ने लोगो को इस अपराध के लिए उकसाया। अगर वह थानेदार के साथ चुपचाप थाने चला जाता तो कुछ भी न होता, और इस आधार पर उसके मृत्यु-दड को स्थिर रखा गया। मैने उसकी ओर से काफी जोर के साथ सफाई पेश करते हुए कहा, "कि पहली बात तो यह है कि उकसाने-सबधी सारी कहानी ही गलत है और जो शब्द उसके द्वारा कहे हुए बताए गए है, वे उसने नही कहे थे। दूसरे यह कि अगर वे शब्द कहे भी गए थे तो महज छुडाने भर के इशारे के लिए थे और जरूरत हो तो जबरदस्ती करके भी छुडाने के लिए थे। लेकिन किसी की हत्या के लिए नहीं। वही एक व्यक्ति था, जिसके पास कोई हथियार नही था, जिसने पुलिस के किसी आदमी को किसी प्रकार की हानि नही पहुंचाई और जो तमाशा

भाग गया था। जो हो, मेरी सारी वकालत और सफाई बिलकुल बेकार साबित हुई। जजो ने अपना निश्चय कर लिया था। उमाशंकर की पत्नी हाईकोर्ट में अपने पति की अपील की देखभाल कर रही थी। वह कई बार मेरे पास आई थी, छोटे-छोटे बच्चे उसके साथ होते और वह बेहद परेशान और बेशुमार चिताओ की प्रतिमूर्त्ति दीखती थी। इससे पहले यह औरत अपने गाँव के घर से कभी बाहर नही आई थी और सभी पास-पड़ोसी उसकी इज्जत और मान करते थे। अब वह बेचारी अपरिचित जगहो और व्यक्तियों के पास अपने पति की जान बचाने के लिए मारी-मारी फिर रही थी।

× × ×

अपील खारिज होने और हाईकोर्ट द्वारा मृत्यु-दंड बहाल रहने के बाद हिन्दुस्तान में मृत्युदड प्राप्त आदमी की जान बचाने के लिए उसके परिवार तथा उसमे दिलचस्पी रखनेवाले दूसरे लोग एक आखिरी बाजी लगानी शुरू करते है। अग्रेजी राज्य के जमाने मे इंग्लैंड मे प्रिवी-कौंसिल मे अपील करनी होती थी और इन दिनो नई दिल्ली स्थित सुप्रीम कोर्ट में अपील की जाती है। यह बहुत ही अनिश्चित तरीका था और आज भी वैसा ही है। यह अपील अधिकार के नाते नही होती। अपील करने की इजाजत मागनी पड़ती है और यह स्वीकृति बहुत ही कम अवस्थाओं में दी जाती है।

इस उपाय के अतिरिक्त एक दूसरा उपाय भी है, अर्थात्, रहम की दरख्वास्त। हर प्रान्त मे प्रान्तीय सरकार को कानून के अधीन किसी भी दंड को रोकने या स्थगित करने या बदलने का निश्चित अधिकार होता था और उसके बाद इग्लैंड के ताज का प्रतिनिधि होने के नाते वाइसराय रहम की दरख्वास्त पर उस हक का प्रयोग करता था। तदनुसार रहम की दरख्वास्त देने के क्षण से ही दरख्वास्त के फैसले तक मृत्यु-दड रोक दिया जाता था। पहले यह दरख्वास्त गवर्नर के पास जाती थी। अगर वह नामजूर करता तो वाइसराय के सामने पेश की जाती। रहम की दरख्वास्त का चाहे

जो भी रूप हो, लेकिन इतना तो जरूर था कि इस ढंग से मृत्यु-दंड प्राप्त व्यक्ति को जीने के कुछ अतिरिक्त दिन मिल जाते थे।

इस बुरे दिन को टालने की यह अक्सर निराधार आशा हर किसी को प्रिवी कौंसिल में अपील के लिए दरख्वास्त करने की भी प्रेरणा करती थी। इस मामले में भी उमाशंकर की पत्नी ने प्रिवी कौंसिल में अपील करने के विषय में मुझसे सलाह मांगी। मैंने उनसे स्पष्टतया कहा कि इस मामले में कोई गुंजायश नहीं। लेकिन इस प्रकार की भीषण अवस्थाओं में ऐसी सलाह पर कौन ध्यान देता है? किसी दूसरे वकील की मार्फत उसने आवश्यक कार्यवाही की और इंग्लैंड में सालिसिटरों को प्रिवी कौंसिल में अपील दायर करने का आदेश कर दिया। फलस्वरूप फांसी की आज्ञा रोक दी गई।

इसी बीच उसने उत्तरप्रदेश के गवर्नर को भी रहम की दरख्वास्त दे दी। इस बार भी वह मुझसे सलाह और सहायता लेने आई। उसके बोलने के लहजे और उससे भी बढ़ कर उसकी आंखों के भाव ने मुझे इस बात के लिए लाचार कर दिया कि मैं उसके पति को फांसी से बचाने के लिए, जो भी कर सकता हूं, करूं। उसकी इस दशा से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ और स्वतः मेरी भी यह राय थी कि यह सजा गलत है और इस पर मृत्यु-दंड तो सर्वथा अन्यायपूर्ण है। इस दृष्टि से मैंने एक बहुत ही असाधारण बात की। मैंने श्री ग्राहम विवियन को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा जो उन दिनों उत्तर प्रदेश के गवर्नर के सलाहकार थे। १९३७-३९ में जब मैं उत्तर प्रदेश में मंत्री था, तो उनके साथ मेरा परिचय हुआ था। अपने पत्र के आरम्भ में ही मैंने लिखा था कि मैं यह पत्र एक वकील के नाते नहीं, बल्कि व्यक्तिगत रूप में लिख रहा हूं। मृत्यु-दंड प्राप्त कैदी की पत्नी और बच्चों के लिए मुझे जो सहानुभूति है, उसीसे प्रेरणा पाकर मानवीय आधारों पर यह पत्र लिखा है। मैंने लिखा कि मेरी राय में सजा गलत है, लेकिन संभव है कि गवर्नर महोदय केवल न्याय-विभागीय जांच पर निर्भर रहें और स्वयं इस मामले की पड़ताल न करें, और चूंकि यह सजा सर्वथा उनकी मर्जी का फल

होगा, इसलिए मेरे विचार से प्रस्तुत मृत्यु-दंड पूर्णतया अन्यायपूर्ण है। इस पत्र के थोडे ही दिन वाद श्री विवियन का एक सौहार्दपूर्ण पत्र मुझे मिला। उन्होने जवाव मे लिखा था कि आपका पत्र पाने से पूर्व ही इस मामले का निपटारा हो चुका था, और साथ ही यह भी लिखा कि यदि आपका पत्र पहले भी मिल जाता तव भी उससे उनकी राय मे परिवर्तन न हो पाता; क्योकि वहुत सोच-विचार के वाद वह इस निष्कर्प पर पहुँचे थे कि यह मृत्यु-दड सर्वथा न्यायपूर्ण है और तदनुसार गवर्नर को भी उन्होने यही सलाह दी थी। फलतः गवर्नर ने दरख्वास्त नामजूर कर दी। लेकिन इतने से ही मैंने अपने आगे के प्रयत्नो को रोका नही। सामान्य क्रम मे अव यह दरख्वास्त वाइसराय के पास जानी थी और इस बार मैंने अपने स्नेही मित्र श्रीश्रीप्रकाश-जी (जो उन दिनों केंद्रीय धारासभा के सदस्य थे और आजकल मद्रास के गवर्नर है) को पत्र लिखा। मैंने उनसे निवेदन किया कि वह इस मामले के सवध मे भारत सरकार के गृह-मंत्री और कानून-मत्री से चर्चा करें और जैसे भी हो, इस जान को वचाएं। लेकिन इसका भी कोई लाभ न हुआ और श्री श्रीप्रकाशजी के कथनानुसार गृह-सदस्य इस प्रश्न पर दृढ मत थे। परिणामस्वरूप वहा भी यह दरख्वास्त नामजूर हो गई। इस प्रकार जहा तक मेरा संवध था, इस मामले में मेरा काम समाप्त हो चुका था और मेरे वस का कुछ भी वाकी नही रह गया था। समय वीतते मैं इस मामले को भूल ही गया। मै समझता हूँ, यह वात १९४५ के अत की है।

इसके वाद न तो उमाशकर की पत्नी ही और न कोई अन्य व्यक्ति ही इस सवध मे मेरे पास आया।

इधर भारत में राजनैतिक परिस्थिति में वडी तीव्रता के साथ परिवर्तन होने जा रहा था। दिसवर १९४५ मे सयुक्त प्रांत के गवर्नर सर मारिस हैलेट रिटायर हो गए और उनकी जगह सर फ्रैंकिस वाईल आये। आम-चुनाव हुए और १ अप्रैल १९४६ को काग्रेस-दल ने पद-ग्रहण किया और मै पुन. न्याय-मत्री वना। २ अप्रैल को सवसे पहले जो फाइलें मेरे सामने आई, उनमे एक फाइल थी, जिसपर 'हत्या-केस' की 'अत्यावश्यक' लाल

चिट लगी हुई थी। स्वभावत: मैंने सर्वप्रथम उसे देखना शुरू किया। यह फाइल एक स्वाभाविक क्रम में मेरे सामने पेश की गई थी। न्याय-विभाग के सचिव ने उसपर सिफारिश की थी कि चूकि कैदी की अपील को गवर्नर तथा वाइसराय ने नामजूर कर दिया है, इसलिए अब फासी देने की आज्ञा जारी कर दी जाय। यह महज एक जाब्ते की खाना-पूरी का प्रश्न था और स्वत: सचिव भी इसे निपटा सकता था। लेकिन मेरे खयाल मे उसने सोचा कि मत्रि-मडल चूकि सात बरस बाद फिर पदारूढ हुआ है, इसलिए उसने इस फाइल को मेरे सामने पेश करना मुनासिब समझा। मैंने लिखित टिप्पणियों को पढा और मुझे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि यह फाइल तो मेरे पुराने मुवक्किल उमाशकर की ही थी। मेरा खयाल था कि वह तो कबका फासी चढ चुका होगा; लेकिन मालूम हुआ कि जहाँ उसकी रहम की दरख्वास्त गवर्नर और वाइसराय दोनो ने ही नामंजूर कर दी थी, वहां प्रिवी कौंसिल में उसकी अपील का इस बीच फैसला नही हो पाया था और आखिरकार १८ मार्च १९४६ को वह अपील रद्द हो गई। इस अपील की अस्वीकृति की सूचना लदन के इडिया आफिस ने भारत सरकार द्वारा प्रातीय सरकार को तार द्वारा दी थी। परिणामस्वरूप इस तार की प्राप्ति पर दफ्तर के सुपरिटेंडेंट ने टिप्पणी लिखी थी कि फासी रोकने की आज्ञा को अब वापस लिया जाय और जेल-अधिकारियो को फासी देने का आदेश जारी किया जाय। लेकिन इस हालत मे मुझे क्या करना था? इससे पूर्व १९३७-३९ के दो बरसो मे जब मैं मन्त्रिमडल में था उस समय ऐसा कोई भी मामला मेरे सामने आता, जिसमें बतौर वकील के मुझसे सलाह ली जाती तो मेरा यह तरीका था कि ऐसे कागजो को आज्ञा के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्य-मत्री के पास भेज देता था।

तदनुसार मैंने फाइल पर लिख दिया कि इस मामले मे मुझसे पूर्व ही सलाह ली जा चुकी है। इसलिए मैं इस सबंध मे कोई राय नही देना चाहता। इस बारे मे मैं सर्वथा मौन रहा। इसके अलावा मैंने फाइल मे देखा कि श्री विवियन को लिखा मेरा पत्र और उनका जवाब भी उसमे नत्थी था। इससे

मै खुद उमागकर को फांसी पर चढ़ाने की आज्ञा नही दे सकता था। मैंने वह फाइल मुख्य-मन्त्री के पास भेज दी। इसके वाद इस विपय मे मैंने और कोई दिलचस्पी नही ली और कार्यवग मै भूल भी गया।

वहुत दिनो वाद, वात-व्रात मे विभाग के सचिव ने मुझे वताया कि सरकार ने मृत्यु-दड की जगह इस आधार पर आजीवन कारावास की सजा देने का निर्णय किया है कि कैदी के सिर पर लगभग तीन वरस तक मृत्यु-दंड लटकता रहा है, इसलिए उसे फासी पर चढाना अमानवीय जान पड़ता है।

यदि काग्रेस मन्त्रि-मडल चार दिन वाद पद-ग्रहण करता या फाइल मेरे सामने पेग किये विना ही दफ्तर से फासी की आज्ञा जारी हो जाती तो वह आदमी फासी के तख्ते पर झूल जाता। लेकिन भाग्य को वह मजूर न था और परमात्मा की दया से उसकी जान वच गई।

इसके कई महीने वाद का जिक्र है। मै उस जिले का दौरा कर रहा था। एक दिन कानपुर लौटते हुए रात के नौ वज गए। एक जगह मैंने देखा कि सडक पर लालटेनो और टार्चों के साथ वहुत-से लोग जमा है। कार रोकी गई और मैंने पूछा कि क्या वात है। उन्होने जवाव दिया कि आप चूंकि जमीदार उमागंकर के गाव से निकल रहे है, इसलिए उमागकर के परिवार की स्त्रिया आपके दर्शन करना चाहती है। मेरा दिल भर आया और मेरी आँखो में उमागकर की युवा पत्नी की उन दिनो की दयनीय अवस्था का चित्र आगया। मै कार से उतर पड़ा और एक या दो फर्लांग पैदल चलकर उमागकर के मकान पर पहुँचा। वहाँ उसकी पत्नी ने मेरे पाव छुए। मैंने देखा कि सारा मकान एक खंडहर की हालत में है। उसने वताया कि थानेदार की हत्या के वाद पुलिस-वालो ने इस घर को हर तरह से नष्ट कर डाला और सव-कुछ लूट लिया। मै नही जानता कि वह सच था या झूठ, पर मकान की हालत स्वतः ही वतला रही थी।

इसीको कहते है भाग्य का चक्र !

: १९ :

पहियों के निशान

फौजदारी मामलो में अभियुक्त हवालात मे होता है, इसलिए वकील को अपने मुवक्किल से कोई खास सहायता नही मिल पाती। इसपर, अदालत में कैदी अक्सर अपराध-स्थल से अपनी गैर-मौजूदगी का समर्थन करता है, जो या तो कोरा झूठ होता है या ऐसे सबूत के सहारे पेश किया जाता है, जो सहज ही झूठ साबित हो जाता है। इसके अलावा भारत मे अभियुक्त की सबसे पहली प्रवृत्ति यही रहती है कि वह अपराध-स्थल से, जितना सभव हो, दूर चला जाय और बाद में यह कह सके कि वह तो वहाँ मौजूद ही नहीं था। एक आदमी के बारे मे यह कहा जाता है कि उसने कलकत्ते मे अमुक की हत्या की और उसका यह कहना कि वह ठीक हत्या के समय लाहौर मे था, उसके वकील के लिए बड़ा टेढा प्रश्न बन जाता है। उस दशा मे वकील ऐसे गुणो के आधार पर एक दूसरा मामला तैयार करने मे अपनी सहज बुद्धि और अनुभव पर ही निर्भर रह सकता है, ताकि उसका मुवक्किल अपराध से मुक्त हो जाय। दडित या अपराधी व्यक्ति से मामले की सचाई पूछना निर्दयता ही नही, बल्कि मूर्खता है। इसलिए अभियुक्त के साथ तो मैं बहुत कम बात करता था। मैं केवल मिसलो को पढता और अपने साथियों के साथ मामले पर विचार कर लेता। यह विचार ही वस्तुत बौद्धिक श्रम बन जाता था और इस विचार-विनिमय मे हम शरलॉक होम के सब नियमो के अनुसार अमल किया करते थे।

उदाहरण के लिए आप इस विचित्र नियम को लीजिए कि आप एक आदमी या गतिशील वस्तु का पीछा करते हैं और आपको शारीरिक रूप मे उस आदमी या वस्तु का उन अवस्थाओ मे उत्तर दक्षिण और पूर्व दिशा में जाना असभव जान पडता है। तो आप कितनी शका होने पर भी उसकी जाने की दिशा पश्चिम मान लेंगे और आप उसी दिशा मे उस

की खोज करने लगेगे। यह नियम है तो मामूली-सा; लेकिन अक्सर इसकी उपेक्षा की जाती है। शरलॉक होम के इसी सरल से नियम के सहारे शिवमंगलसिंह फांसी के तख्ते से साफ वरी हो गया। अपने वकालत के जीवन मे मुझे वह मुकदमा वड़े मार्के का जान पड़ा था। महज एक ही वात के कारण एक आदमी का मृत्यु के मुह से साफ वच जाने का मुझे कभी अनुभव नही हुआ था। मै नही जानता कि सचाई क्या थी और न शिवमगलसिंह को मैंने उस एक दिन के वाद कभी देखा, जव वह इलाहावाद हाईकोर्ट में अपनी अपील मे हाजिर हुआ था। सैशन अदालत मे इस्तगासे की वह कहानी इस प्रकार पेश की गई थी :

एक किसान ने एक दिन दोपहर के समय अपने खेत मे खून के वड़े-वडे धव्वे देखे। यह खेत उसके गाँव से काफी फासले पर एक नहर के किनारे के पास था। नहर के किनारे की सड़क कुछ दूरी पर एक ऐसी देहाती कच्ची सडक से जा मिलती थी, जो उत्तर से दक्षिण को जाती थी। किसान खून के उन दागो को देखकर वड़ा परेशान हुआ। वह गाँव में आया और उसने गाँव के चौकीदार को इसकी सूचना दी। फौरन ही चौकीदार किसान के साथ उस खेत मे गया और उसने इस वात की तसदीक कर ली। इसके वाद पुलिस-थाने में जाकर देखी हुई घटना की रिपोर्ट दर्ज करा दी गई। इसपर थानेदार एक सिपाही के साथ घटना-स्थल पर गया। लगभग सूरज डूवने के समय की यह वात है। थानेदार ने वडे गौर से खेत में इधर-उधर देखा। उसे एक स्थान पर कुछ मात्रा में खून और देसी स्लीपरों का एक जोड़ा दिखाई दिया। इससे आगे उसने ऐसे निशान देखे कि किसी आदमी या वस्तु को खेत के पार खीचकर ले जाया गया है। ये निशान उसे नहर के किनारे के साथ-साथ जाने वाले उस रास्ते पर ले गए, जहाँ उसने दो पहियों के निशान देखे। इन लकीरो का उसने पीछा किया और आखिरकार वह ऊपर कही लम्वी-चौडी सडक पर पहुच गया। वहाँ रुक कर उसने

देखा कि छकडे के पहियो की लकीरे उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओं में जा रही है। अपनी दी हुई गवाही के अनुसार पहले तो वह उत्तर दिशा की ओर गया और उसने देखा कि वे लकीरे लगभग १०० गज तक एक काफी चौडी लेकिन सख्त जमीन तक चली गई है और उसी में उस राह का भी अत होगया। उसने सोचा कि यह तो धोखे की पगडडी है, इसलिए वापस ही लौटना बेहतर होगा। तदनुसार वह मुडा और दक्षिण दिशा में चला। इस ओर उसे अधिक सफलता मिली, क्योंकि लगभग दो फर्लांग तक बिलकुल साफ-साफ पहियो के निशान बटते गए थे और पेड़ो के एक बड़े झुंड में उनका अत हो गया था। जो हो, यह थी वह जगह, जहाँ बडी भयकर घटना घटी थी, क्योकि यहाँ ढेरो लहू के सूखे हुए धब्बे थे। पहियो के निशान इससे आगे नही गये थे। सारे मामले का यही अत हो गया था। साफ जाहिर था कि यहा पर किसी की हत्या की गई है। चारो ओर खेतो मे फसले उगी हुई थी, पुलिस-दल अधिक पता लगाने के लिए इधर-उधर गया। एक खेत मे एक जगह कुछ-कुछ ताजी मिट्टी भरी दिखाई दी और खुदाई करने पर उसमे से एक बडल मिला, जिसमे बहुत से वस्त्र थे और उनमे एक बहीखाता लिपटा हुआ था। थोडी-बहुत परेशानी के बाद लोगो ने उस बडल को पहचान लिया और बताया कि वह रामनारायण फेरीवाले का है। वह अपने हाथ-ठेले पर सामान लाद कर हर हफ्ते गांव की पैंठो मे जाया करता था और बहीखाते मे वह अपने ग्राहको का लेन-देन दर्ज करता था। यह खेत शिवमगलसिंह का था। इस बीच अधेरा भी हो चुका था और सडक का यह दक्षिणी छोर भी यही खत्म हो जाता था। इसलिए थानेदार अपने सिपाही के साथ गाव मे आ गया और उसने जमीदार के घर मे रात बिताई। अगले दिन जो उसने किया उसने यह मामला उलझा गया। अपनी गवाही के अनुसार, जिसे जज ने स्वीकार किया था, उसकी गति-विधि सर्वथा स्वाभाविक-सी रही और अपनी जाच-पडताल के बारे मे उसने किसी प्रकार की हिच-

चस्पी नही प्रकट की। उसने शिवमगलसिह को बुलवाया, पर वह गाव मे हाजिर नही था। थानेदार ने गाव वालों के साथ सरसरी ढग से इस मामले पर विचार किया। लेकिन जब वह घटनास्थल पर जाने लगा तो गाव वालो ने उसे थोड़ा रुकने को कहा। उन्होने बताया कि शिवमगलसिह आ गया है और इस बारे मे कुछ बता सकता है। थोडी देर बाद वे शिवमगलसिंह को थानेदार के सामने ले आये और शिव-मगलसिह ने सब-कुछ साफ-साफ बतला दिया। उसने यह कबूल किया कि उसने रामनारायण की हत्या की और उसके वस्त्रो को अपने खेत में दबा दिया और रामनारायण के शव को अढाई मील दूर एक जगल के कुए मे फैंक दिया। उसने उस कुए का पता बताया और थानेदार ग्रामीणो के दल के साथ उस कुएं पर गया, लेकिन शिवमगल-सिह इस दल मे नही था। थानेदार ने बताया कि उसके साथ केवल एक ही सिपाही था और उसका खयाल था कि शिवमगलसिह को कुए तक ले जाने में खतरा हो सकता है। सभव है, वह भाग जाय। इस-लिए थानेदार उसे जमीदार के मकान मे ताला लगा कर बद कर गया और सिपाही को उसकी चौकसी पर तैनात कर गया। कुए मे उतर कर रामनारायण का शव बाहर निकाला गया। इसके बाद थानेदार और सारा दल गाव मे लौट आया और शिवमगलसिंह से अधिक जाच की गई। उसने छकडे का भी पता बताया। छकडे का ढाचा और पहिए अलग-अलग थे। ढाचा तो उसके घर ही के पास था और पहिए एक खेत में अरहर की फसल और घास के ढेर के नीचे पडे थे। थानेदार के इस बयान का उन कई ग्रामवासियो ने समर्थन किया था, जो शिवमगल-सिंह के प्रति किसी तरह का द्वेषभाव नही रखते थे। इन ग्रामवासियो ने शिवमगलसिंह के अपराध कबूलने का समर्थन किया था। उनके कहने के अनुसार थानेदार के पास लाने से पहले शिवमंगलसिंह ने लोगो के सामने भी अपराध कबूला था। लेकिन इस अपराध का आंखो-देखा कोई गवाह न था। सारा मामला शिवमगलसिंह की कबूली और उसकी सूचनानुसार शव

और छकड़े की प्राप्ति पर ही निर्भर था। यदि यह सबूत विश्वस्त था—और जज इसे सत्य मान लेता है—तो इस मामले का यही अंत हो जाता है और शिवमंगलसिंह को फांसी होगी ही। तदनुसार उसे फांसी की सजा हुई और उसने हाईकोर्ट में अपील कर दी।

जब मैंने गवाहियों को पढ़ा तो उनमें कहीं गुंजाइश नहीं थी। सभी गवाह भले आदमी नजर आते थे और शिवमंगलसिंह को फांसी के तख्ते पर झुलाने में भी उनका कोई मकसद नजर नहीं आता था। लेकिन भारत में मौखिक साक्षी को महत्व देने में यही एक निर्णयात्मक अंश नहीं होता। एक आदमी भारत की कानूनी अदालतों में झूठी गवाही क्यों देता है, इसका कारण या उद्देश्य जान लेना भी कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता है। बहुधा इसमें थाने या थानेदार के पक्ष को ही समर्थन देने की इच्छा निहित होती है। कई बार मुझे ऐसा मौका पड़ा है, जब किसी जज ने मुझे विपरीत स्थिति में डाल दिया और मैंने इस सवाल का जवाब देने में इन्कार कर दिया कि क्यों अमुक गवाह झूठ बोलता है। मेरा कहना था कि इस सवाल का जवाब देना मेरे लिए संभव नहीं है।

इस तमाम मुकदमे में गवाहों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता था, लेकिन एक बात से तो मुझे भारी आश्चर्य हुआ कि इन्स्पेक्टर जब कुएं में से शव को निकालने गया था तो वह शिवमंगलसिंह को साथ नहीं ले गया था। जब कभी पुलिस अभियुक्त की सूचना पर किसी चीज को बरामद करने जाती है तो वस्तु के बरामद होने के समय अभियुक्त को अवश्य हाजिर किया जाता है और सबूत में वही व्यक्ति घटनास्थल से वस्तु बरामद करने की विधि बतलाने वाला होता है। शिवमंगलसिंह को इसलिए नहीं ले जाया गया था, क्योंकि उसका पुलिस की हिरासत से भाग जाने का डर था। यह कहानी मुझे मन-गढ़न्त लगी। क्या यह नहीं समझा जा सकता कि कुएं में से शव की प्राप्ति किसी और ही कारण हुई थी? लेकिन यदि शिवमंगलसिंह ने पुलिस को न बताया होता तो पुलिस उसके बारे

ने जान भी कैसे सकती थी ? यह एक विचारणीय प्रश्न था, क्योंकि वह कुआं जाने-आने की राह से बिलकुल हट कर और काफ़ी दूरी पर एक जंगल में था और कोई भी जांच करनेवाला अफ़सर किसी निश्चित सूचना या किसी उचित कारण के बिना उसमें खोज करने की सोच भी नहीं सकता था। वहां मुझे एक खास दस्तावेज मिला, जो मुझे बहुत ही महत्वपूर्ण और सारे भेद को स्पष्ट करने वाला दिखाई दिया। लेकिन मातहत अदालत ने उसपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था। वह था घटनास्थल का नक्शा, जो थानेदार ने अपनी खोज के दौरान में गवाही के साथ पेश किया था। इस घटनास्थल के नक्शे में जिन बातों का मैं उल्लेख कर चुका हूं, वह सब स्पष्टतया दिखाई गई थीं। लेकिन उत्तर दिशा में वह नक्शा एक कहानी को प्रकट करता था। पहियों के निशान उत्तर दिशा में थोड़ी दूर तक साफ़-साफ़ दिखाए गये थे और उसके बाद ५०-७५ गज का एक सूखा और कठोर भूमि का हिस्सा आता था, जिसपर कोई निशान नहीं थे। उसके बाद नरम भूमि आ जाती थी और निशान फिर शुरू हो जाते थे, जो बहुत दूर तक गए थे। तब एकाएक बाईं ओर को घूम गए थे। वे निशान पीछे कुएं तक पहुंचते थे। मेरे ख्याल में वह नक्शा बहुत ही महत्वपूर्ण था और तत्काल ही मुझे लगा कि भिवनंगसिंह का कथन थानेदार को कुएं तक नहीं ले गया था, पहियों के निशानों का ही यह खेल है, और वह निशान ही असली सूचना देने वाले हैं। पुलिस ने अपनी चातुरी से बेचारे भिवनंग-सिंह पर इस बयान देने के तथ्य को लाद दिया है। मैंने मन-ही-मन अनुमान लगाया कि अगर शरलॉक होम्स को इस खोज का काम सौंपा जाता तो वह क्या करता। निस्सन्देह ही वह, जबकि गंध तेज़ थी, शिकारी कुत्ते की तरह उसका पीछा करता। वह थानेदार की तरह गांव में ही सवेरे का सारा वक्त न गँवाता, बल्कि सवेरे ही उठकर घटनास्थल की ओर चल देता। यदि आवश्यक होता तो वह किसी ओर को भी फिर से देख जाता और यदि उसे जँचता कि वह नितान्त

अन्तिम छोर है तो वह अपने आपसे कहता, "छकडे हवा में गायव नही हो जाते। यदि यह छकडा इलिंग की ओर नही गया और चूंकि पूर्व और पश्चिम का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता तो वह निश्चय ही उत्तर को गया होगा, अत मुझे फिर से उत्तर की ओर चलना चाहिए।" इसलिए वह फिर से उत्तर दिशा की ओर जाता और नरम जमीन के टुकडे को देखने के वाद वह और आगे वढता। उसके वाद फिर से उसे पहियो के निशान मिल जाते, जो उसे सीधे कुए पर ले जाते। फिर मैंने मन-ही-मन सोचा कि मुझे इससे क्या मतलव है कि थानेदार शरलॉक होम-जैसा चतुर था या नही ? थानेदार की मौजूदा गवाही का एकमात्र आशय शिवमंगलसिंह को फसाना था। उसे शव मिल गया था और उसके वाद उसने खयाल किया कि वस्त्रों का वडल चूकि शिवमंगल के खेत में दवा हुआ पाया गया, इसलिए वही असली अपराधी होगा और उसी को इस अपराध में फासा जा सकता है। इस प्रकार, जहा तक शिवमगलसिंह के जीवन का सवन्ध था, वह मृत देह इस मामले में वडा ही ज्वलत प्रमाण था। इस दृष्टि से विचार करने से यह वहुत ही सहज-सा जान पडा और मैंने अदालत में इस ढग से उसे पेश करने का निश्चय किया।

वह पेशी मुझे कभी नही भूलेगी। मुकदमा इलाहावाद हाईकोर्ट के दो प्रमुख न्यायाधीशो सर जेम्स आलसप् और श्री गंगानाथ के सामने पेश हुआ था। जैसे ही मैं अदालत के कमरे में दाखिल हुआ, मैंने देखा कि शिवमगल ड्योढी में से झाक रहा है। पीला-जर्द उसका चेहरा था। उसने मुझे नमस्कार किया। मैंने नमस्कार का जवाव दिया, लेकिन उसके साथ कोई वात नही की। वात करने से कोई फायदा भी नही था। लगभग साढे दस वजे मुकदमे की सुनाई शुरू हुई। मैंने सक्षेप में मुकदमे के तथ्यो को पेश किया। अपने तर्क को अधिक प्रभावशाली वनाने के लिए मैंने मच पर जाने की स्वीकृति ली। मच पर जाकर मैंने विद्वान जजो के सामने घटनास्थल का नक्शा पेश किया, जिसका आश्चर्यजनक नतीजा

हुआ। मैंने चालीस मिनट से भी कम समय लिया होगा; लेकिन मेरी बात विद्वान जजो को जंच गई। सरकारी वकील मिस्टर मोहम्मद इस्माइल थे। फौरन ही सर जेम्स आलसप् ने उनसे कहा, "कहिए, आपको क्या कहना है ? मैं समझता हूं कि तथ्य वही है जो डा० काटजू ने उपस्थित किया है।" मिस्टर इस्माइल ने शिवमंगल की अपने साथी ग्रामीणो से कबूलने-सम्बन्धी मौखिक गवाही का उल्लेख किया, लेकिन सर जेम्स पर इसका कोई असर न हुआ। उन्होने कहा कि कथित जबानी कबूलने के आधार पर सजा को स्थिर रखना मुमकिन नही। छकडे के निशान ही इस मामले के असली निर्णायक है। घंटे भर के अन्दर-अन्दर उन्होंने अपना फैसला लिख दिया।

इसी बीच मुझे दूसरी अदालत मे पैश होने का बुलावा आ गया और जैसे ही मैं अदालत के कमरे से बाहर निकल रहा था, शिवमंगल ने मुझे देखा। उसने खयाल किया कि मैं उसके मुकद्दमे को बीच ही में छोड़े जा रहा हू, इसलिए मैंने उससे बस इतना ही कहा, "तुम छूट गए।" उसे अपने कानो पर जैसे विश्वास नही हुआ और विस्फारित आंखो एवं कपित स्वर मे उसने चिल्लाना शुरू किया, "हम छूट गए। हम छूट गए।"

: २० :

जवाहरलाल नेहरू : वकील के रूप में

पडित जवाहरलाल के इलाहाबाद हाईकोर्ट मे वकील के रूप मे कार्य करने के बारे में अक्सर लोग मुझसे पूछा करते है। १९१२ में इगलैंड में उन्होंने वकालत पास की थी और उसी साल स्वदेश आकर इलाहाबाद-बार मे शामिल हुए। उनके पिता पंडित मोतीलाल नेहरू उन दिनो चोटी के वकील थे और उत्तरप्रदेश भर मे उनका नाम था।

कानपुर की अदालतों मे छ वरस तक काम करने के वाद मैं इलाहा-

बाद आ गया और १९१४ में इलाहाबाद हाईकोर्ट बार का सदस्य बन गया। जवाहरलाल, जैसा कि उन्होंने अपनी आत्म-कथा में लिखा है, १९१६ में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा चलाए होम-रूल आन्दोलन की ओर आकर्षित हो गए। वह तन-मन से इस आन्दोलन में काम करने लगे। यह १९१७ की बात है। इसके बाद पंजाब के मार्शल लॉ और उसके बाद की घटनाएँ जवाहरलाल को अदालतों के रंग-मंच से दूर ले गईं। इस प्रकार जवाहरलाल के अदालती जीवन की अवधि चंद वर्ष ही रही। वह और मैं एक-दूसरे को भली प्रकार जानते थे; लेकिन बहुत घनिष्ठता नहीं थी। हम हाईकोर्ट में मिला करते थे, परन्तु सामाजिक संबंध बहुत थोड़ा था। उन दिनों मैं ऐसा कर भी नहीं सकता था। १९१९ के बाद जब जवाहरलाल गांधीजी के प्रभाव में आए और उन्होंने तन-मन से अपने आपको कांग्रेस-आन्दोलन में झोंक दिया, तभी से वह जनता में मिलने लगे और तभी से मेरे संबंध भी उनके साथ घनिष्ठ हो गए, अन्यथा वह और मैं ऐसी दुनियाओं में रहते थे, जो एक-दूसरे से बहुत दूर थीं।

लोगों को इस बात का शक है कि जवाहरलाल अपने पिता के समान ही अदालती काम में सफल होते या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है और इसके विषय में केवल कल्पना ही की जा सकती है। अदालती सफलता का भेद वस्तुतः कई सदियों से एक रहस्य ही है। जवाहरलाल ने वकालत-जीवन को पंडित मोतीलाल नेहरू के पुत्र के तौर पर शुरू किया था, जिससे उनको भारी लाभ था। सामाजिक रूप में सभी जज उन्हें जानते थे और उनका व्यावसायिक रूप से उत्तरप्रदेश के प्रमुख परिवारों, जमींदारों और उद्योगपतियों के साथ भी सामाजिक संबंध हुआ होगा, जो कानूनी पेशे की खुराक है। मुझे भली प्रकार याद है कि एक वर्ष से भी अधिक काल तक उन्होंने मशहूर लखना-केस में पंडित मोतीलाल नेहरू के जूनियर वकील के तौर पर बड़ी कड़ी मेहनत की थी। यह मुकदमा कई बरसों तक चलता रहा था और आखिरी दौरान में मैं भी पंडित मोतीलालजी के यहाँ जूनियर के तौर पर काम करता रहा था। अपनी वकालत के छोटे से काल

में मेरा और उनका बहुत कम ही वास्ता पड़ा; लेकिन दो मुकदमे मुझे याद हैं, जिनमे वह और मै साथ-साथ पेश हुए थे।

पडित मोतीलालजी ने कानपुर मे १८८० के आस-पास वकालत शुरू की थी और कानपुरवासी आजीवन उनका मान करते रहे। वे उन्हे प्रेम करते थे और उन्हे अपना आत्मीय समझते थे। उनके युवाकाल के वहाँ कई मित्र थे, जिनके साथ श्री मोतीलालजी का घनिष्ठ सबध था। उनमे एक बाबू बशीधर थे, जो कानपुर मे स्नेहवश बसीबाबू के नाम से मशहूर थे। इलाहाबाद के नेहरू-परिवार और कानपुर जिला अदालत के प्रमुख नेता पडित पृथ्वीनाथ के साथ उनकी गहरी घनिष्ठता थी। मै समझता हूँ कि बसीबाबू ने जवाहरलाल को बचपन मे जरूर खिलाया होगा और १९०८ मे जब मैंने कानपुर मे अपना जीवन आरभ किया था और बंसीबाबू को मालूम हुआ कि मै पडित पृथ्वीनाथ का जूनियर हूँ तो तत्काल उन्होने मुझे अपने आश्रय में ले लिया। बसीबाबू के जीवन की अनेक दिशाएँ थी। वह जमीदार थे, एक तरह से साहूकार थे और सबके मित्र थे। उनकी बिरादरी का एक नौजवान था, जिसने बैंक मे नौकरी करनी चाही थी। उससे अच्छे आचरण के प्रमाण के लिए कहा गया। वह बसीबाबू के पास गया और उन्होने फौरन दो हजार रुपये की जमानत दे दी। इस आदमी को नौकरी तो मिल गई; लेकिन कुछ बरसो बाद बैंक से कुछ रुपया गायब हो गया। आदमी देनदार ठहराया गया और जमानती होने के कारण बंसीबाबू को वह हानि पूरी करने के लिए कहा गया। स्वभावत. ही वह इस जिम्मेदारी से छूटना चाहते थे। प्रश्न यह था कि जमानत की शर्तें इस मुकदमे के अनुकूल है। बैंक ने अदालत मे मुकदमा किया और कानपुर की अदालत ने फैसला दिया कि बसीबाबू देनदार है और उन्हें यह अदायगी करनी होगी। वह इलाहाबाद आए और इस मामले को अपने घनिष्ठ मित्र पंडित मोतीलाल और डाक्टर तेजबहादुर सप्रू के पास ले गए। बसी-बाबू जब कभी इलाहाबाद आया करते थे तो मेरा खयाल है कि वह हमेशा आनन्द भवन मे ठहरा करते थे। दोनो ने ही इस मामले को निराशापूर्ण

बनाया। उसके बाद वह मेरे पास आए। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन वह बिल्कुल स्पष्टवादी थे। उन्होंने कहा कि पंडित मोतीलाल से मैंने सलाह ली थी। मोतीलाल ने कागजात भी पढ़े, परंतु मामले को निराशापूर्ण बताया। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यह मामला बहुत ही मामूली-सा है। मुझे यह निराशापूर्ण जान पड़ता है, लेकिन मेरा सुझाव है कि इन छोटे मुकदमों के लिए तुम्हें जवाहरलाल और कैलाश-नाथ-जैसे नए खिलाड़ियों के पास जाना चाहिए। उन्हें अपने कागजात दिखाओ। उनके पास काफी समय है और बहुत मुमकिन है कि वे कोई नुक्ता खोज निकालें। न तो मेरे पास और न तेजबहादुर के पास समय है और न हमारी इसमें कोई दिलचस्पी है। इस तरह बंसीबाबू मेरे पास आए थे। ये बातें दोहराने के बाद वह मुझसे बोले, "मैं जवाहर-लाल से तो मिल चुका हूँ और अब मैं आपके पास आया हूँ। चाहे कुछ भी हो इसकी मुझे परवाह नहीं, लेकिन मैंने इस मामले पर अदालत में लड़ने का फैसला किया है। मैं अभी तक किसी मुकदमें में कभी नहीं हारा हूँ और मुझे विश्वास है कि आप दोनों मेरे इस मुकदमे को जीतेंगे।" मैं हँसा और बोला, "यह तो सलाह माँगना नहीं, बल्कि आदेश देना है।" तदनुसार जवाहरलाल और मैंने इस मामले का अध्ययन किया और हमें उसमें कुछ तत्व नजर आया। हमने अपील के मुद्दे लिखे और मैंने जवाहरलाल से कहा, "अपील की स्वीकृति की प्रारंभिक बातों को अब तुम पूरा कर जाओ।" जवाहरलाल ने बड़ी कामयाबी के साथ वह काम किया। यह मामला तो मंजूर हो गया; लेकिन तभी बेचारे बंसीबाबू स्वयं ही चल बसे और अपील की आखिरी पेशी से पहले ही जवाहरलाल भी राजनीति में चले गए।

एक और मामले में हम एक-दूसरे के विरोधी थे। गर्मियों के दिनों में एक रोज नारायणदास नामक (बंसीबाबू की बिरादरी का) एक व्यक्ति एक मुकदमे के फैसले के साथ आया। कानपुर में वह यह मुकदमा हार चुका था और उसने मुझे अपील दाखिल करने को कहा। उसने मुझे

वताया कि मुकदमा तो बिलकुल निराशापूर्ण है; लेकिन अपील दाखिल करनी ही होगी, क्योंकि यदि फैसला बहाल रहा तो वह उस एक मकान से बेदखल हो जायगा, जिसमे उसका परिवार लगभग पचास बरसो से रह रहा था। इसके अलावा इस समय कानपुर मे कोई मुनासिब मकान भी नही है और बरसात के दिन नजदीक है। इसलिए वह बेदखली को कुछ दिन टालना चाहता है और वह केवल अपील दाखिल करने से ही हो सकता है'। मैंने कागज़ों को पढ़ा और सचमुच यह मुकदमा बिलकुल निकम्मा था। इसकी शुरूआत औरतो के बीच झगड़े से हुई थी। पता लगा कि एक संपन्न व्यक्ति (नारायणदास के नाना) के तीन बेटे और एक बेटी थी। उसके पास बहुत-सी जायदाद और कई रिहायशी मकान थे। बेटी एक मध्यम वर्ग के परिवार मे ब्याही गई थी और पिता ने अपनी बेटी को इन मकानो मे से एक मे रिहायश की मजूरी दे दी थी। वह न केवल अपने पिता के जीवनकाल मे ही वहाँ रही, बल्कि उसकी मृत्यु के बाद भी अपने भाइयों की रजामंदी से रहती रही। ये लोग असदिग्ध रूप मे उस संपत्ति के मालिक थे। कमेटी के रजिस्टरो में मालिको के तौर पर उनके नाम दर्ज थे, वे सब तरह के टैक्स अदा करते थे और अगर मै गलती नहीं करता तो वे मकान के एक हिस्से मे अपनी गायों को भी रखा करते थे। आखिरकार तीनों भाइयो ने अपना बँटवारा कर लिया। यह मकान उनमे से उस एकके हिस्से आया, जो स्वत. निस्सन्तान था और उसकी मृत्यु के बाद उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होने के नाते इस मकान की मालकिन वन गई। यह १९१४ की बात है। इस मकान में इस औरत की ननद अपने वच्चों और पोतो के साथ रहती थी। मुझे वताया गया कि दोनो औरतो मे मेल-जोल था; लेकिन कुछ दिन हुए, उनमे आपस मे कुछ झगड़ा-सा होगया। इसपर इस मकान-मालकिन ने ननद से कह दिया, "मेरे मकान से निकल जाओ।" वह नही निकली और इसलिए यह मुकदमा हुआ। इस मामले का कोई जवाब नही था और न कोई वसीयत थी। इतने पर भी प्रतिवादी के वकीलो ने समय लेने के लिए विपरीत स्वत्वाधिकार का समर्थन

किया और एक छोटे जज ने उनके पक्ष में फैसला भी दे दिया। ज़िला जज की अदालत में अपील करने पर यह मामला खत्म हो गया, क्योंकि विपरीत स्वत्वाधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता था। ज़िला जज ने मकान-मालकिन के हक में फैसला किया। जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, नारायणदास खुद भी जानता था कि इस मामले में जान नही है, और वह चार मास तक इस मकान मे और रहना चाहता था। मैंने उससे साफ-साफ कह दिया कि यह मामला मेरी ताकत से बाहर है। अगर मेरे जैसे जूनियर वकील ने इसकी अपील की प्रारम्भिक पेशी मे बहस की तो मुमकिन है कि यह मंजूर ही न हो। इसलिए किसी बड़े वकील को ही करना चाहिए। नारायणदास फौरन मान गया और मैंने डाक्टर तेजबहादुर को प्रेरणा की कि वह मुकदमे मे मेरे बड़े वकील बन जायँ। अपील एक जज के सामने पेश हुई, जो मंजूरी देने मे तनिक उदार थे। डाक्टर सप्रू उठे और उन्होंने कहा, "कानूनी प्रश्न अवधि-सबंधी है।" और विद्वान् जज ने कहा, "नोटिस जारी कर दिया जाय।' इस तरह एक बाधा तो पार की गई और इसके बाद मैंने बेदखली की आज्ञा को रोकने की दरख्वास्त दी, जो यथाक्रम मंजूर कर ली गई। कुछ सप्ताहो के बाद वकीलो की लाइब्रेरी मे पंडित मोतीलाल ने विनोद मे कहा, "कैलासनाथ, क्या तुमने यह नियम ही बना लिया है कि कानपुर के हरएक मुकदमे की अपील की जाय?" पहले तो मैं समझा नही और बोला, "भाईजी, क्या बात है?" इसपर वह बोले, 'वह बुढ़िया आनन्द भवन मे आई थी और जवाहरलाल की माँ के पास गई थी। उसने अपना सारा मामला उनसे कहा था। इसके बाद उन्होंने इस विषय मे मुझसे चर्चा की और मुझे उसे मंजूर करना पड़ा। यह बिल्कुल ही निकम्मा मुकदमा है। तुमने इसकी अपील कैसे की?" इसपर मैंने उन्हें सारी कहानी सुनाई और उन्होंने दावी का मामला लेना स्वीकार किया।

मैं समझता हूँ कि लगभग दो बरस के बाद वह अपील चीफ जज सर हेनरी रिचर्ड्स और श्री जस्टिस रफीक के सामने पेश हुई। पंडित

मोतीलाल उस दिन थे तो इलाहाबाद मे ही; लेकिन सभवत. उन्हे घर पर ही कोई अधिक आवश्यक काम था, इसलिए उन्होने इस मुकदमे की अपील जवाहरलाल को सौप दी। इस तरह जवाहरलाल अपने पिता की ओर से इस मुकदमे मे पेश हुए।

अदालत के कमरे मे बड़ी भीड थी। मेरे बड़े वकील डाक्टर तेजबहादुर मेरे पास बैठे थे। डाक्टर सप्रू और मै दोनो ही जानते थे कि यह मुकदमा निस्सार है। जब मुकदमा पेश हुआ तो स्वभावत. मै आशा करता था कि डाक्टर सप्रू खडे होगे। लेकिन उन्होंने मुझसे कहा, "कैलासनाथ, इसमें है तो कुछ नही। तुम्ही जवाब दो और इसे खत्म करो।" मैं उठा और मैने अभिनय शुरू किया। मैने केवल तथ्य ही पेश किए और कई बार दोहराया कि बेटी और उसका परिवार चालीस साल से भी ज्यादा समय से मकान मे रह रहा है और अधिक जोर देने के लिए मैंने कहा, "श्रीमान्, नारायणदास तो वस्तुत. इस मकान मे ही पैदा हुआ था।" जब मैंने यह कहा तो मैने देखा कि सर हेनरी रिचर्ड्स ने अपना मुँह एक कापी से ढँक लिया और उन्हे झपकी आ गई। साथी जज ने भी इस बात को भॉप लिया और उन्होने बडे टेढे-टेढे सवाल मुझसे किए। जब यह प्रश्नोत्तर जारी था तो मैंने देखा कि सर हेनरी के मुँह पर पडी कापी हिलने-डुलने लगी है। स्पष्टतया वह जाग गए थे और हर किसी को यह जाहिर करने की कोशिश कर रहे थे कि वह वास्तव मे सोए नही थे, लेकिन बडी गहराई के साथ मुकदमे का अध्ययन कर रहे थे। मैंने उन्हे देखा कि वह मुकदमे को उस जगह पर पढ रहे थे जहाँ नारायणदास को पैतीस वर्ष की आयु का बताया गया था। उनके सोने से पहले मैंने यह आखिरी शब्द कहे थे, "श्रीमान्, नारायणदास इस घर मे ही पैदा हुआ था।" मैंने देखा कि उन्होने फिर पन्ना पलटा और एकाएक मुझसे पूछा, "क्या तुमने यह कहा था कि नारायणदास इस घर मे पैदा हुआ था?" मैने कहा, "हाँ जनाब, यही।"

चीफ जज बोले, "लेकिन नारायणदास की उम्र तो पैतीस वर्ष की है।"

मैंने जवाब दिया "जनाब, यही तो मेरा तर्क है। यह परिवार इस मकान में पिछले पचास वर्ष से है और बच्चे और पोते इसमें पैदा हुए हैं।"

चीफ जज बोले, "बड़ी फिजूल बात है। दूसरी ओर से कौन है?"

इससे पहले कि मैं अपनी बात की पुष्टि में कुछ और निरर्थक बातें कहने की कोशिश करूँ, डाक्टर सप्रू ने मेरे चोगे के छोर को खींचा और फुसफुसाए कि बस करो, और मैंने वैसा ही किया। अब जवाहरलाल की बारी थी। जवाहरलाल ने बड़ी शान्ति के साथ कहा कि यह मामला स्वत्वाधिकार के प्रश्न का है और जिला जज ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। सर हेनरी रिचर्ड्स ने निर्णयात्मक ढंग से कहा, "हाँ, मुझे मालूम है। यह तथ्य मालूम करने का मामला है और इसमें हम दखल नहीं दे सकते; लेकिन मैं आपको यह बता दूँ कि तथ्य-ज्ञान का यह सर्वथा विपरीत रूप है। वादी के पक्ष में कोई न्याय की बात नहीं है।" सर हेनरी कुछ समय तक ऐसा ही कुछ कहते रहे और तब एकाएक बोले, "लेकिन आपका पक्ष तो औरत का है। इस मामले में औरत का अस्तित्व कहाँ से आ गया?"

जवाहरलाल ने तीन भाइयों के बँटवारे का उल्लेख किया और कहा कि उनके मुवक्किल को यह मकान उनके पति के उत्तराधिकार से प्राप्त हुआ है। लेकिन चीफ जज ने कुछ नहीं सुना। वह बोले, "यह संयुक्त परिवार की सम्पत्ति है। एक हिन्दू स्त्री इस संयुक्त परिवार में उत्तराधिकार नहीं पा सकती। आपको तीन भाइयों में बँटवारे का सबूत देना होगा।"

इस पर जवाहरलाल ने जिला जज के फैसले में से एक-दो वाक्यों का उल्लेख किया, लेकिन सर हेनरी पर कोई असर न हुआ।

चीफ जज ने कहा "यह तो एक सरसरी बात है; यह तथ्य-ज्ञान नहीं है। दिखाइए, आपने कहाँ इस बात का उल्लेख किया है कि आपको यह मकान इस ढंग से हासिल हुआ। बँटवारे का क्या प्रमाण है?"

इसके बाद जवाहरलाल ने कहा कि प्रतिवादियों ने इस तर्क से नहीं इन्कार नहीं किया और यदि जनाब का यह खयाल है कि इसे उचित रूप से पेश नहीं किया गया तो यह मामला उचित निर्णय के लिए निचली अदालत

के पास भेज देना चाहिए।

सर हेनरी ने कुछ नही सुना और तनिक कठोरता से बोले, "यह ऐसा मुकदमा नही है, जिसमें अदालत आपकी किसी भी रूप मे रत्ती भर भी सहायता कर सके। यह आपका काम था कि आप इस आपत्ति को अपने बयान मे ठीक ढग से पेश करते, जिससे निर्णयात्मक प्रश्न प्रमाण के लिए उपस्थित हो जाता। इस स्तर पर हम इसे निचली अदालत मे नही भेजेगे।"

जवाहरलाल ने एक घटे से भी अधिक समय तक सघर्ष किया, लेकिन सब बेकार रहा। तत्काल फैसला कर दिया गया और अपील मंजूर हो गई। मुकदमा मय खर्चे के खारिज हो गया।

इस फैसले से मकान-मालकिन को बड़ा आघात पहुँचा और वह रोती-चिल्लाती फिर मोतीलालजी के पास आनद भवन में आई। मोतीलालजी ने फैसले की नजरसानी के लिए दरख्वास्त दी और कई महीनो के बाद इसकी सुनाई हुई। मोतीलालजी जैसे ही उठे और उन्होने संक्षेप मे तथ्यो का वर्णन करने के बाद बहस शुरू करनी चाही तो सर हेनरी बोले, "पडितजी, मुझे यह मुकदमा अच्छी तरह से याद है और जवाहरलाल ने बहुत अच्छी तरह इसपर बहस की थी। गलत या सही, हम इस अदालत मे मुकदमो पर दुबारा बहस नही होने देगे। दरख्वास्त नामजूर। अगला मुकदमा बुलाओ।"

सर हेनरी ने ये शब्द इतने विनोदपूर्ण ढग से कहे थे कि मोतीलालजी भी हँसे बिना न रह सके।

१९१९ के बाद मै समझता हूँ कि जवाहरलाल कई बार अदालतो मे पेश हुए है; लेकिन वकील के तौर पर नही, बल्कि एक कैदी के रूप मे। अतिम बार वह १९४५ मे आजाद हिंद फौज के मुकदमे मे दिल्ली के लाल किले मे उपस्थित हुए थे। निश्चय ही इस ऐतिहासिक अवसर पर वह एक वकील के रूप मे पेश हुए थे।

2087

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

१ प्रार्थना-प्रवचन (भाग १) ३)
२ ,, ,, (भाग २) २॥)
३ गीता-माता ४)
४ पन्द्रह अगस्त के बाद १॥), २)
५ धर्मनीति १॥), २)
६ द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
७ मेरे समकालीन ५)
८ आत्मकथा ५)
९ गीता-बोध ॥)
१० अनासक्तियोग १॥)
११ ग्राम-सेवा ।=)
१२ मंगल-प्रभात ।=)
१३ सर्वोदय ।=)
१४ नीति-धर्म ।=)
१५ आश्रमवासियों से ।=)
१६ राष्ट्रवाणी १)
१७ सत्यवीर की कथा ।)
१८ संक्षिप्त आत्मकथा १॥)
१९ हिंद-स्वराज्य ॥।)
२० अनीति की राह पर १)
२१ बापू की सीख ॥)
२२ गांधी-शिक्षा (३ भाग) १=)
२३ आज का विचार ।=)
२४ ब्रह्मचर्य (२ भाग) १॥।)

विनोबाजी की लिखी

२५ विनोबा-विचार (२ भाग) ३)
२६ गीता-प्रवचन १), १॥।)
२७ शान्ति-यात्रा १॥)
२८ जीवन और शिक्षण १)
२९ स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
३० ईशावास्यवृत्ति ॥।)
३१ ईशावास्योपनिषद =)
३२ सर्वोदय-विचार १=)
३३ स्वराज्य-शास्त्र ॥।)
३४ भू-दान यज्ञ ।)
३५ गांधीजी को श्रद्धांजलि ।=)
३६ राजघाट की संनिधि में ॥।)
३७ विचार-पोथी १)
३८ सर्वोदय का घोषणापत्र ।)
३९ जमाने की माँग =)

नेहरूजी की लिखी

४० मेरी कहानी ८)
४१ हिन्दुस्तान की समस्याएँ २॥)
४२ लड़खड़ाती दुनिया २)
४३ राष्ट्रपिता २)
४४ राजनीति से दूर २)
४५ हमारी समस्यायें (२ भाग) १)
४६ विश्व-इतिहास की झलक २१)
४७ सं० हिन्दुस्तान की कहानी ५)
४८ नया भारत ।)

अन्य लेखकों की

४९ गांधीजी की देन १॥)
५० गांधी-मार्ग =)
५१ महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५२ कुब्जा सुन्दरी ,, २)
५३ शिशु-पालन ,, ॥)
५४ कारावास-कहानी १०)
५५ गांधी की कहानी (लु फि) ४)
२५ भारत-विभाजन की कहानी ४)
५७ बापू के चरणों में २॥)
५८ इंग्लैंड में गांधीजी २)
५९ बा, बापू और भाई ॥)
६० गांधी-विचार-दोहन १॥)
६१ अहिंसा की शक्ति (ग्रेग) १॥)
६२ सर्वोदय-तत्त्व-दर्शन ७)
६३ सत्याग्रह-मीमांसा ३॥)
६४ बुद्धवाणी (वियोगी हरि) १)

६५ सन्त सुधासार (वि०हरि) ११)
६६ सतवाणी „ १॥)
६७ श्रद्धाकण „ १)
६८ प्रार्थना (वियोगी हरि) ॥)
६९ अयोध्याकाण्ड „ १)
७० भागवत-धर्म (ह.उ.) ६॥)
७१ श्रेयार्थी जमनालालजी „ ६॥)
७२ स्वतन्त्रता की ओर „ ४)
७३ वापू के आश्रम मे „ १)
८४ मानवता के झरने (माव) १॥)
७५ वापू (घ० विडला) २)
७६ रूप और स्वरूप „ ॥=)
७७ डायरी के पन्ने „ १)
७८ ध्रुवोपाख्यान „ ।)
७९ स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय) १)
८० मेरी मुक्ति की कहानी „ १॥)
८१ प्रेम मे भगवान „ २)
८२ जीवन-साधना „ १।)
८३ कलवार की करतूत „ ।)
८४ हमारे जमाने की गुलामी „ ॥।)
८५ बुराई कैसे मिटे ? „ १)
८६ बालको का विवेक „ ॥।)
८७ हम करे क्या ? „ ३॥)
८८ धर्म और सदाचार „ १।)
८९ अधेरे मे उजाला „ १॥)
९० कल्पवृक्ष (वा. अग्रवाल) २)
९१ लोक-जीवन (कालेलकर) ३॥)
९२ हिमालय की गोद मे २)
९३ साहित्य और जीवन २)
९४ कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १॥)
९५ राजनीति प्रवेशिका १)
९६ जीवन-सदेश (ख.जिब्रान) १।)
९७ अशोक के फूल ३)
९८ जीवन-प्रभात ५)
९९ का. का इतिहास ३ भाग ३०)
१०० पचदशी १॥)
१०१ सप्तदशी २)
१०२ रीढ़ की हड्डी १॥)
१०३ अमिट रेखाये ३)
१०४ एक आदर्श महिला १)
१०५ राष्ट्रीय गीत ।)
१०६ तामिल-वेद (तिरुकुरल) १॥)
१०७ आत्म-रहस्य ३)
१०८ थेरी-गाथाएँ १॥)
१०९ बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
११० जातक-कथा (आनंद कौ.) २॥)
१११ हमारे गांवकी कहानी १॥)
११२ साग-भाजी की खेती ३॥)
११३ पशुओ का इलाज ॥)
११४ रामतीर्थ-संदेश (३ भाग) १≡)
११५ रोटीका सवाल ३)
११६ नवयुवको से दो बाते „ ।=)
११७ पुरुषार्थ (डा० भगवानदास) ६)
११८ काश्मीर पर हमला २)
११९ शिष्टाचार ॥=)
१२० भारतीय सस्कृति ३॥)
१२१ आधुनिक भारत ५)
१२२ कादम्बरी ।=)
१२३ उत्तररामचरित ।=)
१२४ वेणीसहार ।=)
१२५ शकुतला ।=)
१२६ मृच्छकटिक ।=)
१२७ मुद्राराक्षस ।=)
१२८ नलोदय ।=)
१२९ नागानद ।=)
१३० रघुवंश ।=)
१३१ स्वप्नवासवदत्ता ।=)
१३२ मालविकाग्निमित्र ।=)
१३३ हर्षचरित ।=)
१३४ किरातार्जुनीय ।=)
१३५ समाज विकास माला (२४ पुस्तके) ९)